अब्दुलग़सन   रुस्तम
अलेकपेरज़ादे   इब्राग़िमबेकोव
मेहती गुस्सेइन   सुलेमान
मिर्ज़ा इब्राग़िमोव   रगीमोव
इलियास   अक्रम ऐलिस्ली
एफ़ेन्दियेव   ईसा
सुलेमान वेलीयेव   मेलिकज़ादे
इमरान कासुमोव   एलचिन
चिंगीज़ गुस्सैनोव   मामेदख़ानली
अनार रज़ायेव   गुस्सेइन
एल्चिन   अब्बासज़ादे
मक़सूद   साबिर
इब्राग़िमबेकोव   अख़्मेदोव

अज़रबैजानी गद्य चयनिका

अज़रबैजानी गद्य चयनिका

अज़रबैजानी गद्य चयनिका

अबुलगसन अलेकपेरज़ादे
मेख़्ती गुस्सेइन
मिर्ज़ा इब्रागिमोव
इलियास एफ़ेन्दियेव
सुलैमान वेलीयेव
इमरान कासुमोव
चिंगीज़ गुस्सैनोव
अनार र्ज़ायेव
ऐल्चिन
मकसूद इब्रागिमबेकोव
रुस्तम इब्रागिमबेकोव
सुलैमान रगीमोव
अक्रम ऐलिस्ली
इसि मेलिकज़ादे
एनवेर मामेदख़ानली
गुस्सेइन अब्बासज़ादे
साबिर अख़्मेदोव

रादुगा प्रकाशन ताश्क़न्द, १९८३

अनुवाद : राय गणेश चन्द्र
डिज़ाइन : ज़ुफ़ारोव रुस्तम

C $\frac{70500\text{-}143}{031(01)\text{-}83}$ 756-82 4702060000

प्राक्कथन

अज़रबैजानी साहित्य का इतिहास बहुत प्राचीन है।

प्राचीन यूनानी इतिहासकार हेरोडोटस द्वारा ढाई हज़ार से कुछ अधिक वर्ष पूर्व लिखित तथाकथित मीडियाई दंतकथाएं अज़रबैजानियों की लोककाव्य सम्पदा के प्राचीनतम नमूने हैं। लिखित अज़रबैजानी साहित्य का इतिहास ११वीं शताब्दी के ख़ातिब तेबरीज़ी, पीर गुस्सेइन शिरवानी के कृतित्व तथा प्राचीन संस्कृति व साहित्य के महान ग्रन्थ – महाकाव्य "किताबे देदे कोरकुद" के रचनाकाल से आरम्भ होता है। अज़रबैजानी लोगों को वास्तव में अपने विश्वविख्यात कवियों, जैसे गीतिमय गीतों की रचयित्री मेहसेती गंजेवी, ख़ाग़ानी शिरवानी, निज़ामी गंजेवी, इमाद्दीन नसीमी, मुहम्मद फ़िज़ूली, तीन भाषाओं – अज़रबैजानी, आर्मीनियाई और जार्जियाई – में लिखनेवाले सयात-नोवा, त्सानाख़ वग़ीफ़, मिर्ज़ा शफ़ी वाज़ेह, सईद अज़ीम शिरवानी, साबिर आदि पर गर्व करने का पूरा अधिकार है।

किन्तु यदि अज़रबैजानी काव्य अनेक सदियों पुराना है, तो अज़रबैजानी गद्य काफ़ी सीमा तक हमारी सदी की उत्पत्ति और संपत्ति है।

अज़रबैजानी गद्य की शुरूआत १६वीं शताब्दी के अन्त और २०वीं शताब्दी के आरम्भ के पत्रकारों

व प्रबोधकों जलील मामेदकुलीज़ादे (१८६६-१९३२) तथा अब्दुर्रगीम अख़बेर्दोव (१८७०-१९३३) ने की थी।

अज़रबैजानी गद्य का आरम्भ समाचार-पत्रों के पृष्ठों पर हुआ था और उसका उद्देश्य आम जनता को व्यावहारिक सहायता देना व उसका ज्ञानोदय करना था। प्रथम अज़रबैजानी गद्यकार लोगों को उनके जीवन, मेहनत, आवश्यकताओं, मानवाधिकारों के लिए संघर्ष की आवश्यकता तथा उत्पीड़कों से संघर्ष के तरीक़ों के बारे में अत्यन्त सुगम्य भाषा में बताने का प्रयास करते थे। जैसा कि ज्ञात है समाचार-पत्र हमेशा सक्रिय होता है और उसमें जगह सीमित होती है, इसलिए गद्य रचनाओं के प्रथम रूपों का पूर्वनिर्धारण काफ़ी सीमा तक उसी से हुआ था – रूपरेखा व कहानी, लघुउपन्यास व व्यंग्यात्मक लेख, रेखाचित्र, यथार्थवादी प्रकृतिचित्रण।

विधा के इन रूपों का गम्भीर रूप से विकास व दृढ़ीकरण सन् १९०६ में तिफ़लिस (वर्त्तमान त्बिलिसी) में काकेशस, ईरान, अफ़ग़ानिस्तान, निकटपूर्व के देशों व भारत में अत्यन्त लोकप्रिय पत्रिका "मुल्ला नसरेद्दीन" के प्रकाशन से हुआ। जलील मामेदकुलीज़ादे पत्रिका के मुख्य सम्पादक बने। वे अपने मित्र तथा हमख़याल अब्दुर्रगीम अख़बेर्दोव के साथ मिलकर पत्रिका में प्राय अपनी रचनाएं प्रकाशित करते थे। जलील मामेदकुलीज़ादे तथा अब्दुर्रगीम अख़बेर्दोव ने आधुनिक अज़रबैजानी साहित्य की नींव डाली और अज़रबैजानी यथार्थवादी व्यंग्यात्मक कहानी के विशिष्ट रूप का सूत्रपात किया।

विशेष रूप से जलील मामेदकुलीज़ादे ने, जिन्हें आज भी अज़रबैजान का अद्वितीय लघुउपन्यासकार माना जाता है, साहित्य में नायक के नये रूप – कर्मनिष्ठ, आत्मत्यागी किसान व उसके शत्रु मंदबुद्धि, घमण्डी बेक (जागीरदार) का सन्निवेश किया। जलील मामेदकुलीज़ादे की संक्षिप्त अभिव्यंजनात्मक कहानियां सामाजिक अंतरविरोध पर आधारित हैं। जलील मामेदकुलीज़ादे नारी के अधिकार व स्वतंत्रता, जनसाधारण के प्रबोधन के लिए संघर्ष करते रहे, धर्मसिद्धान्तों के प्रभुत्ववाद के विरोध के लिए आह्वान करते रहे।

जलील मामेदकुलीज़ादे ने अपने लेखन, पत्रकारिता, प्रकाशन व प्रबोधन की गतिविधियां महान अक्तूबर समाजवादी क्रान्ति के पश्चात भी जारी रखीं और गद्य की विधा के प्रथम सोवियत अज़रबैजानी लेखकों पर प्रत्यक्ष एवं गहरा प्रभाव डाला। क्रान्ति के पश्चात् के पन्द्रह वर्षों के दौरान भी कहानी ही गद्य की विधा का मुख्य रूप रहा। उसमें जलील मामेदकुलीज़ादे द्वारा सन्निविष्ट प्रबोधक प्रवृतियों का विकास होता रहा। प्रथम सोवियत अज़रबैजानी कहानीकारों व रूपरेखाकारों

में एम० एस० ओर्दूबादी, मिर्ज़ा इब्रागीमोव, मेख़्ती गुस्सेइन, अबुलगसन (उर्फ़ अलेकपेरज़ादे), इलियास एफ़ेंदियेव सामने आये। वे उस सबके बारे में लिखते थे, जो उनके समकालीनों – नये समाज के प्रवर्त्तकों को विह्वल करता था, अपने पाठकों को वे समझाते रहे, कि नयी जनसत्ता ने उन्हें क्या-क्या अधिकार प्रदान किये।

सन् तीस तथा विशेषत: चालीस के दशकों में कहानी ने शनैः शनैः अपना नेतृत्वकारी स्थान गद्य के किंचित वृहत् रूपों – लघुउपन्यास व उपन्यास को दे दिया। यह मात्र संयोग नहीं है। साहित्य के क्षेत्र में कहानियों व रूपरेखाओं के साथ पदार्पण करनेवाले लेखकों का लघु-उपन्यास व उपन्यास की ओर संक्रमण की अनिवार्यता का कारण उनकी व्यक्तिगत परिपक्वता, जीवन का अनुभव और बढ़ती सृजनात्मक कुशलता ही नहीं है, बल्कि स्वयं समाज की परिपक्वता के साथ-साथ उपन्यास की विधा के विशिष्ट गुण – सामाजिक जीवन के सभी क्षेत्रों और मनुष्य के अंतरतम व मनोवृति के सभी पहलुओं की व्यापक रूप से अभिव्यक्ति करने की संभावनाएँ – भी हैं। समय व जीवन लेखकों से जनता के जीवन में हो रहे ऐतिहासिक परिवर्त्तनों की गहरी सामाजिक-मनोवैज्ञानिक समझ की मांग कर रहे थे, जबकि इसके लिए उपन्यास व लघुउपन्यास अधिक उपयुक्त थे।

सन् पचास के दशक के मध्य तक अज़रबैजानी कहानी शनैः शनैः विस्मृति से मुक्त होने लगी, किन्तु एक नये रूप में सामने आने लगी। वह अब "पत्र-पत्रिका" विधा, उस समय की बुराइयों या किसी अन्य ठोस कारण से लिखी गयी रचना नहीं रही। उसमें मनोविज्ञानवाद का पुट गहरा होने लगा, अधिक चिरस्थायी नैतिक समस्याएं, न केवल तत्कालीन अज़रबैजान के बल्कि उसकी सीमाओं से परे के लोगों के लिए भी; सामयिक व रोचक कथानक पेश किये जाने लगे। कहानी में नयी सौन्दर्यपरक विशेषताओं व गुणों का काफ़ी समावेश होने लगा, वह कलात्मक दृष्टि से समृद्ध होने लगी और उसकी कालानुक्रमिक व भौगोलिक सीमाओं का विस्तार होने लगा।

आपके मनन के लिए प्रस्तुत कहानियों की रचना गत दो दशकों में हुई और वे आपको आधुनिक अज़रबैजानी कहानी, इस मनोरम प्रदेश के लेखकों में सृजनात्मक रुचि जागृत करनेवाले विषयों तथा समस्याओं का पर्याप्त परिचय देती हैं।

आधुनिक अज़रबैजानी कहानी में केवल जनतंत्र व उसके लोगों के जीवन का वर्त्तमान ही प्रतिबिम्बित नहीं होता है। लेखकों ने स्वतंत्रतापूर्वक "काल-यात्रा" की है। और यह भी संयोग की बात नहीं है। बहुजातीय सोवियत गद्य में और ख़ास तौर से अज़रबैजानी गद्य में

सन् ६० व सन् ७० के दशकों में आम तौर पर लेखकों की चेष्टा हमारे इतिहास की उपलब्धियों पर दृष्टिपात करने की, सोवियत मनुष्य के श्रम के कारनामों का जायज़ा लेने की और यह समझने के लिए उसके दिल में झाँकने की रही है कि क्या वह सुखी है, क्या अपने बीते वर्षों से सन्तुष्ट है, क्या वह समझता है कि उसने क्या कर दिखाया है। कहानियाँ स्मृतियों, चिन्तन, भावात्मक वैराग़ के साथ-साथ अति-नाटकीयता से जुड़ी मानवीय अस्तित्व की अमौलिकता की असंदिग्धता की मनोदशा तथा नित्य-प्रति के जीवन के सुख के प्रस्तुतिकरण से ओत-प्रोत हैं।

पुरानी पीढ़ी के लेखक – मिर्ज़ा इब्रागीमोव, मेख़्ती गुस्सेइन, सुलैमान रगीमोव, अबुलगसन (अलेकपेरज़ादे), इलियास एफ़ेंदियेव, एनवेर मामेदख़ानली – जलील मामेदकुलीज़ादे के समय की क्लासिकी कहानियों की काव्यात्मकता का विकास कर रहे हैं।

मध्य पीढ़ी के लेखक – इमरान कासुमोव, साबिर अख़मेदोव, गुस्सेइन अब्बासज़ादे, सुलैमान वेलियेव – पुरानी पीढ़ी से घनिष्ठ रूप से जुड़े हैं, किन्तु कहानी के रूप व सौन्दर्यबोध में अपनी विशिष्टता बनाये रखने का प्रयास करते हैं।

सन् साठ के दशक में सृजन आरम्भ करनेवाले गद्यकारों – सर्वप्रथम ईसा गुस्सैनोव, चिन्गीज़ गुस्सैनोव, मकसूद इब्रागीमबेकोव, रुस्तम इब्रागीमबेकोव, अक्रम ऐलिसली, इसि मेलिकज़ादे, अनार, एल्चिन ने काफ़ी सीमा तक आधुनिक अज़रबैजानी कहानी को अपनी नयी पहचान दी है।

पुरानी पीढ़ी के लेखकों की कृतियां अतीतोन्मुख हैं और अतीत की वर्त्तमान से तुलना करती हैं। अन्य लेखकों की कृतियों की तुलना में उनमें आपबीती, स्मृतियों का प्रभाव तथा चिन्तन-मनन अधिक महसूस होता है।

मिर्ज़ा इब्रागीमोव ने कहानी "पेरी-ख़ाला और लेनिन" की रचना की, जिसमें उन्होंने एक सच्ची घटना, एक साधारण किसान नारी के भाग्य का वर्णन किया, जिसे महान अक्तूबर समाजवादी क्रान्ति ने नया जीवन प्रदान किया, उसे मास्को देखने, लेनिन से मिलने और उनसे बातचीत करने का अवसर प्रदान किया। कहानीकार ने सोवियत अज़रबैजानी मेहनतकश के चरित्र की विशिष्टता – अपनी व्यक्तिगत समृद्धि की नहीं, बल्कि अपने गांव, शहर, जनतंत्र और लोगों की आवश्यकताओं की चिन्ता करने की विशेषता को मनोवैज्ञानिक दृष्टि से ठीक और यथार्थवादी तरीक़े से प्रस्तुत किया है। यही चिन्ता, मनुष्य की उस समय के प्रति नागरिक-सुलभ ज़िम्मेदारी, जिसमें वह रह रहा है सारे लोगों

के नैतिक रूप का आधार बन गयी है और किसी न किसी हद तक प्रस्तुत संग्रह की हर एक कहानी में दृष्टिगोचर होती है।

मेख़्ती गुस्सेइन ने अपनी कहानी "प्रतिद्वंद्वी" में दो मित्रों – श्रम के क्षेत्र के प्रतिद्वंद्वियों – तेल उद्योग के कर्मियों एइबात और पीरवेली के व्यक्तित्वों का जीवन्त चित्रण किया है। इलियास एफ़ेन्दीयेव ने अपनी कहानी की रचना पुराने व नये ज़माने के अंतरविरोध पर रची है: किर (तारकोल व बालू का विशेष मिश्रण, जिससे अज़रबैजान के अनेक शहरों व इलाक़ों में घरों की छतों पर पलस्तर किया जाता था) के काम का बाकू का नामी उस्ताद कारीगर अपने शागिर्द से इस लिए वंचित रह जाता है, कि पुराने पेशे की उपयोगिता कम होती जाती है – घरों की छतों पर पलस्तर नये व टिकाऊ मसालों से किया जाने लगता है और किर के कारीगरों को काम मिलना बंद होता जाता है। लेकिन शागिर्द का पुराना हुनर सीखना व्यर्थ नहीं जाएगा – उसका कौशल नयी सड़कों के निर्माण में ज़रूर काम आयेगा। यह कहानी ("छवैया और लाल फूल") अतीत के गर्त में समा रहे, कभी वापस लौटकर न आनेवाले समय के प्रति विषादपूर्ण चिन्तन से परिपूर्ण है, पर उस में निराशा का कहीं नाम ही नहीं – युवाजन नयी दुनिया के मार्गों का निर्माण करने चले जाते हैं।

सोवियत अज़रबैजानी साहित्य के संस्थापकों में से एक सुलैमान रगीमोव की कहानी "जीवन की कुंजी" नयी, जुझारू और उदीयमान पीढ़ी के प्रति ध्यान से परिपूर्ण है। उसका विषय प्रत्यक्ष रूप से जीवन से लिया गया है।

शहर में रह रहे ओहदेदार चाचा के पास दूर गाँव से उसका भतीजा आता है। लेकिन परम्परा के विपरीत भतीजा चाचा से सहायता की प्रार्थना नहीं करता – वह केवल समय-समय पर उसे बताता रहता है कि उसने टेकनिकल स्कूल में प्रवेश ले लिया है कि उसे पास करने पर उसे नियुक्तिपत्र मिला है, वहाँ उसकी निदेशक से, जो उसके मतानुसार कर्मचारियों के तकनीकी सुधारों सम्बन्धी सुझावों पर समुचित ध्यान नहीं देता, बहस होती है, फिर वह निदेशक पर अपनी विजय, नयी तकनोलोजी के इस्तेमाल के लिए मिले बोनसों, नये फ़्लेट की चाबी मिलने, उच्च शिक्षा संस्थान में उसके प्रवेश लेने इत्यादि के बारे में बताता है। वृद्ध नयी पीढ़ी को देख-देखकर प्रसन्न होता है, उसकी सफलताओं पर खुश होता है।

अज़रबैजानी कहानी में पुराने व नये, नये व पुराने ज़माने भिन्न-भिन्न रूपों व भिन्न-भिन्न सम्बन्धों में प्रदर्शित किये गये हैं। इस पृष्ठभूमि में गुस्सेइन अब्बासज़ादे की कहानी "आदमी का नाम" विशेष

महत्व रखती है। बूढ़ा तेल उद्योग-कर्मी रिटायर होता है। उसे अपने शहर में जिसे उसने खुद अपने हाथों से बनाया, घूमना बहुत अच्छा लगता है। अपनी ऐसी ही एक सैर के समय वह संयोगवश एक सुप्रसिद्ध केमरामैन की निजी प्रदर्शनी में पहुँच जाता है। वह जीवन भर समाचार-पत्र खोलते समय अपने जनतंत्र में होनेवाले श्रमिक कारनामों को अंकित करनेवाले फ़ोटो के नीचे उसका नाम पढ़ता आया था। प्रदर्शनी में भी वह बीते वर्षों के जाने-पहचाने पुराने फ़ोटो को पहचान जाता है। लेकिन साथ ही नये फ़ोटो भी देखता है। उसे एक फ़ोटो में सुब्बोतनिक के अवसर पर श्रम-दान कर रहे अपने दो मित्र दिखाई देते हैं। वह सुब्बोतनिक सन् १९२२ में आयोजित किया गया था। उसके मित्र महान देशभक्तिपूर्ण युद्ध में वीर गति को प्राप्त हुए, लेकिन वे वास्तव में थे, तो फिर फ़ोटो के नीचे उनके नाम क्यों नहीं है? वृद्ध को यह बहुत बुरा लगता है, वह प्रदर्शनी के आयोजकों को ढूंढ़ने लगता है और उनसे केमरामैन का पता मालूम करके उसके घर जाता है। वृद्धों में दोस्ती हो जाती है, फ़ोटो के नीचे मित्रों के नाम लिख दिये जाते हैं, पर सबसे आश्चर्यजनक बात यह होती है कि अल्बम के लिए चुने गये एक फ़ोटो में जिस में एक युवा मजदूर चित्रित था, वह अपने को पहचान लेता है, और उसे अपनी युवावस्था के वह बीते, श्रम के प्रति उत्साह से ओत-प्रोत वर्ष याद आते हैं।

बीतते पुराने ज़माने व जीवन की पुरानी पड़ी धारणाओं के चित्र, नयी मनोवृत्ति तथा नयी आकांक्षाओंवाली नयी दुनिया की उत्पत्ति की अवश्यम्भाविता का सर्वदिग्दृश्य चिंगीज़ गुस्सैनोव की मौलिक कहानी "द्वीप" में प्रस्तुत किया गया है। लेखक का गतिमय नायक अपने जीवन का, इस दुनिया में अपनी पहली चीख से, स्मरण करने लगता है और उसकी मन की और भावुक आँखों के आगे माँ, बाप, दादी, पड़ोसी, पत्नी, बेटा, अपने शहर का रास्ता, घर, कपड़े, एक परिवार के जीवन की झलकियाँ और समस्त देश का जीवन घूम जाते हैं।

संकलन की कहानियों में एक प्रकार से हर व्यक्ति विशेष तथा सारे देश की प्रमुख घटनाओं को एक सूत्र में पिरो दिया गया है: महान अक्तूबर समाजवादी क्रान्ति, महान देशभक्तिपूर्ण युद्ध और ऐसी घटनाएँ भी जो किसी व्यक्ति विशेष के भाग्य के लिए ही महत्वपूर्ण हैं। किन्तु अर्थपूर्ण व किसी व्यक्ति विशेष के भाग्य के लिए महत्त्वपूर्ण घटनाओं का स्वरूप नियमतः सार्वजनिक है। इसका सम्बन्ध विशेष रूप से अज़रबैजानी गद्यकारों की दृष्टि में पावन व प्रिय विषय – ममता तथा आत्मत्याग – से है।

हिटलरवादी आक्रमणकारियों के विरुद्ध सोवियत लोगों के महान

देशभक्तिपूर्ण युद्ध के बारे में प्रस्तुत संकलन में केवल एक ही कहानी है – अपने बच्चे के लिए जीवन त्यागनेवाली माँ के बारे में नीति-कथा "हिम प्रतिमा"। एनवर मामेदख़ानली ने नारी-माँ के अत्यन्त काव्यात्मक प्रतिरूप की रचना की है। अपने बच्चे की फ़ासिस्टों से रक्षा कर रही माँ मोर्चे को पार करके अपने रक्षकों – सोवियत सेना के योद्धाओं की तरफ़ भागती है। वह बर्फ़ से ढके, जकड़े मैदान में से होकर भागती है। जब वह महसूस करती है कि उसका बालक जमा जा रहा है, नन्हे बेटे का बदन गरम रखने के लिए वह अपने कपड़े उतारकर उस पर लपेट देती है... सुबह सोवियत गुप्तचरों को मैदान में अपनी गोद में जीवित बच्चे को सम्भाले माँ की बर्फ़ीली मूर्ति दिखाई देती है।

नयी पीढ़ी के गद्यकार घटनाओं का विकास व नायकों के चरित्र-चित्रण को ऐसी पराकाष्ठा तक नहीं ले जाते, वे जीवन के अत्यन्त यथार्थवादी तथा मनोवैज्ञानिक दृष्टि से सही दृश्यों तथा समकालीनों के प्रतिरूपों का चित्रण करते हैं। अनार की कहानी "साल की आखिरी रात" में माँ का प्रतिरूप सहृदय स्वीकारोक्ति तथा आदर से ओत-प्रोत है। बच्चों को विधवा माँ की ज़रूरत होती है, वह बिना थके उनकी परवरिश करती है, अपने घर को साफ़-सुथरा रखती है, पर त्योहार पर वह अकेली रह जाती – बड़े होकर बच्चे उधर चले जाते हैं जहाँ ख़ुशियाँ हैं, जहाँ नये सम्बन्ध स्थापित होते हैं, जहाँ उनके दोस्त उनका इन्तज़ार कर रहे हैं और माँ के पास केवल अपने पति की टेप की हुई आवाज़ ही साथ रह जाती है।

रुस्तम इब्रागिमबेकोव की कहानी "सागर तट पर एक बंगला" माँ के निस्स्वार्थ आत्मत्याग की प्रशंसा से परिपूर्ण है। रिटायर होने पर माँ को अचानक महसूस होता है कि उसके बड़े व मैत्रीपूर्ण परिवार में से केवल वह और पति ही साथ रहे हैं। बच्चे बड़े हो गये और सबने अपने-अपने घर बना लिये। आपस में मिलने-जुलने की उन्हें फ़ुरसत ही नहीं मिलती। माँ ने उन सबके लिए एक बड़ा घर – बंगला बनवाने की ठान ली है जिस में वे रात गुज़ारने घर लौटने पर बरबस आपस में मिल सकें। बेटे माँ के विचार का समर्थन करते हैं, उसको मदद देने का वादा करते हैं और ग़ायब हो जाते हैं। और माँ अकेली बंगला बनवाती है, अपने घातक रोग के बारे में जानते हुए और यह भी जानते हुए कि नये घर में वह नहीं जी पायेगी।

चिंगीज़ गुसैनोव की कहानी "द्वीप" में, अक्रम ऐलिसली की कहानी "दादी का तम्बाकू का थैला" में, इसि मेलिकज़ादे की कहानी "बेटा" में माँ के हृदयस्पर्शी ममता से परिपूर्ण प्रतिरूप प्रस्तुत किये गये हैं।

प्रस्तुत संकलन में शामिल की गयी अनेक कहानियों का मुख्य विषय – सम्भवतः इस बड़ी बदलती दुनिया में व्यक्ति का स्थान, अपनी परिवाररूपी छोटी दुनिया में व्यक्ति का स्थान ही है। कुछ लेखक अपनी प्रतिभा व सृजनात्मक रुचि के अनुरूप व्यक्ति का चरित्र-निरूपण सामाजिक सम्बन्धों की पेचीदगियों में करते हुए बड़ी दुनिया में उसके स्थान को सर्वोपरि रखते हैं, और कुछ को अपने नायक को परिवार के दायरे में दिखाना रुचिकर लगता है जो अतिआवश्यक निजी या मनुष्य के सामान्य सुख की समस्या है। सुख भी मनुष्य के लिए आवश्यक है, उतना ही आवश्यक है जितना कि मातृभूमि से प्रेम की भावना, लोगों के लिए सामाजिक रूप से लाभकारी होने की अनुभूति। सीधे-सादे नाई को ही ("बाग़ में एक पुरसुकून जगह") लीजिए, उस व्यक्ति को जिसके कौशल के लिए मंत्री और बड़े-बड़े विद्वान उसका आदर करते हैं। उसका आदर करते हैं, उसके स्वास्थ्य और समय का ख़याल रखते हैं, जब कि घर पर... घर पर लोग उसकी अवहेलना करते हैं, उसके कारण शर्मिन्दगी महसूस करते हैं। उसकी पत्नी ने उच्चशिक्षा संस्थान में शिक्षा पायी, बच्चे विदेशी भाषाएँ और संगीत सीखते हैं जबकि उनका पिता – मामूली पढ़ा-लिखा और जैसा कि घरवालों का सोचना है, समाज में उठना-बैठना नहीं जानता। और वे इस के बारे में सोचते तक नहीं कि अगर वह न होता, वे कुछ नहीं बनते। मनुष्य के अंतरतम की गहराई में पैठना, उसकी विशेषताओं को समझना, उसकी आत्मिक गतियों का अध्ययन करना, समय की गम्भीर नैतिक समस्याओं को उनके सामाजिक परिप्रेक्ष्य में सामने रखना युवा प्रतिभाशाली गद्यकार मकसूद इब्रागिमबेकोव के लिए विशेष है।

यदि उन लेखकों की शैली की व्यक्तिगत विशेषताओं, उनके व्यक्तित्व की चर्चा की जाये जिनकी कृतियाँ प्रस्तुत संग्रह में शामिल की गयी हैं, तो अक्रम ऐलिसली के गद्य की मर्मस्पर्शी प्रगीतात्मकता, इसि मेलिकज़ादे की शैली में विस्तृत यथार्थवादिता अज़रबैजानी गद्य के सर्वाधिक युवा प्रतिनिधि एलचिन की बुद्धिवादिता, रुस्तम इब्रागीमबेकोव की शैली की नाट्यकला, इमरान कासुमोव की सिनेमा के प्रभाव के फलस्वरूप बनी विशिष्ट कलात्मक शैली का विशेष रूप से उल्लेख किया जाना चाहिए।

असाधारण रूसी सोवियत लेखक तथा फ़िल्म निर्देशक वसीली शुक्शिन ने साहित्यक विधा की दृष्टि से कहानी की लाक्षणिक विशेषताओं के बारे में, जिसमें व्यक्ति विशेष कथावस्तु तथा मनोवैज्ञानिक एकाग्रता संक्षिप्त वर्णन के औपचारिक तथा संरचनात्मक लक्षणों का निर्धारण करती है, जैसे शाब्दिक मितव्ययिता, संक्षिप्तता, शैलीगत संसाधन, विवरण की सरलता, अपने विचार व्यक्त करते हुए लिखा था कि कहानी में मनुष्य के जीवन के संकेंद्रित चित्रण के साथ-साथ उस दृश्य, घटना, प्रसंग में कुछ सामान्य दृश्यों का समावेश भी होना चाहिए। "मानवीय कर्म कहानी में आकर्षण का केंद्र होने चाहिए..." व० शुक्शिन बल देकर कहते थे। "मानवीय कर्मों को मेज़ पर बैठे-बैठे नहीं गढ़ा जा सकता। मानवीय कर्म, जब वे कल्पित नहीं होते, सदा गतिशील होते हैं और उनका शाश्वत पुनर्नवीकरण होता रहता है।"

प्रस्तुत गद्य संग्रह उस विविधता – रूप की, विषय की और कथावस्तु की भी – को देखने में सहायता करेगा, जो आज की अज़रबैजानी कहानी की विशेषता है। यह जीवन की महत्त्वपूर्ण घटनाओं पर अपनी प्रतिक्रिया दिखाने में सक्षम हमारे समकालीनों की दुनिया में झांकने का अवसर प्रदान करता है, पाठकों को चिन्तन-मनन के लिए प्रेरित करता है, एक प्रकार से हमारे चारों ओर की वास्तविकता के सच्चे मूल्यों के साथ मानवीय चरित्रों व कर्मों की ठोस अभिव्यक्तियों की सहसम्बद्धता में समन्वय स्थापित करने का नये सिरे से अवसर प्रदान करता है।

स्वेतलाना अलीयेवा,
पी० एच डी०
(भाषा शास्त्र)

अबुलगसन अलेकपेरज़ादे

(जन्म — १९०६)

छात्रावस्था में ही अलेकपेरज़ादे की पहली रचना प्रकाशित हुई थी। उनकी आरम्भिक कहानियों का कथ्य क्रांति के बाद के वर्षों में नयी मनोवैज्ञानिक प्रवृत्तियों तथा नयी नैतिकता का निर्माण था। उन्होंने अज़रबैजानी नारियों की प्रतिबन्धात्मक, रूढ़िगत सामाजिक रीति-रिवाजों से मुक्ति का भी पृष्ठ-पोषण किया।

द्वितीय विश्व युद्ध के दौरान अबुलगसन ने सेवास्तोपोल की वीरतापूर्ण प्रतिरक्षा में भाग लिया। उनके युद्धकालीन अनुभवों की प्रतिच्छवि उनके उपन्यास "मैत्री गढ़" में मिलती है। इसमें इस वीर नगरी के लिए पहली लड़ाई से इसके उद्धार तक की कहानी है। यह वस्तुतः सेवास्तोपोल की मुक्ति के लिए संघर्ष की वृत्तान्त-गाथा है। अबुलगसन इस नगर के लिए ख़ूनी लड़ाइयों में एक अज़रबैजानी यूनिट की भूमिका का जीता-जागता वर्णन प्रस्तुत करते हैं। "गा, बुलबुल, गा!" शीर्षक कहानी भी द्वितीय विश्व युद्ध से ही सम्बन्धित है। प्रस्तुत कहानी में अबुलगसन ने गुप्तचर एजेण्टों के वीर-कृत्यों का वर्णन किया है।

अबुलगसन अलेकपेरज़ादे

गा, बुलबुल, गा!

"बैटरी, फ़ायर!"

लम्बी दूरी तक मार करनेवाली तोपों ने गोलों की बौछार कर दी। तोपों की लम्बी-लम्बी नलियों से आग की लपटें फूट पड़ीं। गूंज उठी गड़गड़ाहट से चट्टानों की नींव हिल गयी और जंगल कांप उठा। अभी तोपों की गरज अथाह शून्य में विलीन हुई ही थी कि फिर से आदेश गूंज उठा:

"फ़ायर!"

और तोपें एक बार फिर गरज उठीं।

सिगनल बज उठा: "हवाई जहाज़ आ रहे हैं।"

शीघ्रातिशीघ्र लेकिन बिना किसी हड़बड़ी के तोपची तोपख़ाने को १०० मीटर दूर गुफ़ा में ले गये।

दुश्मनों के पांच हवाई जहाज़ों से बीस बम गिराये गये। विस्फोटों के कारण धरती विदीर्ण-सी होती प्रतीत हुई। आस-पास के सभी वृक्षों को बम धराशायी कर गये थे।

लेकिन इस बार भी दुश्मन कोई प्रत्यक्ष क्षति पहुंचाने में असफल रहे थे। दुश्मन के हवाई जहाज़ तोपख़ाने के पड़ाव-स्थल का ऊपर ही ऊपर से चक्कर लगाकर भाग गये।

तोपखाना अपने पहलेवाले ठिकाने पर लौट आया था। तोपखाने के कमाण्डर अख़्मेदोव की आवाज़ एक बार फिर सुनाई दी: "फ़ायर!"

पिछले दस दिनों से यही स्थिति बनी थी।

तोपख़ाने की सामरिक सफलताओं से कमाण्डर से लेकर सैनिक तक, सब के सब ख़ुश थे। लेकिन तोपख़ाने का कमाण्डर सार्जेण्ट अस्केर विशेष रूप से हर्षित था। कोलाहलरहित संध्या के समय वह जंगल की ओर मुंह करके आवाज़ देता था: "गा, मेरी बुलबुल, गा!"

और आश्चर्यजनक बात यह थी कि उसके आह्वान के प्रत्युत्तर में जंगल से किसी बुलबुल का कोमल, सचेत गीत सुनाई देने लगता। अगर कभी बुलबुल उसके आह्वान के प्रत्युत्तर में थोड़ी देर कर देती तो अस्केर स्वयं गाना शुरू कर देता:

ऐ उर-बसी, चयित पंखुड़ियों से
मैं बनाता हूं गुलाब-जल;
किन्तु बुलबुल को गर कुछ हो गया,
भयानक प्रतिशोध मैं लूंगा...

इस तरह अस्केर हर बार बुलबुल से गाने को कहता और जैसे उसकी बात समझकर बुलबुल हर बार उसके अनुरोध पर गाने लगती थी।

इसमें कोई चमत्कार न था। निस्सन्देह, सार्जेण्ट पक्षियों की भाषा से अनभिज्ञ था, बुलबुल के बसेरे की भी उसे कोई जानकारी न थी। लेकिन वह जानता था कि वसंत में बुलबुल ख़ूब गाती हैं और उनका गाना लोगों को दिलासा देता, लोगों को अपनी पीड़ाएं भूलने में मदद करता है।

लड़ाई चलती रही, महाकाल का ताण्डव होता रहा। लेकिन वसन्त के बाहुपाश में धरती उल्लसित हो उठी, मैदानों पर हरित क़ालीन बिछ गये। सन्ध्याएं हल्की नारंगी किरणों से आलोकित होने लगीं और जैसे इस समस्त सौन्दर्य से तादात्म्य के लिए वसन्त ने लम्बे पोपलर के पेड़ की फुनगी पर बुलबुल को बैठाकर गाने का आदेश दे दिया था।

सार्जेण्ट को वसन्त की अनुभूति पूरे तन-मन से हो रही थी। इस अनुभूति से हृदय के आप्लावित होने पर वह गा उठता था:

मुझे प्यार है, वसन्त का इन्तज़ार है,
प्रेयसी से मिली प्रेम-पाती-सा।
वसन्त के आगमन में प्रतीक्षारत
गीत गाती बुलबुल मधु-सा।

इसके बाद बुलबुल की स्वर-लहरी फूट पड़ती। उसके गीत किसी उमसे दिन में स्वच्छ सोते के जलरव-से होते।

पूरा का पूरा दस्ता उसकी स्वर-लहरी में खो जाता।

"यह हमारी बुलबुल है, हमारी बैटरी की बुलबुल, वह तोपों की गड़गड़ाहट से न तो भयभीत होती है न उड़ भागती है!"

अस्केर सीना ठोंककर शेखी बघारता: "मेरे कारण। अगर मैं नहीं होता, बुलबुल कब की उड़नछू हो गयी होती।"

कई दिनों बाद, सवेरे-सवेरे जब सार्जेण्ट लड़ाई के लिए तोपख़ाने को तैयार कर रहा था, किसी उल्लू की आवाज़ गूंज उठी। आवाज़ हूबहू उसी जगह के आस-पास से आयी थी जहां से बुलबुल का गीत आम तौर से सुनाई देता था और उस आवाज़ को सुनकर सार्जेण्ट की रीढ़ में सिहरन हो आयी। अस्केर कायर नहीं था: उसे किसी चीज़ का भय न था और कई बार उसने आंखों में आंखें डालकर मौत का सामना किया था लेकिन इस समय भय ने उसके हृदय को जकड़ लिया था।*

उल्लू की चीख़ में बुलबुल का गीत डूबा नहीं। अस्केर सुनता रहा। वह उल्लू के ठिकाने का पता लगाना चाहता था। उसकी चीख़ कभी बहुत दूर से, कभी एकदम आस-पास से आती सुनाई देती।

अस्केर को इस पक्षी से घृणा थी; वह इस पक्षी को फ़ासिज़्म का प्रतीक मानता था और अगर इजाज़त दी जाती तो उसका हमेशा-हमेशा के लिए काम तमाम करने के हेतु वह आसमान ज़मीन एक कर देता।

उधर बुलबुल की चहचहाहट निरन्तर जारी थी। वह अपने इस

* अंधविश्वासों के मुताबिक़ उल्लू का आना अशुभ है, वह दुर्घटना एवं विनाश का प्रतीक माना जाता है।

दुर्वह शत्रु या दुनिया की हर चीज़ से बेख़बर थी। अस्केर बुलबुल के लयपूर्ण गीत और उल्लू की चीखें सुनता रहा, साथ ही साथ भयभीत भी होता रहा कि कहीं बुलबुल किसी कारणवश न मर जाये। कभी-कभी उसे यह भी महसूस होता कि वह बुलबुल की अपेक्षा स्वयं अपने लिए और अपने दोस्तों के लिए कहीं अधिक भयभीत था। वह मन में यह विश्वास जमाने की कोशिश कर रहा था कि उल्लू मात्र एक सामान्य पक्षी है, उसे भयानक स्वर प्रकृति से मिला था और उसे अशुभ मानना अन्धविश्वास तथा अज्ञानता के सामने घुटने टेकना था। लेकिन खुद को दिलासा दिलाने के उसके सारे प्रयास निरर्थक हो रहे थे। लाख सोच-विचार के बावजूद उसका दिल ज़ोर-ज़ोर से धड़कता ही रहा। उसे ऐसा पूर्वाभास हो रहा था कि उल्लू बुलबुल के लिए, उसके लिए, पूरे तोपख़ाने के लिए – दोनों के लिए बदनसीबी लायेगा।

तोपख़ाने के कमाण्डर अख़्मेदोव ने अस्केर की बातें ध्यान से सुनी। युवा सैनिक की घबड़ाहट को वह ठीक महसूस कर रहा था।

"चिन्ता न करो," वह बोला। "हम उस उल्लू को ढूंढ़ निकालेंगे, उसका बसेरा नष्ट कर डालेंगे और तब हमारे तोपख़ाने की बुलबुल फिर गाने लगेगी।"

उस दिन दुश्मनों के हवाई जहाज़ों ने कई बार हमले किये। कुछ सैनिक घायल हुए तो कुछ और मरे भी।

सार्जेण्ट अस्केर हड़बड़ाता हुआ अख़्मेदोव के पास जा पहुंचा।

"कॉमरेड कमाण्डर," उसने कहा, "देखा आपने, उल्लू के यहां आ बसते ही हमें बदक़िस्मती का मुंह देखना पड़ा।"

अख़्मेदोव भी क्षतियों एवं असफलताओं के बारे में सोच में पड़ गया। लेकिन उसके विचार अस्केर की अवसादकारी आशंकाओं से विपरीत थे।

सुबह-सुबह, तोपख़ाने ने अभी दुश्मन की पंक्तियों के पृष्ठभाग पर गोलों की बौछार शुरू की ही थी कि उनके ऊपर दुश्मन बमवर्षकों का एक ग्रुप मंडराता दिखाई दिया। इस बार बमों के कारण कई तोपों को नुकसान पहुंचा था; कई लोग घायल हुए थे, कुछ आहत भी हुए थे।

जैसे ही विस्फोटों की धमक शान्त पड़ी, उल्लू की चीखें सुनाई

देने लगीं। हालांकि तोपख़ाने का कमाण्डर अन्धविश्वासी न था, वह भी ग़ुस्से से गरज उठा: "अशुभ पक्षी!"

शेष दिन उदासीन निस्तब्धता में व्यतीत हुआ। मानो मृतकों का शोक मनाती बुलबुल भी ख़ामोश थी। लेकिन उल्लू ख़ुशियां मना रहा था। कभी उसकी चीख दूर से, कभी एकदम कैम्प के पास से आती सुनाई देती। प्रकृति भी उसकी चीख़ों से क्रुद्ध हो दुखी हो उठी; आकाश में बादल छा गये, हवा ग़ुस्से से पेड़ों की फुनगियों को झकझोरने लगी।

हवा के सुर में सुर मिलाते हुए तोपख़ाने का कमाण्डर भी बोल उठा: "तैयार हो जाओ! रात्रि भोजन के बाद हम यह ठिकाना छोड़ देंगे।"

दस्ता कमाण्डरों में से एक ने जिसकी अख़्मेदोव से दोस्ती थी, उससे कहा: "क्या उल्लू से डर गये?"

दिन की घटनाओं से बुझा-बुझा सार्जेण्ट अस्केर ज़ाहिरी तौर पर यूं ही पूछ बैठा: "क्या हम बुलबुल को छोड़ जायेंगे?"

"उसने तो तुम्हें पहले ही छोड़ दिया, बुद्धू," कमाण्डर ने जवाब दिया।

"नहीं, कॉमरेड कमाण्डर। वह भागी नहीं। वह अपमानित महसूस कर रही है। इसी कारण वह गा नहीं रही है।"

अस्केर को उसकी कपोल-कल्पनाओं के लिए डांट पिलाये बिना अख़्मेदोव ने खुद पर क़ाबू पा लिया। अस्केर स्वयं वहां से चला गया और गाने लगा।

मुझे एक गुलाब से प्यार है;
पंखुड़ियों के झड़ने से गुलाब ज़ख़्मी होता है।
अजनबी माली, इस बाग़ में क़दम न रखना –
बुलबुल का दिल दुखेगा,
गुलाब बुरा मानेगा।

उनके प्रस्थान की सारी तैयारियां पूरी हो चुकी थीं। अस्केर अपना बुग़चा भी बांध चुका था। उस पर लगातार नज़र रख रहे अख़्मेदोव ने उसे बुलाया: "यहां आओ।"

अस्केर उछलकर उठ खड़ा हुआ और अपने कपड़े ठीक करता दौड़ पड़ा।

"जी, कॉमरेड कमाण्डर!"

अख़्मेदोव ने सार्जेण्ट को घूरकर देखा: "तुम कहां जा रहे हो?"

"क्या हम यहां से कैम्प नहीं उठा रहे, कॉमरेड कमाण्डर?"

"तुम यहीं रुकोगे।"

सार्जेण्ट कमाण्डर को दुबारा कुछ कहने का मौक़ा नहीं देना चाहता था।"बहुत अच्छा, कामरेड कमाण्डर!" उसने कहा और सलामी दी।

"मैं यहां तुम्हें उस पक्षी को पकड़ने के लिए छोड़ रहा हूं।"

अस्केर मुस्करा उठा। पहले उसे लगा कि कहीं कमाण्डर मज़ाक तो नहीं कर रहा है। फिर ख़्याल आया: "मज़ाक़ क्यों करेगा? बुलबुल को यहां नहीं छोड़ जाने के बारे में बातचीत हुई ही थी।"

"धन्यवाद, कॉमरेड कमाण्डर," वह बोला। आप जानते ही है, यह बुलबुल बहुत बेशक़ीमती है।"

कमाण्डर ने उसकी बात बीच में ही काट दी। "तुम्हें बुलबुल को पकड़ना नहीं है।"

"तो लवा ही सही... पक्षी यहीं कहीं छुपा होगा, पोस्ता या गेहूं के खेत में। लगातार गाता रहता है। मैं पूरा कॉकेशिया घूम चुका हूं; मुझे बहेलियों से भी जान-पहचान है, मैंने पक्षियों के बहुत से गीत भी सुने हैं लेकिन ऐसी सुखद लय मुझे पहले कभी सुनने को नहीं मिली थी।"

सूर्यास्त हो चुका था। अख़्मेदोव सार्जेण्ट का चेहरा तो नहीं देख सका लेकिन उसके स्वर की उत्तेजना उसने ज़रूर महसूस कर ली थी।

"तुम्हें लवों को भी नहीं पकड़ना है," वह कोमल स्वर में बोला। "लवों... बुलबुलों, इन सबसे हमारा क्या वास्ता? उन्हें जंगल में रहने-गाने दो।"

अस्केर उलझन में पड़ गया। क्या कमाण्डर सच में मज़ाक़ ही कर रहा था?

अख़्मेदोव ने उसकी उलझन हटा दी। "अटकल लगाने में समय ज़ाया न करो, अस्केर। तुम्हें उस उल्लू को पकड़ना है!"

"उल्लू को?" अस्केर चकित था। "हम लोग तो यह जगह छोड़कर जा रहे हैं न? उसे दिल भर चीख़ने दीजिए फिर। हमें उल्लू से क्या लेना-देना?"

"पहले हम उसे पकड़ेंगे। फिर देखेंगे, उसका क्या करना चाहिए।"

और अख़्मेदोव सार्जेण्ट को बात समझाने लगा। आवश्यक निर्देश देने व सार्जेण्ट को विदा करने के बाद अख़्मेदोव ने राजनीतिक अनुदेशक को बुला लिया:

"क्या तोपख़ाना तैयार है?" उसने पूछा। हां में जवाब मिलने के बाद उसने कहा।

"जवानों को तोपें यथास्थान छोड़ देने को कहो। पथरीली सड़क से आगे बढ़कर दो-तीन गाड़ियों को ख़ूब शोर मचाने का आदेश दे दो। यहां रहनेवाले हर किसी को चेता दो कि उनके जाने के बाद सूई गिरने की भी आवाज़ न हो। सन्तरियों की ड्यूटी लगा दो और बाक़ी लोगों को सोने दो। गाड़ियों के साथ जानेवाले लोगों को दूसरी ऊपरवाली सड़क से दो घंटे बाद लौटना चाहिए। यक़ीनी तौर पर सब कहीं पूरी ख़ामोशी होनी चाहिए। फिर हम देखेंगे कि हमारा उल्लू क्या करता है।"

गाड़ियों की चर्र-चूं व खड़पड़ बन्द होने के बाद ही उल्लू कई बार चीख़ उठा।

"चीख़ने दो," अख़्मेदोव सोच रहा था। "हमारे जवानों को इससे मदद ही मिलेगी।"

न तो तोपख़ाने के कमाण्डर को, न तो राजनीतिक अनुदेशक को, न तो बैटरी कमाण्डर को ही उस रात नीन्द आयी। वे बैठे-बैठे रात्रि-कालीन ध्वनियों को तत्परतापूर्वक सुनते रहे। हर कोई जानने को उत्सुक था कि निस्तब्धता के इस पर्दे के पीछे क्या हुआ...

अचानक ही चोटी पर से सीटी की आवाज़ सुनाई दी; एक हथगोला फूटा और कोई गरज उठा: "हाथ ऊपर!"

लगातार कई गोलियां चलीं और फिर ख़ामोशी छा गयी। उस ख़ामोशी को तोड़ती एक सुखद लयात्मक स्वर-लहरी सुनाई दी:

ऐ उर-बसी, गुलाब का सौन्दर्य है अक्षुण्ण,
जब तक उसे तोड़ा न जाये!
बगिया में गुलाब का दिल जीतने के लिए,
बुलबुल को आठ-आठ आँसू बहाने पड़ेंगे।

"लगता है अस्केर अपने शिकार के साथ आ रहा है," राजनीतिक अनुदेशक फुसफुसाकर बोला।

और दस मिनट बीतते न बीतते अस्केर आ पहुंचा। सैल्यूट देने के बाद उसने रपट दी: "कॉमरेड कमाण्डर, आपका आदेश पूरा किया गया। हमने उल्लू पकड़ लिये हैं। लेकिन एक जीवित नहीं रहा..."

वे खाई के अन्दर चले आये। जो कुछ हुआ था, उसके बारे में अस्केर जल्दी-जल्दी बताने लगा।

"जब गाड़ियों का शोर सुनाई दिया, वे अपनी छुपी जगहों से बाहर निकल आये। वे आगे बढ़ने लगे और हम पूरी चौकसी से उनके पीछे-पीछे चल पड़े। हमें गाड़ियों का चर्र-चूं व शोर-शराबा सुनाई दे रहा था। फिर मैंने देखा तो वे आपस में खुसुर-फुसुर करने लगे और उनमें से एक ने उल्लू की तरह चीखा। मैं आश्चर्यचकित हो उठा। यह रही बात! तभी मुझे पता चला कि कौन-सा उल्लू हमारे पास आ बसा। फिर वे दो आदमी आपस में भौंकते-से बातचीत करने लगे। उनमें से एक छुपने की जगह पर जाकर रेडियो के द्वारा कोई सन्देश भेजने में लग गया। दूसरा आदमी उल्लू की नक़्ल करता कई बार चीख़ा और फिर अपने साथी के पास चला गया। मैंने अपने जवानों को क़रीब आ पहुंचने का संकेत दिया; मैं उन पक्षियों को ज़िन्दा पकड़ना चाहता था। लेकिन उनका ध्यान हमारी ओर आकृष्ट हो गया। एक ने उछलकर हम पर हथगोला फेंक दिया... उसे मैंने गोली मार दी। दूसरे को हम ज़िन्दा पकड़ लाये हैं।"

वे क़ैदी को अन्दर ले आये। वह बड़ा हट्टा-कट्टा था। मोमबत्ती के क्षीण प्रकाश में भी उसके भूरे मैले बाल, गेहुआं पीले चेहरे और बड़ी-सी चौकोर ठुड्डी तथा हरी-हरी वहशियाना आंखों को साफ़-साफ़ देखा जा सकता था। वह नज़रें नहीं चुरा रहा था और जाल में फंसे किसी भेड़िये की तरह इधर-उधर देख रहा था।

अख़्मेदोव ने रेडियो की ओर इंगित किया: "इस सिलसिले में तो बात साफ़-साफ़ समझ में आती है। लेकिन यह उल्लू की तरह चीख़ता क्यों था?"

राजनीतिक अनुदेशक ने कमाण्डर के प्रश्न का अनुवाद कर दिया। अपनी नज़रें ऊपर उठाये बिना दुश्मन ख़ामोश रहा।

"इसी के कारण तो तुम्हें धोखा हुआ," अख़्मेदोव ने आगे कहा।

लेकिन जर्मन बस एक ही शब्द दुहराता रहा: "बुलबुल... बुलबुल..."

"यह बोलना नहीं चाहता, इसलिए मुझे सब कुछ बताने की आज्ञा दीजिए," अस्केर बीच में ही बोल उठा। "यह लोग बुलबुल को चिढ़ाने के लिए उल्लू की बोली में चीख़ रहे थे। वही जो दूसरा बन-मानुस मर गया, उल्लू की बोली बोलता था..."

क़ैदी को यूनिट के मुख्यालय ले जाया गया। अख़्मेदोव तोपख़ाने के बीच से गुज़रते हुए राजनीतिक अनुदेशक से बोला: "अब दिलचस्प लड़ाई होगी। दुश्मन अभी तक अपने "उल्लू" पर भरोसा कर रहे होंगे। उन्हें तो यह नहीं मालूम कि उनके उल्लू का क्या हो गया?"

सुबह होने को थी। ताज़ा हवा बह रही थी। किसी कोमल-ललित सुन्दरी की तरह दूज का चांद सुबह के झुटपुटे में अपना पीताभ प्रकाश घोल रहा था। हल्के-हल्के टिमटिमाते तारे छुप गये और शुभ्र होते नभ में घुल गये। विश्व में ऐसा आमोद-प्रमोद मचा था मानो रक्तपात व दुख-दर्द का अस्तित्व ही न हो। यह फूलों की सुगन्धि में सराबोर था। पक्षियों ने गाना शुरू कर दिया था लेकिन उनके समवेत् में बुलबुल की चहक न थी।

बुलबुल ख़ामोश थी।

"बैटरी!" चौकस करता तीव्र आदेश सुनाई दिया। जवान कांप उठे। "फ़ायर!" तोपचियों ने दुश्मन के सपने पूरे नहीं होने दिये। गोलों की बौछार दुश्मन पर होने लगी। छुपाव स्थल व कमाण्ड पोस्ट नष्ट कर दिये गये; मोर्चेबन्दियों और खाइयों को गोलों के विस्फोटों ने उड़ा दिया।

गोलाबारी बन्द होने के बाद अस्केर जंगल की ओर बढ़ा। सिर्फ़

वही नहीं, सारा का सारा तोपखाना बुलबुल का गीत सुनने को प्यासा था।

"गा, मेरी बुलबुल, गा!" हमेशा की तरह अस्केर ने ज़ोरों से आवाज़ दी।

बुलबुल मौन थी।

दूसरों ने भी आवाज़ दी लेकिन बेकार।

बुलबुल ग़ायब हो चुकी थी।

सैनिक ने प्रश्नात्मक दृष्टि से तोपखाने के कमाण्डर की ओर देखा। अख़्मेदोव कुछ क़दम आगे आकर बड़े ज़ोरों से बोल उठा: "गा, हमारी बुलबुल, गा!"

बुलबुल चुप रही।

नीचे गेहूं के खेत में वर्तिक उल्लसित स्वर में चहक उठी, झाड़ियों में भी दूसरे पक्षी गा उठे। लेकिन बुलबुल का गीत सुनाई नहीं दिया।

हर कोई इस प्रत्याशा में था कि बुलबुल अब या तब गाना शुरू कर देगी और वे आत्मा को हर्षित करनेवाली उसकी चहक सुन सकेंगे।

न जाने कब तक वे इसी तरह इन्तज़ार करते रहते कि तभी एक सैनिक हाथ में काग़ज़ का कोई टुकड़ा लिये अख़्मेदोव के पास आ पहुंचा।

"कॉमरेड कमाण्डर, यह काग़ज़ मुझे मृत जर्मन की जेब में मिला था। इसे पढ़िये। हो सकता है, यह काम का हो।"

अख़्मेदोव ने काग़ज़ राजनीतिक अनुदेशक की ओर बढ़ा दिया।" तुम्हें जर्मन भाषा आती है। पढ़ो इसे!"

राजनीतिक अनुदेशक पहले मन ही मन में ख़त पढ़ने लगा। अस्केर सहित वहां उपस्थित सब किसी ने देखा कि पंक्तियों को वह जैसे-जैसे पढ़ता जा रहा है, उसके चेहरे पर कालिमा छाती जा रही थी।

"उल्लू, वास्तविक उल्लू!" वह बोला। "सुनिये, उसने क्या लिखा है। 'मेरे दोस्त, तुम्हें मालूम है कि मुझे पक्षी, फूल और प्रकृति की हर चीज़ से कोई ख़ास दिलचस्पी नहीं है। उस बुलबुल के कारण मेरी रातों की नीन्द हराम हो गयी थी। हमें यहां एक मिशन पर भेजा गया था लेकिन वह हमारे सिरों पर चहकती रहती थी। इसे बमों और गोलियों का भी कोई डर नहीं, बस गाती ही गाती रहती है। लाल सेनावालों को उससे प्रेम है। उन्हें चिढ़ाने के लिए

मैंने उल्लू की बोली में चीखना शुरू कर दिया। तुम तो जानते ही हो पूर्व में उल्लू अशुभ माने जाते हैं; वहां लोग उनसे नफ़रत करते हैं। मेरा ख़्याल था कि बुलबुल उल्लू की बोली से डरकर भाग जायेगी। लेकिन ऐसा नहीं हुआ!.. आख़िर मैंने उस बुलबुल का काम तमाम करने की ठान ली। मैंने सोवियत पोशाक पहन ली। दूर में तोपों की गरज के कारण बुलबुल का निशाना लेना आसान था लेकिन वह फ़ौरन नहीं मरी। लेकिन इस देश में तो किसी पक्षी तक पर तरस नहीं खाया जा सकता। मैंने उसका गला अपने हाथों से घोंट डाला। कुछ ही घण्टों में हम अपने इलाक़े में चले जायेंगे; मैं इस मृत बुलबुल को साथ ले जाऊंगा जिससे कि इस ख़त के साथ तुम्हें वही एक मृत क्रीमियाई बुलबुल भी हासिल हो।"

कुछ देर तक राजनीतिक अनुदेशक ख़त को हाथ में ही पकड़े रहा; उस जल्लाद, उस परपीड़क को एक निरीह पक्षी पर भी दया नहीं आयी थी। क्या बोलें, किसी को कुछ नहीं सूझ रहा था।

अख़्मेदोव ने अस्केर के स्याह पड़े चेहरे पर नज़र डाली।

"शोक न करो, भाइयो। यहां बुलबुल की कोई कमी नहीं... सैकड़ों बुलबुल हैं...।"

मानो उसकी बात की पुष्टि करते हुए एक विलक्षण चहक सुनाई दी।

तोपखाने के जवानों ने एक-दूसरे की ओर देखा और ख़ुशी से चिल्ला उठे: "गा, मेरी बुलबुल, गा!"

बुलबुल गाने लगी।

जीवन के लिए, वसन्त के लिए अपने दुश्मनों से प्रतिशोध लेने के हेतु उनका आह्वान करते हुए अपने स्वर में चिन्ता व पीड़ा भरकर बुलबुल स्वाधीनता का गीत गा रही थी।

मेह्‌ती गुस्सेइन

(१६०६-१६६५)

गद्यकार, नाटककार तथा आलोचक। अज़रबैजान के जन लेखक व राजकीय पुरस्कार विजेता। मेह्‌ती गुस्सेइन साहित्य के क्षेत्र में एक पत्रकार के रूप में आये। अपनी पहली कहानी लिखने से पहले वह अनेक समाचार-पत्रों तथा पत्रिकाओं में सक्रिय रूप से काम कर चुके थे। संवाददाता के रूप में मेह्‌ती गुस्सेइन सदा घटनाओं से सम्बद्ध रहे और जीवन के हर क्षेत्र के लोगों से उनका निकट सम्पर्क रहा। उनकी पहली कहानी "ऊन-कटाई" 'झेनशिना वोस्तोका' (पूर्व की महिला) पत्रिका में १६२७ में छपी थी। इसके बाद, नये जीवन के निर्माण हेतु सरदारवादी, सामन्तवादी प्रवृत्तियों के विरुद्ध संघर्षरत लोगों के बारे में उनके अनेक उपन्यास प्रकाशित हुए। मेह्‌ती गुस्सेइन को शीघ्र ही अज़रबैजान के विशिष्ट उपन्यासकार के रूप में ख्याति प्राप्त हो गयी। अज़रबैजानी पुनर्जागरण के इतिहास में उनके उपन्यास 'बाढ़', 'मुठभेड़', 'अप्शेरोन', 'काली चट्टानें', 'सुबह' तथा 'जागरण' जीते-जागते पृष्ठ हैं। नये और पुराने बाकू के तेल कर्मियों के बारे में यह सशक्त, यथार्थवादी उपन्यास हैं। इस संकलन में शामिल उनकी कहानी "प्रतिद्वन्द्वी" का भी वर्ण्य-विषय यही है।

मेह्‌ती गुस्सेइन

प्रतिद्वन्द्वी

(१)

"क्या कहा?!" मुझे अपने कानों पर विश्वास नहीं हो रहा था। "और तुम्हारी पलकें भी नहीं झपकेंगी?"

"नहीं, बिलकुल नहीं। सच मानो तो अगर मेरे वश में होता तो मैं इन्हीं हाथों से एइबात का सीना फाड़ डालता।"

मुझे उन शब्दों की इमानदारी पर कोई सन्देह नहीं हो सकता था। लेकिन यह बात बड़ी अजीब थी कि फ़ोरमैन पिरवेली रंचमात्र भी उत्तेजित न था; वह किसी भी प्रकार के क्षणिक क्रोधावेश के वशीभूत न था। मेरी मेज़ के सामने वह हमेशा की तरह निरुद्विग्न तथा गम्भीर खड़ा था। मैंने इसके बारे में सिर्फ़ सुना या किताबों में ही पढ़ा था लेकिन अब विश्वास भी हो गया था: किसी व्यक्ति का नियन्त्रित, आन्तरिक क्रोध भयावह होता है। मुझे यक़ीन था कि अगर हमारे तेल उद्योग के सुप्रसिद्ध कर्मी, फ़ोरमैन पिरवेली से अपरिचित कोई आदमी मेरे कार्यालय में होता तो पिरवेली की तीव्र, पूर्ण शान्त होने के बावजूद कुछ हद तक भय पैदा करनेवाली दृष्टि को देखकर ज़रूर ही सोचता: हां, यह सफ़ेद बालोंवाला

भीमकाय अपने प्रतिद्वन्द्वी (कल के मित्र!) ड्रिल फ़ोरमैन एइबात का सीना ज़रूर ही बिना किसी मीन-मेख के फाड़ डालेगा।

मेरे चकित होने का कारण था। मैं वृद्ध पिरवेली को कई वर्षों से जानता था। इस हरक्यूलीज़ जैसे विशालकाय आदमी की अनुपम मौलिकता, बुद्धिमत्ता, चरित्र की शालीनता तथा जीविष्णुता मेरा मन मोह लेती थी।

मेरे दिमाग़ में एक विचार कौंधा: कहीं मैंने इसे आदर्श तो नहीं मान लिया था?

मैं इस पर विश्वास नहीं करना चाहता था। लेकिन अचानक ही किस चीज़ ने उसे एइबात के बारे में रुख़ बदलने को प्रेरित किया था? एइबात उसका दोस्त था और पिरवेली जितना ही मशहूर ड्रिल फ़ोरमैन था।

फ़ोरमैन पिरवेली मुड़ा और धीमे-धीमे, स्तम्भवत् पैरों से डग भरता दरवाज़े की ओर चल पड़ा।

"समझाओ? जैसे ख़ुद कुछ नहीं जानते?!" उसकी प्रदाहित, बाहर को उभर आयी पलकें सिकुड़ गयीं और होंठों पर व्यंग्य भरी मुस्कान छा गयी। मुझे उसके गुदाज़ गाल सुर्ख़ होते दिखाई दिये और झुर्रीदार ललाट टुकड़ों में बट गया। "सच्चे आदमी के लिए अपने काम में गर्व की भावना पेट भरने से कहीं ज़्यादा प्रिय होती है। अब तक मैं एइबात को ऐसा ही आदमी समझता था। अगर उसकी प्रशंसा होती थी तो मुझे भी उसके गौरव में अपना हिस्सा महसूस होता था। अब मुझे लगता है, मैं ग़लत सोचता था। अब मुझे लगता है कि यहां मेरा कोई आदर-सम्मान नहीं। एइबात को इस अन्याय के प्रति रोष प्रकट करना चाहिए। उसकी चुप्पी का मतलब है कि उसकी अन्तश्चेतना शुद्ध नहीं।"

"मैं तुम्हारी बात का मक़सद समझ रहा हूं। एइबात को श्रमवीर उपाधि से विभूषित किया गया है..."

मुझे अपना मुंह बंद ही रखना चाहिए था। अपनी बात कहकर मैंने आग में घी डालने का ही काम किया था।

"और तुम?!" उसकी आवाज़ ऊंची हो गयी। "क्या तुम प्रबन्धक नहीं हो? तुम क्यों चुप रहे?"

"लेकिन तुम तो जानते हो, सम्मानित उपाधियां और पदक मैं नहीं देता हूं..."

वही ही अनिष्टकारी शिथिल गति से फ़ोरमैन पिरवेली मेरी मेज़ के पास आ पहुंचा और गद्देदार जैकेट की जेब से दाहिना हाथ निकालते हुए वह मेरी ओर झुक गया।

मुझे मानना होगा कि मेरे दिल की धड़कन ज़रूर रुक गयी थी। मैंने सोचा: अब वह अपना हाथ हथौड़े की तरह मेरे सिर पर दे मारेगा और अगर मैं मरा नहीं तो ज़रूर ही प्रहार से एक ओर गिर पड़ूंगा।

पिरवेली ने मेरा सहमना भांप लिया था। वह खिन्नता से हंस पड़ा और मुझे लगा, दुख से। फिर पतलून की जेब से तम्बाकू का भूरे रंग का लकड़ी का डिब्बा निकालकर वह एक मोटी-सी सिगरेट तैयार करने लगा। मुश्किल से थूक लगाकर उसने अख़बारी काग़ज़ को चिपकाया और मामूली-सी लाइटर से सिगरेट जला ली। दूसरे विश्वयुद्ध के दौरान ऐसी लाइटरें बन्दूक की कारतूसों के केस से तैयार होती थीं। मुझे भली-भांति मालूम था कि यह लाइटर हमेशा उसके पास रहती थी।

मंडराता, रंग बदलता धुएं का बादल मेरी मेज़ के ऊपर तैरने लगा।

"मैं जानता हूं, तुम में से कई लोग सचाई व न्याय के बारे में बोलना पसन्द करते हैं," पहले की तरह ही गरमाये स्वर में वह आगे बोला। "तो फिर पात्रता के अनुरूप कुछ को पुरस्कृत करते समय तुम दूसरों के बारे में क्यों भूल जाते हो? मैं नाम कमाने या अलंकृत होने के लिए काम नहीं करता। लेकिन मैंने सौ से ज़्यादा छात्रों को प्रशिक्षित किया है और अब उनमें से हरेक को व्यावसायिक निपुणता हासिल है। वे यही तो कहेंगे: 'पिरवेली की तरह तत्परता से काम करने की क्या ज़रूरत है? उन्हें कहीं कोई प्रशंसा मिली है?' यह एइबात मुझसे आगे कैसे निकल गया? जैसे, उदाहरण के लिए, उसने पचास कुंओं की खुदाई की है, मैंने साठ की। वह चालीस साल से काम कर रहा है तो मैं बयालीस साल से। सागर में उसके पांच कुंए हैं तो मेरे आठ। क्या एइबात के बच्चे ज़्यादा हैं? नहीं, इसमें भी मैं उससे पीछे नहीं। मेरे तीन बेटियां एक बेटा है तो एइबात के एक बेटी, तीन बेटे। तो इससे क्या! आज लड़कियां लड़कों से किसी भी तरह कम नहीं।"

"बेशक, उस्ता*, बेशक!" उसे पुराने मिजाज़ में लाने की उम्मीद से मैंने हामी भरी। "जनता की सेवा करते ही तुमने बाल सफ़ेद किये हैं। तुम्हें कुछ भी बताने की कोई ज़रूरत नहीं। मैं खुद जानता हूं।"

"तुम जानते हो लेकिन लगता है, नहीं जाननेवाले लोग भी हैं।"

"आप ठीक नहीं कह रहे, उस्ता।"

मुझे आपत्ति नहीं करनी चाहिए थी। कई बार ज़ोरों से सिगरेट के कश लगाकर उसने जलती ही सिगरेट मेज़ पर रखे एशट्रे में फेंक दी।

"ठीक नहीं कह रहा?! यानी झूठ बोल रहा हूं? अख़बारों में एइबात; पत्र-पत्रिकाओं में एइबात; रेडियो पर एइबात; वृत्तचित्रों में एइबात। जल्दी ही टेलीविज़न स्टूडियो उठाकर शायद इसके घर में ही ले जायेंगे। कुछ दिनों पहले मेरी बीवी ने मुझसे पूछा: 'आह, पिरवेली, तुम इतने बदक़िस्मत क्यों हो? यह कैसे हो गया कि जो पुरस्कार तुम्हें मिलना चाहिए था, वह एइबात को दे दिया गया और तुम्हें नहीं, उसे श्रमवीर बना दिया?' मैं उस पर बरस पड़ा और अंटसंट बक गया... बाद में मुझे बड़ा अफ़सोस हुआ। बेचारी को अकारण ही चोट पहुंचा दी। उस वृद्धा ने क्या किया था?"

"आह, उस्ता..."

"रोको मत!" वह लगभग चीख पड़ा।

"फ़ोरमैन पिरवेली!.."

"हां, मैं फ़ोरमैन हूं! लेकिन मैं देखता हूं कि सिर्फ़ फ़ोरमैन होना ही काफ़ी नहीं!.."

फिर वह मुड़ा और अपनी अवस्था की अपेक्षा कहीं अधिक फुर्ती दिखाते हुए कार्यालय से बाहर चला गया। उसने जाते समय नमस्ते कहने की भी ज़रूरत नहीं समझी।

---

* उस्ता – किसी व्यावसायिक कर्मी के लिए विनम्र सम्बोधन। सं०

(२)

मैंने दूसरे दिन सागर में जाकर फ़ोरमैन पिरवेली के ड्रिलिंग प्लेटफ़ॉर्म को देखने की योजना बनायी थी।

सुबह में प्रबन्ध कार्यालय में उससे हुई पिछले दिन की बातचीत याद करके मैं सकुचाया और सोचने लगा: पिरवेली नाराज़ व क्रुद्ध है। कुछ दिनों बाद जब उसका गुस्सा शान्त पड़ जायेगा, तभी उससे मिलना बेहतर होगा। मेरे ख़्याल से पिरवेली नेकदिल आदमी है और मिथ्या अभिमान उसमें रंचमात्र भी घर नहीं कर पाया। गुस्से में कुछ कर गुज़रने के बाद वह दूसरे दिन सचमुच दुखी हो उठता था।

बहरहाल, लगभग दस बजे मुझे उसके ड्रिलिंग प्लेटफ़ॉर्म से टेलीफ़ोन मिला। रेडियो सेट पर सन्देश देनेवाला ड्रिलर गुरबत था। उसने बताया कि हेमाटाइट अभी तक नहीं आने के कारण पूरा ब्रिगेड परेशान था। कल सुबह तक हेमाटाइट भेजने का वायदा किया गया था लेकिन अब तक नहीं पहुंचा था। इसी कारण वहां काम बन्द कर दिया गया था।

बात करते समय मुझे रिसीवर पर एक दूसरी आवाज़ सुनाई दी और मैं समझ गया: फ़ोरमैन पिरवेली ड्रिलर के पास खड़ा होकर निर्देश दे रहा था। वह लाल फीताशाही से कुपित था... क्या कह रहे हैं फ़ोरमैन?.. अच्छा, तो धमका रहे हैं: अच्छा है, गुस्सा न दिलाये, नहीं तो खुद रिसीवर सम्भाल लेगा।

मैंने गुरबत को आश्वासन दिया कि अभी जांच पड़ताल करके देखूंगा कि हेमाटाइट भेजने में देर किसके कारण हुई थी। भीतरी टेलीफ़ोन पर मैंने जब ड्रिलिंग ब्यूरो से सम्पर्क किया तो मालूम हुआ कि हेमाटाइट ठीक समय पर फ़ोरमैन पिरवेली के कुएं के लिए गोदाम से भेजा जा चुका था।

तब मैं खुद घाट पर जा पहुंचा। वहां कई मोटरबोट, भारवाही बजरे व लांच खड़े थे।

सागर शान्त व तेल की गन्ध से भरा था। यही खास गन्ध थी जिसका अभ्यस्त होना असम्भव था लेकिन यह कभी परेशान भी नहीं करती थी। मुझे तो यह गन्ध आनन्ददायी लगती है। धूसर आकाश मानो पानी में ही झुक आया था। सागर काक शोर से कान फाड़े डाल रहे थे। "मौसम बिगड़नेवाला है!" मैंने सोचा।

मजदूर ड्रिलिंग प्लेटफ़ॉर्म के लिए हेमाटाइट सहित कई तरह के साज-सामान पुराने बजरे में रख रहे थे।

"हलो, छोरो, मैं हाथ बंटाने आ गया हूं!" मैंने मज़ाकिया लहजे में कहा। "क्या खुद नहीं कर सकते? तुमने हमारे दिग्गज पिरवेली को हेमाटाइट भेजने का वायदा किया था। उसे काम रोकने पर मजबूर क्यों किया? क्या तुम्हें डर नहीं कि बूढ़ा उठाकर फेंक देगा और हमें तुम्हें सागर के गर्भ से निकालना पड़ेगा?"

कुछ तो मेरी बात सुनकर हंस पड़े लेकिन अधिकतर ऐसे चलते बने जैसे कुछ सुना ही न हो। ज़ोर-शोर से होती लदाई देखकर मैं प्रसन्नता से विह्वल हो उठा। सबसे ज़्यादा उत्साह से काम कर रहा था बाजरे का कप्तान वोलोद्या तिमोशचुक। ड्रिल माउण्ट के कल-पुर्जों को एक रस्से से बांधने के बाद वह मेरे पास चला आया।

"हमारे ख़्याल से उत्तरी आंधियां आयेंगी, कॉमरेड प्रबन्धक। हमें जल्दी है। फ़ोरमैन पिरवेली का हेमाटाइट तीन दिनों से बाजरे में ही पड़ा है। परसों हम रवाना ही नहीं हो सके क्योंकि मोटर बिगड़ गयी थी, गास्केट टूट गये थे। हमने ठीक किया। कल मुझे वृद्ध पिरवेली दिखाई दिये थे। कल उनकी दृष्टि से मैं इतना दग्ध हुआ कि आज भी सिहरन हो रही है।"

"मैं तुम्हारे साथ ही चलूंगा।"

मुझे अपने अचानक के निर्णय पर खुद ही हैरानी थी।

(३)

बजरे से पिरवेली के ब्रिगेड के डेरिक की नींव पर चढ़ते हुए मैंने देखा कि यहां स्थिति बिलकुल वैसी न थी जैसी कि गुरबत ने रेडियो पर बतायी थी। ड्रिलिंग का काम पूरे जोशो-ख़रोश से चल रहा था।

बात मेरी समझ में आ गयी। समय से पहले हेमाटाइट मांगकर चतुर पिरवेली ने मौलिक सूझ-बूझ दिखाई थी जिससे काम में किसी तरह की रुकावट न आये।

बजरे को लंगर डालते और मुझे देखते ही गुरबत ने सकुचाकर

आंखें झुका लीं। वह इन्तज़ार कर रहा था कि मैं झूठ बोलने के कारण अब या तब उसे कच्चा चबा डालूंगा। लेकिन मैं खुद भी काफ़ी लम्बे समय तक ड्रिल फ़ोरमैन का काम कर चुका था और चुपके-चुपके ऐसे तरीक़ों को पसन्द भी करता था। मैं खुद भी ऐसे तरीक़े कई बार आज़मा चुका था क्योंकि साज़-सामान और हेमाटाइट के पहुंचने में देरी के कारण ड्रिलिंग का उत्साह अधिकतर ठण्डा पड़ जाता है।

"पिरवेली कहां है?" मैं सोच रहा था। "वह खुद क्यों नहीं दिखाई दिया?"

मन में झिझक होने के बावजूद मेरी यह देखने की तीव्र इच्छा थी कि कल की बातचीत के बाद वह अपने आप पर क़ाबू पा सका है या नहीं।

"तुम्हारा फ़ोरमैन कहां है?" मैंने गुरबत से पूछा।

"धूम्रपान करने गये हैं..."

"बजरे के डेक पर मुझे देखकर शायद छुप जाने का फ़ैसला किया है," मैंने सोचा। "लगता है, वृद्ध का गुस्सा अभी ठण्डा नहीं पड़ा है।"

मज़दूरों का अभिवादन करता मैं, मुख्य डेरिक की नींव पर आगे बढ़ चला।

वे सब मेरे साथ बड़े दोस्ताना थे। तेल उद्योग में अपने बारह साल के अनुभव से मैं जानता हूं कि तेलकर्मियों के बीच पाखण्डी तथा बड़बोले लोग कम होते हैं। उनमें से कुछ लोग मुझे लम्बे समय से जानते हैं। हमने ड्रिलों पर इकट्ठे काम किया था। संस्थान के बाद मैं दो साल तक ड्रिल फ़ोरमैन रहा था। काम लोगों को एक-दूसरे के निकट लाता है। मेरा उनसे और उनका मुझसे लगाव हो गया; हां, मैं यह ज़रूर कहूंगा कि इन सामान्य मज़दूरों का सम्मान व साख्य प्राप्त हो जाये तो यह आनन्ददायी है और हां, लाभदायक भी।

मैंने गुरबत से पूछा कि कितनी गहराई तक बरमा किया जा चुका है।

हां, लोग ठीक ही कहते थे कि पिरवेली सिर्फ़ ज़बान का नहीं, काम का भी धनी था। उस दिन उन लोगों ने सामान्य कार्यक्रम से दो सौ मीटर अधिक ड्रिलिंग की थी। सारे उपकरण बड़ी चुस्ती से काम कर रहे थे। ब्रिगेड का एक-एक सदस्य अपने-अपने काम में जुटा था।

किसी ऐसे सामूहिक को देखना बड़ा ही हर्षदायक होता है। आप सोचे बिना नहीं रहेंगे : वाह, किस ढंग से काम कर रहे हैं! हमारा मज़दूर वर्ग ही ऐसा है! और इन लोगों के प्रति वर्णनातीत गौरवानुभूति से हृदय भर उठता है। और शाम को जब आप घर पहुंचते हैं, बीवी व बच्चों को महसूस होता है कि "पापा अच्छे मूड में हैं!" वे भी खुश हो जाते हैं।

मुझे पूरी तरह थका-हारा, परेशानहाल कल का पिरवेली याद हो आया : अच्छी बात न थी!..

"क्या तुम्हारे फ़ोरमैन रात बिताने घर गये थे?"

मैंने यह सवाल गुरबत से पूछा था लेकिन जवाब दिया याख्या ने : "नहीं।"

"क्यों?"

"हमें नहीं मालूम। कल पूरी शाम वह उदास-से रहे। प्रबंध कार्यालय से वापस लौटने के बाद उन्होंने हमें बुलाया और जेब से कागज़ निकालकर आगामी छुट्टी के बारे में एक रिपोर्ट पढ़कर सुनायी फिर पूछा : 'छुट्टी से पहले हम अपना कोटा दूना करने का इरादा रखते हैं। समझे? किसी को कुछ कहना है?' कोई कुछ भी नहीं बोला। आंकड़े सामने हैं..."

याख्या ने दृष्टि फेरकर गहरी सांस छोड़ी मानो उसे किसी बात से अफ़सोस हो। "मेरी समझ में नहीं आता कि हमारे फ़ोरमैन को हो क्या रहा है। कल पूरी शाम वह आंधी के बादल की तरह इधर-उधर चकराते रहे और दबी-दबी आवाज़ में बड़बड़ाते रहे : 'किस लिए, किस लिए, मुझे ऐसा नहीं कहना चाहिए था...' क्या कहा? किससे कहा? अपने को रोकने में असमर्थ पाकर मैं पूछ बैठा। उन्होंने मुझ पर बड़ी अजीब-सी नज़र डाली, सिर हिला दिया और गुर्राकर कहा : 'ओह, कुछ भी नहीं, मुझ से बड़ी भूल हुई!'.."

एक मोटरबोट की गरज से हमारी बातचीत बीच में ही रुक गयी। आवाज़ की ओर हमने नज़र डाली तो देखा कि फ़ोरमैन एइबात फ़ौलादी सीढ़ी पर चले आ रहे थे।

मेरा दिल धक से रह गया। "दुर्भाग्य ही इसे यहां ले आया है! प्रतिद्वन्द्वी आ पहुंचा!.."

मज़दूरों को वहीं छोड़ मैं तेज़ी से एइबात से मिलने के लिए आगे बढ़ आया।

"किधर जा रहे हो, उस्ता?"

"अपने कूप नम्बर १०६ की ओर। रास्ते में सोचा कि पिरवेली से मिलता चलूं और दिल का बोझ भी हल्का कर लूं।"

"क्या, कोई बात हो गयी है क्या?"

मेरे साथ-साथ चलते हुए एइबात ने मज़दूरों का अभिवादन किया।

"तुम्हारा बुद्धिमान फ़ोरमैन कहां है?" यह पूछने के बाद वह मेरी ओर मुड़ गया। "कॉमरेड प्रबन्धक, आइये, हमारी बातचीत में बतौर गवाह हिस्सा लीजिए। मुझे पिरवेली से कुछ प्रेमपूर्ण बातें करनी हैं। लेकिन वह है कहां, वह शिक्षक?"

तभी किसी जादूगर की तरह पिरवेली अचानक ही वहां जैसे हवा से निकलकर आ पहुंचा।

"नमस्कार, यह हाज़िर हूं मैं। बुद्धिमान या मूर्ख, जो भी हूं।"

मज़दूर ज़ोरों से हंस पड़े। ज़ाहिर था कि इन मशहूर कर्मियों की व्यंग्यात्मक सूक्तियां उन्हें बड़ी रास आयी थीं, मुझे लगा कि उनकी हंसी का मतलब था कि उनका फ़ोरमैन विजयी हुआ।

पिरवेली की कोहनी को मज़बूती से थामकर एइबात केबिन की ओर ले चला। कुछ क़दम आगे जाने के बाद वह पलट पड़ा :

"आइये, कॉमरेड गवाह।"

उनकी बातचीत से किसी अच्छे नतीजे की उम्मीद नहीं की जा सकती थी। "मुझे साथ जाना ही चाहिए;" मैंने फ़ैसला किया। "कहीं वे लड़ पड़े तो उन्हें अलग करूंगा।"

दो आदमियों की बातचीत में किसी भी तरह की जिज्ञासा दिखाये बिना मज़दूर अपने-अपने काम पर चले गये।

हवा के एक तेज़ झोंके से मेरा टोप समुद्र को भेंट होने से बाल-बाल बचा। समुद्र में सफ़ेद उर्मियां नृत्य करने लगी थीं।

(४)

केबिन की लकड़ी की दीवारें लगभग पूरी तरह पत्रिकाओं, पोस्टकार्डों की रंगीन तसवीरों तथा अख़बारों की कतरनों से भरी थीं। इनकी मदद से पिरवेली के मशहूर ब्रिगेड का विस्तृत इतिहास तैयार किया जा सकता था। दाहिने ओर के कोने में रखे बिजली के हीटर के कारण यहां गर्मी थी।

गत्ते से ढकी एक कम ऊंची मेज़ पर बिजली की केतली से पानी खौलने के कारण बड़ी तेज़ी से भाप निकल रही थी। उसकी टोंटी से निकलती भाप की फुहार से दीवार पर जम-सा दाग़ पड़ गया था।

फ़ोरमैन पिरवेली ने प्लग निकालकर बिजली बन्द कर दी। फिर मुंह पर भाप न पड़े, इसलिए एक ओर मुंह घुमाये केतली का ढक्कन हटाकर उसने चाय की पत्ती डालकर बन्द कर दिया।

"जहां जी चाहे बैठ जाइये," बैठने का अनुरोध करने के बाद वह एक लकड़ी की बेंच पर बैठ गया।

फ़ोरमैन एइबात के साथ मैं उसके सामने बैठ गया।

"प्रिय मित्र, कृपया, मेरे सवाल का जवाब दो," सबसे पहले एइबात ही बोला। "तुम मेरी परछाईं से क्यों खार खाने लगे हो?"

जैसे कोई बात उससे न कही गयी हो, चेहरे पर ऐसी बेपरवाही दिखाते हुए फ़ोरमैन पिरवेली ने झुककर बैग से एक साफ़-सुथरा इस्त्री किया गया तौलिया निकालकर उसे तह करके केतली के ऊपर ढक दिया।

"मेहमानों की आवभगत चाय से करने के बाद ही बातचीत शुरू करना चाहता है," मैंने सोचा। "कूटनीतिज्ञ है!"

लेकिन एइबात को जल्दी मची थी।

"मेहरबानी करके बताओ कि मैंने क्या ग़लती की है?" उसने बुरा मानते हुए पूछा। "भगवान के लिए केतली को अपने हाल पर छोड़ो!"

"मैं तुम्हें पीने के लिए मजबूर नहीं करूंगा।" पिरवेली ने प्रश्नकर्ता की ओर आंख उठाकर देखे बिना कहा और जेब से जानी-पहचानी तम्बाकू की डिबिया निकालकर सिगरेट बनाने लगा। "और तुम्हारी यह मलामत ग़लत है कि मैं तुम्हारी परछाईं से खार खाने लगा हूं। जब तुम खुद यहां सामने हो तो तुम्हारी परछाईं की मुझे क्या ज़रूरत?"

"तो फिर बताओ क्या बात है।"

"जल्दी न मचाओ, मैं अभी सब कुछ बता दूंगा।" पिरवेली रुक-रुककर साभिप्राय बोला। ऐसा लगा जैसे वह अपने मेहमानों को उलझन में डालना चाहता था।

सिगरेट जलाकर कुछेक कश लेने के बाद वह पहले जैसी ही गम्भीरता से आगे बोला: "मुझे नहीं मालूम, तुमसे किसने क्या कहा है लेकिन मेरे मुंह से सुन लो, यही अच्छा होगा।"

क्या उसने मुझ पर आक्षेप किया था? लेकिन मेरे मन में तो कोई खोट न था। कल की बातचीत के बारे में एइबात को कुछ बताने का मुझे मौक़ा ही नहीं मिला था।

"तुम्हारी बीवी से मेरी बातचीत हुई थी," एइबात ने जवाब दिया। "कल उसने फोन करके मुझसे कहा था: 'एइबात, इंसाफ़ है कहां? रेडियो पर हमेशा तुम्हारी बड़ाई की जाती है। वे लोग मेरे पिरवेली की वैसी बड़ाई क्यों नहीं करते हैं? तुम दोनों आख़िर में एक-दूसरे के दुश्मन हो जाओगे।' अगर तुम्हारे घर ऐसी कोई बहस नहीं छिड़ी होती तो तुम्हारी बीवी मुझसे कभी इस तरह न बोलती। मुझे एक भी ऐसा मौक़ा याद नहीं जब मुझे अलंकृत अथवा पुरस्कृत किया गया हो तो तुमने सबसे पहले मुझे बधाई न दी हो। लेकिन क्या बदल गया है? हफ़्ते भर से डाकिया मेरे घर पर ख़तों का तांता लगाये हैं। सिर्फ़ तुमने चुप्पी साध रखी है। क्यों?"

"तुम जानना चाहते हो कि मैंने क्यों चुप्पी साध रखी है?" ज़ोरों से कश लेते हुए पिरवेली ने पूछा। प्रतिद्वन्द्वी का धमकी भरा अन्दाज़ उसे डरा नहीं पाया था। "चूंकि कुछ चीज़ें ऐसी हैं जो मुझे पसन्द नहीं।"

"अच्छा, तो तुम्हें ईर्ष्या होती है? यह बात है। दुश्मनी पैदा हो गयी है।"

"इसका दुश्मनी से कुछ लेना-देना नहीं। मैं अभी सब साफ़ कर दूंगा और बात तुम्हारी समझ में आ जायेगी। तुम्हें याद है, जब लड़ाई पूरे ज़ोरों पर थी, सागर में तुम्हारे कूप से तेल का शक्तिशाली सोता फूट निकला था? एक हफ़्ते बाद ही तुम्हें लाल पताका की उपाधि से विभूषित किया गया था। ठीक है या नहीं?"

"हां, ठीक है।"

"और तभी हमारे कूप का शोर सारे अज़रबैजान में नहीं मचा था? मुझे क्या मिला? कुछ भी नहीं। ठीक है या नहीं?"

एइबात ने आंखें नीची कर लीं, जवाब के लिए उसे शब्द नहीं मिले, मेज़ पर से हाथ हटाकर उसने घुटने पर रख लिया।

"तुम चुप क्यों हो?"

"लेकिन तुम्हें काफ़ी बोनस मिला था, ढेर-सा।"

"मुझे पैसों की ज़रूरत न थी। मैं उन चुड़ैल की औलादों को फूटी आंखों से भी नहीं देखना चाहता जो बरसाती दिन के अलावा हमेशा सिर्फ़ पैसों के लिए काम करते रहते हैं।" कोहनियों को मेज़ पर टिकाकर पिरवेली ने एक अंगुली अपने बायें हाथ पर झुका ली। "यह हुई पहली बात। आगे सुनो। पिछले कुछ महीनों में तुमने कुल मिलाकर नौ हज़ार मीटर की गहराई के चार कूपों को ड्रिल किया। और मैंने भी चार कूप ड्रिल किये जिनकी कुल गहराई बारह हज़ार मीटर थी। उनमें से एक में तो हमने हेमाटाइट के बिना ही काम चलाया। ठीक है या नहीं?"

"ठीक है," एइबात गुर्राया।

"मुझे सुनाई नहीं दिया। ज़रा ज़ोर से बोलो!"

"ठीक है, प्यारे मित्र, एकदम ठीक। मैं इससे इनकार कहां कर रहा हूं?"

"लेकिन तुम्हें तुम्हारे काम के लिए श्रमवीर की उपाधि दी गयी और मुझे भुला दिया गया। ठीक है या नहीं?" वृद्ध ने दूसरी अंगुली झुकायी। "यह हुई दूसरी बात। या मैं ग़लत कह रहा हूं?"

एइबात एतराज़ न कर सका। मुझे महसूस हुआ कि वह दिल ही दिल में पिरवेली की बातों की सच्चाई को स्वीकार कर चुका था।

"लेकिन तुम तो जानते हो कि उपाधियां मैं नहीं देता।"

"बेशक, तुम नहीं देते। लेकिन ज़रा बताओ तो मुझे कि तुमने कहां, कब और किससे विरोध प्रकट किया: 'आप इंसाफ़ नहीं कर रहे हैं!' शायद ऐसा मौक़ा मिला हो?.. क्या तुमने विरोध किया? नहीं! तब तुम्हीं जवाब दो, क्या तुम सच्चे आदमी हो?"

"आ-हा, पिरवेली। लगता है, तुम्हारी आत्मा कलुषित है!" एइबात ने तिरस्कारपूर्वक होंठ सिकोड़ कर सिर हिलाया।

मैंने पिरवेली के हाथों को कांपते देख लिया और समझ गया कि एइबात के शब्दों से उसे गहरी चोट पहुंची थी।

नहीं। फ़ोरमैन एइबात को कोई हक़ नहीं था कि पिरवेली को कलुषित कहता। यह तो अपमान था।

"आप ग़लत कह रहे हैं, उस्ता," एइबात के कन्धे पर एक हाथ रखते हुए मैंने टोका। "ज़्यादती कर रहे हैं। कल पिरवेली ने बड़ा सही कहा था: 'सच्चे आदमी के लिए अपने काम में गर्व की भावना पेट भरने से कहीं ज़्यादा प्रिय होती है'।"

सिगरेट का बुझा टुकड़ा एशट्रे में रखकर पिरवेली ने मेरी ओर आंखें उठाकर देखा। उसकी आंखों में दुख भरा था।

"इसका ताल्लुक़ व्यावसायिक सम्मान से ही नहीं है, बेटे। मैंने तुम्हें बताया था कि मेरे कई तेल कर्मी कॉमरेड मुझसे उम्र में कम हैं। वे मेरे छात्र हैं! यह सब देखकर उनमें काम के प्रति लापरवाही पैदा होगी। इसी कारण मैं बुढ़ापे में कलुषित बन गया हूं! मेरे ख़्याल से मैं मूर्ख हो गया हूं!" उसने नाशपाती जैसे आकारवाले एक गिलास में चाय डाल दी। "ठीक है। बात ख़त्म हुई। उसे जाने दो..."

उकताहट भरी ख़ामोशी के बीच मैंने देखा कि कूप की नींव से प्रचण्ड लहरें टकराने लगी थीं। तेज़ हवा के कारण केबिन का दरवाज़ा खड़खड़ा रहा था।

"सचमुच मूर्ख हो गया हूं," पिरवेली ने दीर्घ श्वास छोड़ी और दुबारा झुकते हुए बैग से चीनी का डिब्बा निकालकर मेज़ पर रख दिया। "चाय पीयो। गरमाहट आयेगी। बड़ी ठण्ड है। दुबारा आंधी चलने लगी है।"

"बात हो ही रही है तो बता दूं कि मैं तुमसे बहस करने नहीं आया था," एइबात मायूसी से बोला। "मैं तुम्हें प्रतियोगिता की चुनौती देने आया था। समझौता बना लो।"

गिलास को होंठों से लगाकर पिरवेली ने धीमे से चाय का घूंट लिया।

"हमें कोई समझौता नहीं बनाना है।"

"ऐसा क्यों, उस्ता?" मैं बोल उठा।

"क्योंकि मैं बहुत आगे हूं। मैं से मतलब है मेरा ब्रिगेड। तेल

उद्योग में अभी तक हमारी कोई सानी नहीं। हालांकि..." पिरवेली कुटिलता से मुस्कराया, "हमें भी प्रतियोगिता करनी पड़ रही है।"

"यह एक और पहेली है, इसे कौन हल कर सकता है?" एइबात बड़बड़ाया।

"कुछ के लिए पहेली है, कुछ के लिए नहीं।"

साफ़-साफ़ कहूं मुझे पिरवेली की बात उलझानेवाली प्रतीत हुई।

मेरी हैरत भरी दृष्टि भांपकर वह अचानक ही कोमल स्वर में एइबात से बोल उठा:

"जाओ, अपने ब्रिगेड के सब लोगों को बुलाओ और कह दो कि पिरवेली किसी से प्रतियोगिता नहीं करना चाहता।" एक बार फिर गिलास होंठों के पास ले जाकर उसने मेरी ओर देखा। "क्या आप कारण जानना चाहते हैं, कॉमरेड प्रबन्धक? क्योंकि हम आनेवाले कल के खिलाफ़ प्रतियोगिता कर रहे हैं!" ऐसा प्रतीत हुआ जैसे पिरवेली नाखुशगवार बहस भूल चुका था। सरल, शालीन मुस्कान बिखेरते हुए उसने मज़ाकिया ढंग से एइबात की पीठ ठोकी। क्यों, प्रसिद्ध वीर, पहेली हल कर ली?"

फ़ोरमैन एइबात बेंच पर से उठ खड़ा हुआ।

"तुम बड़े कठोर हो, पिरवेली। तुम्हारे दिल की बात मैं समझ गया हूं।" वह दरवाज़े के क़रीब जा पहुंचा।

"आह, एइबात। किसी दूसरे के प्रति मैं इतनी इमानदारी कभी न दिखाता।" उसकी आवाज़ खोखली व पस्त थी। "मेरे दिमाग़ में जो भी बातें थीं, मैंने तुम्हें व प्रबन्धक को बता दीं। इन्हें यहीं ख़त्म होने दो। बैठकर थोड़ी चाय पीयो। आंधी आने ही वाली है। अपनी छोटी-सी नौक़ा में तुम कहां जा सकते हो? आसानी से दुर्घटनाएं हो सकती हैं।"

"कोई पहली दफ़ा आंधी आयी है क्या?.. अच्छा, मैं चला, अलविदा!" और वह चला गया।

ज़बर्दस्ती चाय के घूंट भरता, आंखें नीची किये पिरवेली बैठा रहा।

उत्तरी हवाओं के तेज़ झोंकों से केबिन कांप उठा।

"हमें एइबात को नहीं जाने देना चाहिए था," पिरवेली बड़बड़ाया। "उसे समझा-बुझाकर रोक लेना चाहिए था। सागर हिंस्र पशु है।"

केबिन से बाहर निकलते ही वेधती हवाओं ने हमें घेर लिया जो अपने साथ समुद्र से झागदार लहरों के पहाड़ उठाये जा रही थीं।

एइबात की मोटरबोट अभी भी बहुत दूर नहीं गयी थी। मोटरबोट की ओर नज़रें दौड़ाते हुए पिरवेली ने टोपी के कनझप्पे खोल अपने गद्देदार जैकेट के सारे बटन बन्द कर लिये।

"उसे नहीं जाना चाहिए था, क़तई नहीं... हम तट से अधिक निकट हैं, एक किलोमीटर से भी कम लेकिन इसके बावजूद आंधी आने पर हम यहां से चले जाने की कोशिश करते हैं। और जहां वे लोग हैं, वह तो एकदम जहन्नुम ही है! अगर एइबात चतुर होगा तो अपने कर्मियों को लेकर तट पर लौट आयेगा।"

"कौन जाने, आधा घण्टे बाद मौसम कैसा रहेगा," मैंने बीच में ही कहा। "यह कैस्पियन है। हवा अचानक ही थम जा सकती है और तब डरकर किनारे भाग खड़े होने का अफ़सोस सब से पहले तुम्हीं को होगा।"

पिरवेली ने मायूसी से सिर हिला दिया मानो उसे किसी बात का पूर्वाभास हो रहा हो। फिर वह डेरिक पर जाकर लहरों में नाचते काले धब्बे को देखने लगा।

और मानो पगलाकर उत्तरी हवाओं ने पूरी शक्ति बटोर ली थी।

आधे घण्टे बाद कूप पर काम बन्द कर दिया गया। हमारे मुख्य डेरिक पर गरजते हुए पानी के पहाड़ टूट पड़े मानो रास्ते की हर चीज़ को बहा ले जाना चाहते हों।

"खुले सागर में कूप नम्बर १०९ में लोग किस हाल में होंगे?!" अपने कूप के पास से गुज़रती मोटरबोटों को देखते हुए मैं चिन्ता से सोच रहा था। वे तो एकदम असहाय-से थे। कभी वे एक महाकाय लहर की चोटी पर जा पहुंचते कभी नज़रों से ओझल होकर सागर के गर्त में गिर पड़ते।

लेकिन इसके बावजूद कुपित उर्मियों से एक-एक मीटर के लिए संघर्ष करती मोटरबोटें अभी भी आगे बढ़ रही थीं। सागर में काम करनेवाले ब्रिगेड तट को लौट रहे थे।

नियम के मुताबिक़ पांच प्वाईंट से अधिक शक्तिशाली आंधी में ड्रिलिंग बन्द करके कर्मी तट लौट जाते थे। पिछले साल की दुर्घटनाओं के बाद केन्द्रीय बोर्ड ने यह ख़ास आदेश जारी किया था।

केबिन में लौटकर मैंने १०६ नम्बर कूप को रेडियो सन्देश भेजा: "सब फ़ौरन ही तट पर लौट आओ!"

लेकिन इसके बाद भी मुझे बेचैनी महसूस हो रही थी।

जब केबिन से निकलकर मैं डेरिक पर खड़े पिरवेली की ओर बढ़ा तो हवा के एक ज़बर्दस्त झोंके के कारण सागर में गिरते-गिरते बचा। यह आश्चर्य की ही बात थी कि आखिरी क्षणों में डेरिक के फ़ौलादी रेलिंग को दोनों हाथों से पकड़कर मैं अपनी जान बचाने में किसी तरह सफल रहा था।

"जमाल, बेटे," पिरवेली व्याकुल भाव से मेरी ओर पलट पड़ा। "उनके लिए लांच भेजने का आदेश दो! मेरी सलाह टालो मत!"

उसके विचारों के तारतम्य को भांपना कठिन न था। वृद्ध भली-भांति जानता था कि ऐसी तेज़ आंधी में छोटी-सी मोटरबोट कभी भी कूप नम्बर १०६ तक नहीं पहुंच पायेगी और अगर कर्मी अपनी जान पर खेलकर बोट पर किसी तरह पहुंचने में सफल भी रहेंगे तो तट तक सुरक्षित पहुंचना उनके लिए टेढ़ी खीर ही होगा।

"आप ठीक ही कहते हैं, फ़ोरमैन," मैंने जवाब दिया। "जल्दी तैयार हो जाइये। हम तट की ओर चलते हैं। हमें फ़ौरी क़दम उठाने चाहिए।"

(६)

जब हम तट से दो सौ मीटर की दूरी पर रह गये थे तब घाट से चला लांच हमारे क़रीब से गुज़रा। ऐसा लगता था कि ड्रिलिंग ब्यूरो के कर्मचारियों ने हमारी ही तरह परिस्थिति की गम्भीरता को पूरी तरह समझते हुए दूर सागर में काम कर रहे ब्रिगेड की मदद के लिए अपना सबसे अच्छा जीवन रक्षक लांच भेजा था।

मैं फ़ोरमैन पिरवेली की ओर मुड़ा। अब उसका चेहरा पहले की तरह मायूस न था।

"अब उतना बुरा नहीं।" मुझे लगा वह मुस्करा रहा था।

"यह लांच जरूर आंधी से जूझने में कामयाब रहेगा।"

बहरहाल, हमारी प्रसन्नता ज्यादा देर नहीं टिकी रही।

आंधी पूरे ज़ोरों पर थी। पिछले पचीस वर्षों में कैस्पियन में ऐसी ज़बर्दस्त आंधी आने की याद किसी को न थी। दोपहर को चार बजे तक आंधी की शक्ति १२ प्वाईंट हो गयी थी। कूप नम्बर १०६ सहित कई डेरिक आंधी की चपेट में सागर को भेंट हो चुके थे।

लांच से भेजे गये एक रेडियो सन्देश में भयानक ख़बर मिली थी: "खोपड़ी टूट जाने के कारण फ़ोरमैन एइबात की मृत्यु हो गयी; उसके ब्रिगेड के दो व्यक्तियों की जान ख़तरे में है।"

ख़बर सुनकर मज़दूरों की बस्ती में फिर थोड़ी ही देर में बाकू में लोग हतप्रभ रह गये। जब सुरक्षित तथा घायल तेल कर्मियों को और फ़ोरमैन एइबात के शरीर को लेकर लांच पहुंचा, मैं भीड़ के बीच तट पर खड़ा था। हमारी बस्ती का हरेक बड़ा-छोटा आदमी वहां जमा था। ज़िला कार्यकारिणी के सदस्यों के चेहरे मुझे दिखाई दिये।

क्रोध से उफनते कैस्पियन पर कुहरीला झुटपुटा उतर आया था। क्रुद्ध उत्तरी हवाओं ने भीड़ पर ठण्डे पानी की बौछार बिखेर दी।

लोग एकदम भावाभिभूत थे और कुछ को तो एइबात की मृत्यु का विश्वास तक नहीं हो रहा था।

हाथों में स्ट्रेचर लिये सफ़ेद लिबासवाले अस्पताल कर्मचारी लांच पर चढ़ गये। पहले वे घायलों को ले गये फिर मृतक की बारी आयी।

अचानक मुझे सुनाई दिया:

"ऐ, रास्ता छोड़ो, मुझे जाने दो!.."

मोटे शहतीर की तरह कन्धों को काम लाते हुए गद्देदार जैकेट पहने एक आदमी रास्ता तय करता आखिरी स्ट्रेचर की ओर बढ़ रहा था। उसके कन्धे चौड़े थे, वह लम्बा और भीमकाय था, भीड़ में एकत्र सबसे लम्बे आदमी से भी दो हाथ लम्बा।

हमारे पिरवेली को बस्ती में भला कौन नहीं जानता था? यह वही था।

वह एइबात के मृत शरीर को स्ट्रेचर पर लादकर ले जाते अस्पताल कर्मचारी के सामने पहाड़ की तरह खड़ा होकर बोला:

"पल भर रुक जाओ।"

दुबला-पतला कर्मचारी जिसकी गालों की हड्डियां उभरी थीं, आदर से और मुझे लगा थोड़ा-थोड़ा क्षमा मांगते हुए वृद्ध से कोमल स्वर में बोला :

"पिरवेली दादा, हमें जाने दीजिए।"

लेकिन पिरवेली ने नहीं जाने दिया।

कर्मचारियों को स्ट्रेचर ज़मीन पर रखने को बाध्य होना पड़ा।

भीड़ ख़ामोशी से पिरवेली के अल्फ़ाज़ सुनने का इन्तज़ार करने लगी।

वह स्ट्रेचर के सामने एक घुटने के बल झुक गया और मृत शरीर को अंकवार में भरकर इतने ज़ोरों से सुबक उठा कि मैं विह्वल हो उठा।

उत्तर में भीड़ से क्रन्दन के कई स्वर सुनाई दिये।

यही रीति है : लोग अपने वीरों की मृत्यु पर इसी तरह शोक मनाते हैं।

मिर्ज़ा इब्रागिमोव

(जन्म १९११)

क्रान्ति से कुछ ही समय पहले एक ग़रीब किसान ईरानी अज़रबैजान से बाकू की यात्रा पर निकला। उसे काम की तलाश थी। यह कठिन यात्रा वह अपने बेटे मिर्ज़ा के साथ तय कर रहा था ; लड़के की मां अरक्सेस नदी के दूसरे किनारे ही रह गयी थी।

कई वर्ष बीत गये। मिर्ज़ा इब्रागिमोव सोवियत अज़रबैजान के एक विशिष्ट लेखक, असाधारण विद्वान और सामाजिक कार्यकर्त्ता बन गये। वह राजकीय पुरस्कार प्राप्त कर चुके हैं, अज़रबैजानी सोवियत समाजवादी जनतन्त्र की विज्ञान अकादमी के सक्रिय सदस्य और अज़रबैजान के एक जन लेखक हैं। कई वर्षों तक वह अज़रबैजान के लेखक संघ का अध्यक्ष भी रह चुके हैं।

उनकी कहानियों, उपन्यासों (जैसे 'प्रभात,' 'वान्स का संगम' और 'परवाने') तथा नाटकों में चरित्रों की समृद्ध विविधता होती है। धरती पर सुख और शान्ति के लिए लोगों के संघर्ष के प्रति लेखक वास्तव में चिन्तित हैं। इब्रागिमोव विशेष रूप से नैतिक प्रश्नों तथा दैनन्दिन जीवन व पारिवारिक सम्बन्धों की समस्याओं पर ध्यान देते हैं।

मिर्ज़ा इब्रागिमोव

पेरी-ख़ाला और लेनिन

(१)

उस दिन मौसम बड़ा नाख़ुशगवार था। भूखे सोने व जागने की आदी किसी अकेली बुढ़िया की संकुचित भृकुटि की तरह उदासीन धूसर बादल क्षितिज पर लटके थे। मेघाच्छन्न नभ इस तरह अल्मामीक गांव के ऊपर लटक आया था मानो इसके घरों को रौंद डालने को प्रयत्नशील हो। हवा बड़ी ठण्डी थी और छिटपुट बारिश के बावजूद कीचड़ हफ़्तों से सूखने का नाम ही नहीं ले रहा था।

लेकिन दुर्गम सड़कें अप्रत्याशित गति से पहुंचनेवाली ख़बरों को रोक पाने में असफल थीं।

तभी तो खलिहानों के पीछे भुसौरे के सामने सुबह से ही कुछ लोग आ जुटे थे।

"हमारे मालिकों के बुरे दिन आनेवाले हैं। आज नहीं तो कल उन्हें बाकू से बाहर खदेड़ दिया जायेगा," हट्टे-कट्टे खेत-मज़दूर वेली ने कहा।

लटकती दाढ़ी-मूंछों व लम्बे काले टोप और अच्छे चोख़ावाले* हाजी गुलू ने तेज़ ज़बान खेत-मज़दूर की ओर उद्विग्न दृष्टि डाली।

---

* चोख़ा – मर्दों की क़मीज़ के ऊपर पहनायी जानेवाली लंबी-सी पोशाक।

"भूखे चूज़े सपनों में अनाज के दाने देखते हैं," सिर को मलामत से हिलाते हुए वह बोला।

"तुम यहां बैठे-बैठे हलवा खाने के लिए निमन्त्रण की प्रतीक्षा कर रहे हो। लेकिन लोग बताते हैं कि रूस में लोग जानवरों की तरह घास चबाते स्तेपी में मारे-मारे फिर रहे हैं। बोल्शेविक भूख से बेहाल हैं। भूखे-नंगे वे लोग यहां तक कैसे पहुंच सकते हैं? जनरल देनिकिन मैदान मार चुका है और सब कहीं उनका सफ़ाया करने में लगा है।"

माईस नाज़ार जिसके बाल, मूंछ-दाढ़ियां व भौंहें तक कांसे की तरह लाल रंग की थीं, उद्धत ढंग से हंस पड़ा।

"हाजी, यह कपोल-गाथा उन्ही लोगों के लिए रख छोड़ो जो इस पर विश्वास करते हैं! बोल्शेविकों ने ज़ार निकोलस को गद्दी से उतार दिया तो क्या वे किसी ऐसे-वैसे जनरल देनिकिन से नहीं निबट सकते हैं?! देखते-देखते बिजली कड़क उठेगी। अगर तुम ज़िन्दा रहे तो खुद देख लोगे; किसी भी पल जार्जिया व आर्मीनिया में वे आ पहुंचेंगे। फिर हमारा अज़रबैजान क्यों अलग-थलग रहे?"

गुस्से के कारण कांपती अंगुलियों से हाजी ने तेज़ी से तसबीह फेरना शुरू कर दिया। अपने से बड़े के प्रति कोई आदर भाव न रखने-वाले इस बेकहे, बेशर्म माईस को वह पैरों तले रौंद डालना चाहता था।

"वाह-वाह क्या बात है! जो माईस एक मरियल टट्टू भी नहीं सधा सकता है, मुझे दुनिया के दूसरे छोर की खबरें सुनाने लगा है! और मैं अपनी दाढ़ी की क़सम खाकर कहता हूं कि बोल्शेविकों को आंखें मलने का भी समय नहीं मिलेगा और वे भूख व ब्रिटिशवालों के हाथों मारे जायेंगे। यह सिर्फ़ मैं ही नहीं, सभी कह रहे हैं।"

इस प्रहार से सकते में आया माईस किसी लड़की की तरह लजा गया। तब खेत-मज़दूर वेली ने उसकी मदद की।

"हाजी, भगवान करे कि तुम्हारी दाढ़ी सही-सलामत रहे! ज़ाहिर है कि तुम्हारे पांव हमारी बुद्धिहीन खोपड़ियों से ज़्यादा चतुर हैं... लेकिन भगवान के लिए मुझ जैसे मूरख को माफ़ करना अगर मैं यह कहने से बाज़ न आऊं कि जितनी अफ़वाहें फैली हैं उनपर विश्वास कर लें तो हमारे कान उसी तरह भर जायेंगे जैसे अच्छी फ़सल होने

पर चक्की की ओर जानेवाली सड़क भर जाती है! अब बताओ, क्या यह बात सच नहीं है, हाजी?"

वेली ने अपनी बातें बिना मुस्कराये गम्भीर स्वर में कहीं थीं लेकिन सुननेवाले हंस पड़े। वे मतलब समझ गये थे और उपहास के कारण हाजी गुलू के दिल पर आरी चल गयी।

"बस ज़रा इन्तज़ार करो," वह फुत्कारा, "इन्तज़ार करो कि बोल्शेविक आयें और तुम्हें स्वादिष्ट पुलाव खिलायें! रूस को अच्छी तरह खिला-पिला लिया है, अब अज़रबैजान की बारी है!"

"हाजी, अपनी नीन्द न हराम करो," खेत-मजदूर उसी लहजे में बोला "निस्सन्देह, बोल्शेविक यहां कभी नहीं आयेंगे... हम तो बस इस ख़राब मौसम में समय बिताने के लिए यूं ही गाल बजा रहे हैं। लेकिन लोग बताते हैं कि मास्को में खुद लेनिन ने आदेश दिया है कि बाकू को हर सम्भव सहायता दी जाये। पैसे, अनाज, कपड़े। इसके बारे में तुम्हारा क्या ख्याल है, हाजी? बात अच्छी लगी?"

गुस्से के कारण हाजी का चेहरा लाल हो उठा; उसकी इच्छा थी कि खेत-मज़दूर के सिर पर ठोकर मारकर चिल्ला पड़े, "मेरी नज़रों से दूर हो जा, नीच!" लेकिन इस जमाने में ऐसा करना बुद्धि-मानी न होता, इस लिए हाजी किसी तरह अपने गुस्से को निगल गया। सिर्फ़ तसबीह फेरती अंगलियों से ही उसके गुस्से का पता चल रहा था।

ख़ामोशी से नाज़ार ने घिसे जूते से कीचड़ को हिलाकर देखा। जूते का अगला हिस्सा कौए की कलंगी-सी थी।

कच्ची ईंट के बने खलिहान के पीछे फ़र्श पर झाड़ू लगाने के बाद पहरेदार जफ़र-अमी दरवाज़े के पास आ पहुंचा और झाड़ू नीचे रखकर सीधा खड़ा हो गया।

"भगवान लेनिन को लम्बी उम्र दे," वह श्रद्धा से बोला। "लोग कहते हैं, लेनिन दुनिया में ग़रीबों का पहला साथी है।"

हाजी गुलू ने एक घृणा भरी दृष्टि जफ़र-अमी पर डाली; उस बूढ़े की हर चीज़ – सफ़ेद बाल, तितर-बितर दाढ़ी, दुबली-पतली झुकी-सी आकृति – सब के सब से उस अमीर आदमी को घृणा हो रही थी। हाजी ने इस तरह दृष्टि फेर ली मानो गले की कड़वाहट निगलना चाहता हो।

4—362

"सुनो, वेली," अचानक ही उसने खेत-मजदूर से पूछा। "तुम सब कुछ जानते हो तो ज़रा बताओ लेनिन का धर्म क्या है?"

चूंकि वेली ने हाजी की चालाकी भांप ली थी, इसलिए कोई जवाब दिये बिना वह माथा खुजलाता खड़ा रहा मानो बात समझ में नहीं आयी हो। लेकिन ज़फ़र-अमी खलिहान से ही बोला:

"मुसलमान! इसमें कोई सन्देह नहीं, लेनिन एक अच्छा मुसलमान है!"

हाजी गुलू ने बूढ़े को घूरकर देखा।

"यह तुम्हारी जड़बुद्धि में समझ में आने लायक़ नहीं। झाड़ू लगाते रहो और नेकी के लिए अल्लाह की दुआ करते रहो!" और फिर धीमे से बोला: "मुझे बताया गया है कि लेनिन मूर्तिपूजक है!"

साईस नाज़ार ने अपनी लाल मूंछ थपथपायी।

"बकवास! मूर्तिपूजक ईरान में रहते हैं, रूस में नहीं"

"शायद वहीं से आया हो," हाजी ने बल दिया।

"क्या कोई मूर्तिपूजक बादशाह को गद्दी से उतारने की हिमाक़त कर सकता? ज़रा सोचकर बोलो, हाजी। ऐसा हो ही नहीं सकता। लेनिन ईसाई है। पक्की बात है।"

लेकिन ज़फ़र-अमी हार माननेवाला न था।

"मुझे पक्का मालूम है—वह मुसलमान है! ईमान का बन्दा, इंसाफ़ के लिए लड़नेवाला!"

गरमागरम बहस छिड़ गयी और पता नहीं बात किस तरह खत्म होती अगर वेली बीच में न बोलता।

"लेनिन किसी धर्म को नहीं मानता। जिनके पास कुछ नहीं है, उन सब के लिए वह जन्नत को धरती पर लाना चाहता है! वह लोगों को गुलामी से मुक्त कराना चाहता है।"

"अगर ऐसी बात है तो बहुत बढ़िया है," ज़फ़र-अमी ने कहा।

गांव से कुछ दूरी पर पहाड़ी से उतरती गाड़ी के कारण बहस खत्म हो गयी।

"देखो, देखो, वह बेक की फिटन है," आंखें मिकोड़कर ताकते हुए हाजी ने कहा। "ऐसी क्या बात हो गयी जिस से वह इस खाबड़-खूबड़ रास्ते पर चलने को मजबूर हुआ?"

"ऐसा नहीं हो सकता!" साईस बोल उठा। "इन सड़कों पर अपनी गाड़ी के पहिये तोड़ने की उसे क्या ज़रूरत हो सकती है?" लेकिन इसके बावजूद नाज़ार खटके में आ गया था।

बूढ़े ज़फ़र-अमी ने अपना झाड़ू उठा लिया। क्या पता, बेक ही हो लेकिन जाते-जाते कहता गया।

"दो घोड़ोंवाली फिटन है लेकिन उसमें कौन है, दिख नहीं रहा।"

भाग-भाग होते घोड़े फिटन को आखिर गांव ले आये और दौड़-दौड़कर पहुंचते लोगों को चेर्केस कोट व क़ाराकुल खालवाला अस्त्राखान टोप पहने पीठ के बल पीछे लेटा लम्बा-तड़ंगा शाखबाज़-बेक दिखाई दिया। यूं तो बेक का नाम भलमनसाहत के लिए कभी नहीं लिया जाता था लेकिन उस दिन या तो वह थका था या किसी कारण परेशान था, ख़ास तौर से लोगों को भेड़िये जैसी हिंस्रता से घूर रहा था।

थके घोड़े वाष्पोच्छ्वास छोड़ रहे थे; कीचड़ न सिर्फ़ उनकी टांगों में बल्कि टुनटुनियों व फुंदनों से सजे दोनों पहलुओं में भी सना था। रोग़नदार फिटन की दुर्दशा हो गयी थी। कीचड़ के छींटे बेक के कोट व फिटनवान के थके चेहरे पर भी पड़े थे।

बुरी तरह हांफते घोड़े जैसे ही फिटन को खींचते गांव चौक के बीच पहुंचे, फिटन को किसानों—मर्दों, औरतों व बच्चों ने घेर लिया। ख़ामोशी से वे एकटक बेक की ओर देख रहे थे और उनकी निगाहें गांव पर उमड़ते पतझड़ के बादलों की तरह उदास थीं। तभी वेली भीड़ से निकलकर आगे बढ़ आया मानो उसने मन में सोच लिया था कि मौत जीवन में दो बार नहीं आती है और एक बार तो वह आयेगी ही।

"लगता है, बातें यूं ही झूठमूठ नहीं फैली हैं कि हमारे मालिकों के दिन लद गये हैं," वह ज़ोरों से हंस पड़ा। "बेक के चेहरे पर मुर्दनी छायी है मानो उसके सारे जहाज़ तूफ़ानी सागर में डूब गये हों।"

भारी क़दमों से बेक फिटन से नीचे उतर आया और भीड़ पीछे को खिसक गयी।

"तू क्या बक-बक कर रहा है, आवारा कुत्ते?" वह गुर्राया।

लेकिन वेली दब्बू न था।

"मैं आपकी शानो-शोहरत के लिए दुआ कर रहा हूं। मैं दुआ

कर रहा हूं कि सूरज जल्द ही जल्द निकल आये और सड़क सूख जाये जिससे आप तेज़ी से शहर का रास्ता नाप सकें!”

छोटे-छोटे लड़के खी-खीकर उठे लेकिन उनकी मांओं ने उन्हें चुप करा दिया। आपे से बाहर होते हुए बेक ने भीड़ को घूरकर देखा फिर मुंहज़ोर मज़दूर से पूछा:

“सच में? और अल्लाह से तूने क्या-क्या दुआएं कीं?”

“मैंने अल्लाह से दुआ की कि वह हमारे बेक की उम्र दराज़ रखे, अच्छी सेहत रखे जिससे कि हम गुनहगार अपने बेक के शानो-शौकत से भरे दामन तले हमेशा-हमेशा बने रहें! और अगर हमारे ग़रीबनिवाज़ बेक इजाज़त दें तो मैं और भी बहुत कुछ कह सकता हूं।”

“ज़बान को लगाम दे!” हाजी रोबीली आवाज़ में गरज उठा। “बेक सफ़र के कारण थके हैं, उन्हें आराम चाहिए। अपनी बेसिर-पैर की बातें तुम बाद में कर सकते हो!” उसने वेली की कमीज़ का कॉलर पकड़कर उसे अच्छी तरह झकझोर देना चाहा।

लेकिन वेली ने बड़ी शान्ति से उसका हाथ एक ओर झटक दिया। “सभी जानते हैं, मैं कभी बेकार की बक-बक नहीं करता। लेकिन अगर सचमुच ज़रूरत पड़ गयी तो मैं गवर्नर से भी बात करने से नहीं हिचकूंगा!”

“बेक, सभी जानते हैं कि इस बेकहे खेत-मज़दूर को न अक्ल है न शर्म!” बेक की ओर चापलूसी भरी मुस्कान फेंकते हुए हाजी दुख से बोला। “मेरी प्रार्थना है कि उसकी ओर कोई ध्यान न दें, मेहरबान।” चुपके-चुपके उसने वेली की ओर अपना मुक्का लहराकर दिखाया।

लेकिन वेली हार माननेवाला न था।

“बेक, मुझे एक बहुत ही अहम सवाल पूछने की इजाज़त दीजिए।”

“उसे यहां से भगाओ,” हाजी गुलू ने पूरी दरबारदारी शुरू कर दी थी। “बेक थके हैं, बहुत थके हैं! ऐ, लोगो, उच्च कुलोत्पन्न बेक के लिए रास्ता छोड़ो! और उस खेत-मज़दूर को लतिया कर हटा दो!”

भीड़ से गुस्से भरी आवाज़ें आयीं।

“उस खेत-मज़दूर को भी तुम्हारी ही तरह अल्लाह ने बनाया है, दढ़ियल!”

“क्या खेत-मज़दूर भी आदमी नहीं?”

“उसे बोलने दो, उसका मुंह बन्द न करो!”

सच में हाजी गुलू ने अपनी सीमाएं लांघ दी थीं, इन दिनों यह बात बड़ी ख़तरनाक थी। मक्कार बेक ने देखा, दख़ल देने का यही मौक़ा था। उसने लोगों को हाथ उठाकर ख़ामोश होने का इशारा करके वेली की ओर देखे बिना कहा, “पूछो अपना सवाल।”

“सम्मानित बेक की उम्र लम्बी हो,” जब चौक में ख़ामोशी छा गयी, वेली ने बोलना शुरू किया। “मैं जो पूछना चाहता हूं, वह यह है – क्या क्याज़िम के घर को अखिरकार नेस्तनाबूद किया जायेगा? क्या उसकी जगह बेक खिड़कियों और बालकनियोंवाला बड़ा-सा मकान बनवायेंगे?”

बेक के काले घने गलमुच्छे अनिष्टकारी ढंग से फड़क उठे; झटके से उसने चमड़े का चाबुक उठा लिया लेकिन वेली दुबककर पीछे नहीं हटा और उपहास भरी मुस्कान के साथ जहां का तहां खड़ा रहा। बेक चाबुक नीचे करके अपने बूट से कीचड़ खुरचने लगा।

“क्याज़िम के झोंपड़े के मलबों पर और पूरे गांव पर अल्लाह का कुफ़्र टूटे। मैं यह सब इस सज्जन को बेचने जा रहा हूं जो मेरे भी और तुम लोगों के भी मेहमान हैं,” दुर्भावनापूर्ण हर्षातिरेक से बेक ने कहा और चाबुक से फिटन के अन्दर की ओर इशारा किया।

सबके सब हक्का-बक्का रह गये थे। अब कहीं लोगों की नज़र फिटन के अन्दर एक कोने में धमककर बैठे एक पीले से आदमी पर पड़ी। उसने ऊंचा टोप और लम्बा कोट पहन रखा था, जिसके ऊपर ऊनी चारख़ाना चादर ओढ़ लिया था। उसने आश्चर्यचकित किसानों की ओर एक विकृत मुस्कान के साथ देखा।

(२)

वसन्त के बादल फलोद्यानों, खेतों और चरागाहों को दमकती बौछारों से धोने के बाद दक्षिण की ओर उड़ गये। गांव पर, फलोद्यानों के पत्रविहीन कंकालीय सेब के वृक्षों पर घना धूसर कुहरा छाया था। वसन्त के आते ही सुबह से शाम तक काम में लगे रहनेवाले किसानों

को शायद ही पता चल पाता कि कब दिन ख़त्म हुआ और शाम शुरू हुई।

लेकिन पेरी-ख़ाला सब कुछ देखती, सब कुछ महसूस करती थी। उसके पास न तो फलोद्यान था, न गाय थी, न अपना मकान था। पिछले कई वर्षों से जाड़ा हो या वसन्त, अमीर पड़ोसियों के यहां दिन भर जांगरतोड़ मेहनत-मशक़्क़त करने के बाद, दूसरे लोगों के आंगन-अहातों में, दूसरे लोगों की ज़मीन में काम करने के बाद वह गांव के छोर पर जाकर घुटने समेटकर, सिर को बांहों पर रखकर बैठ जाती और विचारों को उड़ने छोड़ देती।

उसके काले साटन के पैवन्दवाले स्कर्ट, कोहनी से फटे घिसे ब्लाऊज़, बिवाईदार पैरों की ओर एक नज़र डालकर ही कोई उसकी अथाह ग़रीबी को जान ले सकता था। गर्मी हो या जाड़ा, वह हमेशा नंगे पांव चलती थी।

यह सच था। ज़रूरत उसका पालना रही थी, ग़रीबी ईमानदार संगी और बदनसीबी ही उसकी क़िस्मत थी, जीवन भर का एकमात्र साथी।

इसके बावजूद, अगर कोई उसे ध्यान से देखता तो पाता कि पेरी-ख़ाला की चाल-ढ़ाल में एक स्वाभाविक गरिमा थी, उसकी लम्बी-सी आकृति का सौन्दर्य अक्षुण्ण था, उसकी आंखों में विचारों की प्रांजलता थी और काले रूमाल से बंधी असमय सफ़ेद हुई उसकी चोटियां वास्तव में मुकुट थीं ; वह उतनी दयनीय या असहाय न थी जितना की पहली नज़र में दिखाई देती थी, वह अपना सम्मान हमेशा बनाये रखती थी।

कभी खुशियां पेरी-ख़ाला के भी पांव चूमती थीं, अपना घर था, स्नेहसिक्त मां-बाप का हाथ उसके सिर पर था, उच्च, उत्साहपूर्ण भावना से भरे-पूरे एक सुन्दर युवक की साहस तथा समर्पण भरी आंखों ने उसे दिल में जगह दी थी ; गांव के बच्चों की-सी आज्ञाकारिता से उसके पांवों के पास खेलते अपने बच्चे थे। वे मां की हर बात मानने को तत्पर रहते।

जब वह ख़ुद बच्ची थी, उसके पिता ने उसे बताया था कि सात [illegible]ियों के पार, सात पहाड़ों के बीच सात घेरों में पाखण्डी, मक्कार, [illegible]पी एक बुढ़िया जादूगरिनी रहती है। उसका नाम बड़ा विचित्र

था – समय। वह लोगों की क़िस्मत के धागे बुनती रात-दिन अपना चरखा चलाती रहती है और फिर धागे के गोले वादी में फेंक देती है। प्रचण्ड हवाएं उन गोलों को उड़ा ले जाकर चारों दिशाओं में बिखेर देती हैं और टुकड़े जंगली गुलाबों में, पहाड़ों की चोटियों पर फंस जाते हैं या सोतों में गिरकर धाराओं के साथ बह जाते हैं। और कभी-कभी वह पगली जादूगरिनी ख़ुद लोगों की क़िस्मतें गूंथती है, वह ख़ुद टुकड़ों को हवा में उछाल देती है। इसी कारण दुनिया में इतनी गड़बड़ी हैं, दुख है, इसी कारण ग़रीब व बदनसीब लोग आठ-आठ आंसू बहाते रहते हैं। और अगर किसी को हमेशा बदनसीबी मिलती है और किसी को ख़ुशनसीबी, अगर कोई बीमार होता है और उसका दुश्मन मोटा व अमीर, अगर एक पड़ोसी का घर-द्वार लुट जाता है और दूसरे के क़दम लक्ष्मी चूमती है तो यह सब उसी फ़रेबी जादूगरिनी के कारण होता है क्योंकि सभी लोगों के क़िस्मत के धागे वह अपनी टेढ़ी अंगुलियों से बुनती रहती है। तुम ख़ुशक़िस्मती पाने के लिए चाहे लाखों तरह सिर, हाथ-पैर मारो लेकिन वह धागा अपने हाथों में रखती है और तुम्हारे परिवार को अकथ अकिंचनता के गर्त में डाल देती है। सब के सब उसी की इच्छा के आगे नाचने को बाध्य हैं और उसका नाम है "समय"। और आज तक कोई उसे खुले आम चुनौती देनेवाला या उससे अकेला मुक़ाबला करनेवाला पैदा ही नहीं हुआ है – जो कि इस शाश्वत पीड़ा से मानवजाति को मुक्त करने के लिए अपनी जान पर खेल जाये।

आज गांव से निकलते ही पेरी-ख़ाला झोंपड़े व बाग़ीचे को एकटक देखने में इस तरह डूबी थी कि ढोर से भटककर गेहूं की हरी बाली की ओर बढ़ते एक लाल बछड़े पर उसकी नज़र ही नहीं पड़ी। वहीं बैठी-बैठी वह देख रही थी कि अर्से से पलरतर न होने के कारण पिछली दीवार के एक हिस्से को वर्षा बहा ले जा रही थी। हां, ठीक भी है, अगर दो साल तक किसी दीवार पर पलस्तर या सफ़ेदी न की जाये तो वह जल्दी ही धसकने लगती है। सरकण्डे की छत में भी दरार पड़ गयी थीं जो हवा व वर्षा के कारण बढ़ती ही चली जा रही थी। इधर काफ़ी समय से पेड़ों की भी किसी ने देख-भाल नहीं की थी, सूखी डालियां कतरी नहीं गयी थीं या जड़ों के पास मिट्टी की खुदाई भी नहीं

हुई थी। पेड़ पेरी-ख़ाला की ही तरह अकाल मुरझा गये थे। पेड़ मानो शोक करते प्रतीत होते थे: "हमारे मालिक, कहां हो तुम? लौट आओ!" पेरी-ख़ाला को उनकी शिकायतें सुनाई दीं और उसका हृदय सहानुभूति से उमड़ पड़ा। उसकी आंखें जो अब तक आशा से ज्योतित-सी थी, बुझ गयीं मानो हृदय से उठते दुख के कुहरों ने उन्हें आच्छादित कर लिया हो। और धूप व हवा से झुर्राये व धूमिल पड़े उसके गालों पर आंसुओं की धाराएं बहने लगीं।

"ऐ, पेरी-ख़ाला, उठो, जागो!" एक गूंजती आवाज़ सुनाई दी। "वह लाल बछड़ा बेक का गेहूं का खेत पूरी तरह चटकर जायेगा।"

आवाज़ वेली की थी। वह सदा सीना ताने रहनेवाला मसख़रा था–ऐसा मसख़रा जो लगातार कई-कई दिनों तक भूखा रहने के बावजूद मज़ाक करना नहीं छोड़ता था, वह लोगों के भाग्य का धागा बुननेवाली जादूगरिनी पर भी व्यंग्य करने से नहीं कतराता था।

"क्या बात है, पेरी-खाला?" वह ज़ोरों से बोला। "मुंह ऊपर उठाकर मुस्कराओ!"

लेकिन निकट आकर जब वेली को आंसुओं से तर उसकी प्रभावहीन आंखें कच्ची ईंट के झोंपड़े पर टिकी दिखाई दीं तो वह सब कुछ समझ गया।

"कैसा बुरा समय है," परेशान हो वह बोला और पेरी-ख़ाला को ज़बर्दस्ती बैठाते हुए खुद डण्डा दिखाता बछड़े की ओर दौड़ गया।

दूसरों से ऊंचा दिखता विशाल टहनियों से युक्त सेब का पेड़ जो गर्मियों में घर के द्वार पर ठण्डी छाया बिखेरता था और जाड़े में चुभती हवाओं से रक्षा प्रदान करता था, पेरी-ख़ाला की ओर स्नेहपूर्ण दृष्टि डालता प्रतीत हुआ।

उस छोटे-से फलोद्यान का पूरा इतिहास उसी पेड़ से शुरू हुआ था। पेरी-ख़ाला के पति क्याज़िम ने बड़ी सावधानी से शादी के बाद पहले ही दिन उस पेड़ की जड़ें गड्ढे में डाली थीं। फिर पेरी-ख़ाला पास के नाले से तब तक उसे सींचती रही थी जब तक वह बढ़कर ऊंचा और शक्तिशाली न हो गया। और जब पेड़ की डालें फैलने लगीं पेरी-ख़ाला अपने पति के साथ चांदनी रातों में और धूप से भरे [illegible] में उसके नीचे बैठा करती, पति को सुख-दुख की बातें बताती [illegible]नों माथ-साथ प्रेम की रोशनी व जीवन की कठिनाइयां भोगते।

यहीं बैठकर वह बच्चों को लोरियां सुनाती थी और पेड़ अपने पत्तों के संगीत से उसके स्वर को गुंजित करता था।

दो खिड़कियोंवाला यह झोंपड़ा, कुसुमित सेब के वृक्षोंवाला यह फलोद्यान, कई वर्षों की लगातार मेहनत से उसके परिवार द्वारा निर्मित यह नीड़ पल भर में एक आंधी से ध्वस्त हो गया। पेरी-ख़ाला अपना नाम भूल सकती, अपने पहले बेटे का नाम भूल सकती लेकिन उस भयानक शाम को कभी नहीं भूल सकती।

शरद की फ़सल पटाकर क्याज़िम खेत से घर लौटा था और उनका बेटा नाज़िम अपने गड़ेरिये दोस्तों के साथ ऊंचे चरागाह से पशुओं के ढोर को नीचे खदेड़कर घर में आकर सो गया था। उनकी दस साल की छोटी-सी बेटी तेल्ली जो बचपन से ही बीमार रहती थी, उस शाम एकदम स्वस्थ होकर शरारतें भी करने लगी थी। और पेरी-ख़ाला यह सब देखकर अपने परिवार में आनन्दमग्न हो दौड़कर फलोद्यान में चली गयी और बिजली की-सी तेज़ी से काम में लग गयी। चूंकि खुली गर्म शाम थी, उन्होंने रात का खाना उसी सेब के पेड़ के नीचे खाया था; पेरी-ख़ाला कांसे के छोटे-से समोवर को बुझाकर धोने के लिए बर्तन इकट्ठे कर रही थी कि तभी दो अंगरक्षकों के साथ शाख़-बाज़ बेक अचानक ही वहां आ धमका।

क़ालीन पर बैठे क्याज़िम और नाज़िम, दोनों ने उछलकर उठ खड़ा होने के बाद सिर झुकाकर बेक से कुछ खाने-पीने की प्रार्थना की। और रिवाज के मुताबिक़ पेरी-ख़ाला ने जल्दी से मुंह पर बुरक़ा डाल लिया। वह एक ओर चली गयी लेकिन इतनी दूर नहीं कि पति की बातचीत न सुन सके।

लेकिन बेक बैठा नहीं। इशारे से क्याज़िम को क़रीब बुलाकर उसने धीमी आवाज़ में कुछ कहा। पेरी-ख़ाला ने पति को चौंककर पीछे हटते देखा फिर कांपती आवाज़ में कहते सुना।

"ग़रीबनिवाज़ बेक, मैं आपका और आपके बच्चों का जीवन भर ग़ुलाम बना रहूंगा लेकिन मैं आपसे विनती करता हूं, ऐसा बेइंसाफ़ी का इरादा छोड़ दें।"

"इससे तुम्हें क्या फ़र्क़ पड़ता है?" ग़ुस्से से बेक चिल्लाया। "मैं तुम्हें ऐसी ही ज़मीन दे रहा हूं और ऐसा ही बग़ीचा बनाने के

लिए मदद भी दूंगा... लेकिन मुझे यह जगह बड़ी पसन्द आ गयी है, मैं यहां एक नया मकान बनवाऊंगा। उसमें बालकनियां होंगी। ऊँची छत होगी!"

"मैं आपकी बात मानने से मर जाना बेहतर समझूंगा, बेक!" विनतियों का कोई असर न देखकर क्याज़िम ने दृढ़ता से कहा।

"ओह, तुम ज़रूर मानोगे," हिक़ारत भरे इशारे के साथ बेक बोला और उसके नौकर खी-खी करके हंस पड़े। "ज़मीन अभी भी मेरी है, इसका क़र्ज़ अभी भी बाक़ी है... इसलिए ज़बान पर क़ाबू रखो। मेरी ही ज़मीन और मुझसे न मानने की बात करते हो!"

"हमने कर्ज़ तो कब का चुका दिया," अब तक ख़ामोश नाज़िम चीख़ उठा। "आप सच नहीं कह रहे हैं!"

"क्या! बोल्शेविक कुत्ते!" गुस्से से लाल होता बेक गुर्राया। "अपनी गुस्ताख़ ज़बान चला रहे हो! क्या मुझे बहरा समझते हो? नहीं, मैं सब कुछ सुनता हूं। मैं सब कुछ जानता हूं। गड़ेरियों से तुम्हारी एक-एक विद्रोही बात मुझे मालूम है!"

नाज़िम का चेहरा पीला पड़ गया लेकिन उसने आंखें नहीं झुकायीं; बड़ी बहादुरी से उसने भी शाख़बाज़ की नफ़रत भरी नज़र के जवाब में उसी तरह उसकी ओर देखा।

"मुझे भी मालूम है, आदरणीय बेक, आपके नौकरों के कान बड़े तेज़ हैं," खुले तौर पर उपहास करते हुए वह बोला।

क्याज़िम ने बेटे को आगे बोलने से रोक दिया; वह जानता था, धागे को उतना ही खींचना चाहिए जिससे कि वह टूटे नहीं।

"चुप रहो, बेटे, बेक हमारे मालिक हैं, हमारे रखवाले। तुम्हें बताने की जरूरत नहीं कि वह उम्र में मुझ से भी बड़े हैं। बहादुरी न दिखाओ, चुप रहो।"

"तुमने बाप की सीख देने में देर कर दी," धमकाते हुए बेक बोला और सलाम-दुआ कहे बिना ही मुड़कर चला गया।

कुछ ही दिनों बाद नाज़िम गिरफ़्तार कर लिया गया। फिर बुरे दिन आने शुरू हो गये। क्याज़िम को पुलिस व पूछताछ अधिकारी के यहां से बार-बार बुलावा आने लगा। अकड़ते अफ़सर आये और ज़मीन की ख़रीदारी का पट्टा दिखाने को कहने लगे। कुछ काग़ज़ात तो मिल

गये लेकिन कुछ गुम हो गये थे—उस ज़माने में अधिकतर ख़रीद-फ़रोख़्त बिना काग़ज़ात के परस्पर विश्वास के आधार पर ही की जाती थी। सो, जल्दी ही घुड़सवार क्याज़िम को बहुत दूर शहर में ले गये और पेरी-ख़ाला व नन्ही तेल्ली को बेक के आदमियों ने घर से निकाल बाहर कर दिया। इसके बाद ही ख़बर मिली कि क़ैद में क्याज़िम की मृत्यु हो गयी। मृत्यु का कारण दिल का दौरा बताया गया था लेकिन सम्भावना यही थी कि अधिक पिटाई होने से वह मरा था। नन्ही तेल्ली की टिमटिमाती ज़िन्दगी की लो जैसे हवा के झोंके से बुझ गयी। पतझड़ के आकाश तले पेरी-ख़ाला अकेली रह गयी, न तो किसी को उसकी मदद करने या उससे घर के अन्दर पनाह देने की हिम्मत थी, सब को बेक का कोप-भाजन बनने का भय था। सिर्फ़ वेली को छोड़कर। उसने उस मवेशीख़ाने में पेरी-ख़ाला को पनाह दी जहां वह ख़ुद रहता था।

फिर उस ग़रीब औरत ने दूसरों के जानवर देखने का काम या गोशाले से गोबर साफ़ करने या पड़ोसियों के फलोद्यानों में खुदाई का काम करना शुरू कर दिया।

बछड़े को बेक के खेत से हांकने के बाद जब वेली लौटा तो उसकी बग़ल में घास पर बैठ गया। अपने पैवन्ददार झोले से उसने जौ की रोटी का टुकड़ा और दो अण्डे निकाले। उसके हाथ बड़े और खुरदरे थे और वेली ख़ुद नाटा होने के बावजूद हट्टा-कट्टा था। अपने बड़े हाथ से रोटी तोड़कर उसने ख़ूब उबले एक अण्डे के साथ पेरी-ख़ाला की ओर बढ़ा दी।

"ना मत कहो। इसे ले लो, ख़ाला-जान। तुम्हें ताक़त चाहिए। मेरा विश्वास है, बुराई का फल इस दुनिया में ज़रूर मिलता है! और जिन अपराधियों ने तुम्हारी यह दुर्दशा की है, उन्हें भी ज़रूर ही सज़ा मिलेगी।"

वेली उसकी देखभाल मां की तरह करता था। उसने उसे खाने के लिए बाध्य कर दिया।

"पेरी-ख़ाला, तुम जानती हो, पतीली कसकर बन्द कर दी गयी है लेकिन भाप उठने लगी है। हमें ज़रूर ख़ुशी नसीब होगी! और मालिक कहीं दूर भाग जाने को तत्पर हुए।"

"कौन-से मालिक?" पेरी-ख़ाला ने कच्ची ईंट के झोंपड़े से अपनी आंखें हटाकर चिन्तन भरी मुद्रा में उसकी ओर मुड़ते हुए आश्चर्य से पूछा।

"शाख़बाज़-बेक और सुलतानोव जैसे मालिक और वे सब, जो हैं तो भेड़िये लेकिन भेड़ की खाल पहने हैं।"

"मालूम नहीं, बेटे, मालूम नहीं," उसने थकी आह भरी। "मेरे ख़्याल से आजकल जो कुछ हो रहा है, उसे खुदा ही समझ सकता है। हां, शैतान का सोने व विष का बना मन्दिर अवश्य ही ध्वस्त होना चाहिए... जब चींटियों की मौत आती है, उनके पंख उग आते हैं। और हमारे मालिकों, बेकों के पंख उग आये हैं और कटारों के सींग भी। लेकिन मैं तो आदमी के भाग्य को देखती हूं और हैरान होती हूं; भाग्य ईमान के पक्कों को ऊंचाई पर उठाता है और फिर उन्हें गर्तहीन खाई में फेंक देता है। इस निर्मम भाग्य पर कैसे नियन्त्रण पाया जा सकता है? कल क्या होगा तुम कैसे जान सकते हो, तुम भविष्य को कैसे देख ले सकते हो? मुझे तो लगता है कि शाख़बाज़-बेक के खिलाफ़ कोई भी नहीं टिक सकता है।"

"ओ, पेरी-ख़ाला, तुमने जिन मज़बूत तनों को देखा उन्हें अब कटकर ईंधन की लकड़ी बनाया जा रहा है!" खेत-मज़दूर बोला। "लेनिन–तुमने लेनिन के बारे में सुना है? लेनिन ने पूरे रूस को बदलकर रख दिया है, आज वहां पेत्रोग्राद में मज़दूरों और किसानों की सरकार है। सोवियत सरकार!" इन शब्दों के उच्चारण से मतवाले हुए उसने ज़ोरों से कहा। "लेनिन का नाम सुनते ही उन बेकों की टांगें कांपने लगती हैं। पहाड़ों के उस पार हमारे दाघेस्तानी बन्धुओं ने लेनिन की पताका उठा भी ली है। मुझे इसका पक्का पता है! और आज नहीं तो कल बाकू के तेलकर्मी भी वैसा ही करेंगे! पेरी-ख़ाला, मैं जानता हूं, तुम्हें मेरी बातों का यक़ीन न हो रहा होगा लेकिन यह लेनिन हैं लेनिन जो तुम्हें तुम्हारा बेटा, तुम्हारा घर, तुम्हारा फलोद्यान तुम्हें लौटा कर रहेंगे। खुद लेनिन!"

एक बार नहीं, दो बार नहीं–जाड़े की शामों को जब गांव की कुहरीली ख़ामोशी गाय के रंभाने व भेड़ों के मेमियाने से भंग होती थी, कई बार वेली ने जोश-ख़रोश के साथ उसे लेनिन के बारे में

बताया था। ऐसा प्रतीत होता था कि यह खेत-मज़दूर, गोबर खोदने-वाला यह मज़दूर जिसने भेड़ों की गोबर से लिपटी पूंछों के अलावा कभी कुछ भी नहीं देखा था, इसके बावजूद ऐसी दृष्टि रखता था जिससे वह इस बदक़िस्मत गांव में बैठा ही बैठा दुनिया में हो रही सभी घटनाओं को देख सकता था। लगता था कि दुख के दिनों में पेरी-ख़ाला को उम्मीद व हिम्मत बंधाने के लिए, उसका सहारा बनने के लिए खुद भगवान ने खेत-मज़दूर को उसके पास भेजा था। और वह कृतज्ञता से भरकर उसके लिए लम्बी उम्र व यौवन के सारे सुख-भोग की दुआ ईश्वर से करती रहती थी।

"मुझे तुम्हारी बात का यक़ीन है! क्यों नहीं यक़ीन करूंगी?" पेरी-ख़ाला ने कहा लेकिन उसका स्वर हिचकिचाया व दुर्बल था। "अगर भगवान भी तुम्हारे होंठों की यह बातें सुनता, अच्छा होता, बेटे! लेकिन मैं देखती हूं कि लेनिन की बातें वही प्यार से करते हैं जिनके पास दीपक जलाने के लिए तेल ख़रीदने को भी पैसे नहीं। लेनिन के पास सभी भूखों को खिलाने और सभी दुखियों को सहारा देने के लिए इतनी शक्ति कहां से आ सकती है? अल्लाह लेनिन को इतनी शक्ति दे कि वह इनसान की क़िस्मत से खेलनेवाली मक्कार जादूगरिनी की विषमय दुर्भावना से अपनी रक्षा कर सकें! जब तुम लेनिन की बातें करते हो, मेरे हृदय में एक रोशनी चमक उठती है!"

पेरी-ख़ाला उठकर तेज़ी से गेहूं के खेत की ओर चली गयी जहां लाल बछड़ा फिर मुंह मारने चला आया था।

(३)

शाख़बाज़-बेक और लम्बे कोट व पीले चेहरेवाला नाटा व्यापारी गांव में दुबारा नहीं आये।

उनके जाने के बाद ही रात में खेत-मज़दूर वेली गड़ेरियों के साथ अचानक ही कहीं ग़ायब हो गया। वे कहां चले गये थे? भाग्य आज़माने कहीं और तो नहीं चले गये थे? एक दिन बीता, दूसरा भी ख़त्म होने को आया लेकिन उनका कहीं कोई पता न था मानो उन्हें धरती निगल गयी थी।

गांव में एक बार फिर परस्पर विरोधी अफ़वाहें व बातें फैलने लगीं। किसी ने बताया कि वे बाकू में तेल कूपों में काम करने चले गये। ज़फ़र-अमी ने बड़े उत्साह से इसका समर्थन किया।

"गांव में ग़रीब लोगों के लिए है क्या? यहां हर आदमी उसका हाथ पकड़कर कहता है, 'दो!' लेकिन मैंने कभी किसी को भी यह कहते नहीं सुना, 'लो'! किसान हमेशा-हमेशा से भूखे रहे, ग़रीब और दयनीय स्थिति में रहते आये हैं। ऐसा ही होता आया है और क़यामत तक ऐसा ही होता रहेगा। लेकिन हमारे छोकरे मज़दूर या तेल-कर्मी बन जायें तो उनकी क़िस्मत ज़रूर बदलेगी, देख लेना!"

कई लोगों का विश्वास था कि वेली व उसके गड़ेरिये दोस्तों को गिरफ़्तार कर लिया गया और वे जेल में हैं। आदरणीय तथा विवेकशील हाजी गुलू बार-बार कहे जा रहा था: "दिनदहाड़े, खुले आम उस भिखमंगे नीच ने, कुत्ते के पिल्ले ने बेक जैसे बड़े आदमी का अपमान किया!"

लेकिन सब को हैरानी थी कि इन सारी बातों को सुनकर भी पेरी-ख़ाला निर्विकार रही थी जब इससे पहले वह कभी भी वेली के पक्ष में बोले बिना न रहती थी। इसका मतलब यह नहीं था कि उसके पीड़ित हृदय की संवेदनाएं ख़त्म हो गयी थीं। इसका कारण यह था कि सिर्फ़ उसी ने खेत-मज़दूर वेली व गड़ेरियों को रात के समय यात्रा की शुभकामनाएं दी थीं जब वे भीषण लड़ाई के लिए रवाना हुए थे।

जब लगभग सुबह होने को थी, मवेशीख़ाने का दरवाज़ा कसकर बन्द करने के बाद उसमें मिट्टी की ढिबरी जलायी थी।

"पेरी-ख़ाला, तारे डूब रहे हैं, सवेरा होने ही वाला है। हवाएं हमारी दीवारों से टकरा रही हैं। हमें जाना चाहिए क्योंकि अब हमारी अज़रबैजान की बारी आ गयी है। समय आ गया है – या तो हम उन्हें कुचल देंगे या वे हमें। अगर मैंने प्राण गंवाये तो तुम मुझे स्नेह से याद ज़रूर करना। अगर मैंने कभी तुम्हारा जी दुखाया हो तो मुझे माफ़ कर देना। पेरी-ख़ाला, तुम मेरी मां रही हो!"

"मेरे दो बेटे हैं – नाज़िम और तुम," पेरी-ख़ाला ने कहा और वेली को यात्रा की सफलता की दुआ दी। "मैं कामना करती हूं कि भाग्य हमेशा तुम्हारा साथ दे, बेटे।"

"और पेरी-ख़ाला, किसी से भी कुछ न कहना!"

"मर जाऊंगी लेकिन ज़बान न खोलूंगी।"

वेली ने ढिबरी बुझा दी और अंधेरा छा गया। दरवाज़ा चरमराया।

फिर पेरी-ख़ाला उनके पीछे-पीछे, हांफती-हांफती दौड़कर पहुंची और कन्धे पर हाथ रखकर रुकने को कहा।

"क्या बात है, मां?" वेली ने कहा।

पेरी-ख़ाला के हृदय में आनन्द की एक लहर-सी दौड़ गयी – बहुत दिनों से उसने किसी के मुंह से मां कहते नहीं सुना था।

"बेटे! तुम लेनिन के यहां जा रहे हो। अब मैं सब कुछ समझ चुकी हूं। लेनिन से कहना कि पेरी नाम की आपकी मां सुदूर अज़रबैजान के एक गांव अल्मामीक में रहती है और उसने आपके लिए हार्दिक अभिनन्दन भेजा है। वह आपके लिए दुआ करती है कि मनुष्य के भाग्य के धागे बुननेवाली दुष्ट जादूगरिनी की नज़र आपको न लगे!"

वेली कहना चाहता था: "लेकिन पेरी-ख़ाला, मुझे लेनिन से मिलने का मौक़ा कहां से मिलेगा?" पेरी को निराशा करने की हिम्मत उसमें न थी। और फिर क्या पता, कुछ भी हो सकता है! क्या पता खेत-मज़दूर को लेनिन से मिलने का कहीं मौक़ा मिल जाये तो?

"मैं वायदा करता हूं कि तुम्हारा सन्देश कॉमरेड लेनिन तक ज़रूर पहुंचा दूंगा, ख़ाला-जान!" कांपती आवाज़ में वह बोला और रात के कुहरे में गायब हो गया।

बहुत-बहुत दिन बीत गये लेकिन वेली व नाज़िम की कोई ख़बर नहीं मिली। यह उसके लिए भारी दुख था। यूं तो हर सुबह तरह-तरह की ख़बरें आती रहती थीं। किसी बड़े त्योहार से पहले जैसी उत्तेजना लोगों में थी, किसानों के चेहरों पर दीप्ति थी और उनके दिल तेज़ी से धड़कते थे। कुछ-कुछ वैसी ही स्थिति थी जब पहाड़ों में चलती ज़बर्दस्त आंधी की पहली ताज़गी भरी प्रचण्ड हवाएं गांव में पहुंचती।

आख़िरकार वह चिर-प्रतीक्षित दिन आ ही पहुंचा। पहाड़ी पर लाल-लाल पताकाएं लहरा उठीं और सरपट चाल से घुड़सवार उसी सड़क से चले आ रहे थे जिस पर किसी समय शाखबाज़-बेक की फिटन चरमराती आयी थी। हालांकि लोगों को चेहरे अभी तक पहचान में नहीं आये थे, ज़ोरों का शोर ज़रूर मच गया:

"बोल्शेविक! गुरिल्ले!"

कुछ ही मिनटों में भाग-भाग घोड़ों पर सवार सशस्त्र लोग चौक में आ पहुंचे। उन्होंने हर तरह के कपड़े पहन रखे थे – कमीजें, चोखा, गद्देदार जैकेट, ऊंचे बूट, घर के चमड़े से बने जूते। सब के पास बन्दूकें व राइफ़लें न थीं लेकिन जिनके पास न थीं, उन्होंने दादा के ज़माने के खंजर व तलवारें अपनी पेटियों में बांध रखी थीं। जत्थे का नेतृत्व प्रसन्नचित्त खेत-मज़दूर वेली कर रहा था। उसके साथ ही एक अजनबी नौजवान था जिसकी मूंछ-दाढ़ियां साधुओं की तरह बढ़ी थीं। उसके पीछे साईस नाज़ार अपने घोड़े पर भोंडे ढंग से चस्पां था।

पेरी-ख़ाला निरीह भाव से भीड़ के पीछे खड़ी थी लेकिन अचानक ही लोग उसे रास्ता देने के लिए हट गये मानो उन्हें सहज ज्ञात हो गया था कि आज का दिन उसके लिए कितना महत्वपूर्ण था। उन्होंने उसे सबसे आगे कर दिया।

हल्के से घोड़े से नीचे उतरकर वेली ने उसे गले लगा लिया।

"पेरी-ख़ाला, आख़िर तुम्हारे दिन फिर आये! मैंने तुम्हारा सन्देश मास्को जा रहे कॉमरेड नारिमानोव* के मार्फ़त लेनिन को भेज दिया था। मुझे तुम माफ़ करना, मैं ख़ुद इस बार मास्को तक नहीं जा सका... लेनिन बहुत ख़ुश हुए और बोले, 'पेरी-ख़ाला को मेरा धन्यवाद। मैं उनके लिए सुख और स्वास्थ्य की कामना करता हूं।' और लेनिन ने मेरे भाई, तुम्हारे बेटे नाज़िम को अपने गांव, अपने घर लौट जाने के लिए कहा।"

और वेली पेरी-ख़ाला को अपने पीछे खड़े दुबले-पतले, लम्बे-लम्बे बालों लेकिन दृढ़, एकटक दृष्टिवाले लड़के की ओर ले गया।

"तुम इसे पहचान नहीं सकीं?"

"बेटा!" अपनी बांहें आगे को फैलाते हुए वह चीत्कार कर उठी; इतनी बड़ी ख़ुशी उससे सही न गयी और वह नाज़िम के आलिंगन में लगभग बेहोश-सी गिर पड़ी।

---

* नारिमान नारिमानोव (१८७१-१९२५), अज़रबैजानी क्रान्तिकारी नेता तथा लेखक। – अनुवादक

(४)

जब पेरी-ख़ाला होश में आयी, उसने ख़ुद को बेटे की बांहों में अधलेटी पाया। अभी-अभी मीटिंग ख़त्म हुई थी और फ़ौरन सब कहीं हाज़िर होनेवाले वेली ने अपने एक सुलगते भाषण में सभी किसानों से सोवियत सत्ता की पताका तले एकजुट होने की अपील की थी और अब वह लाल झण्डा फहराने के लिए शाखबाज़-बेक के मकान की छत पर चढ़ रहा था। डण्डे का काम उसने कुदाल के हैण्डल से लिया था। झण्डे के किनारे को चूमकर, हैण्डल से उसे बांधकर वह पूरी शक्ति से चिल्लाया:

"लेनिन ज़िन्दाबाद! सोवियत अज़रबैजान ज़िन्दाबाद!"

"लेनिन ज़िन्दाबाद! हुर्रा!" प्रसन्नता भरी आवाज़ें गूंज उठीं।

हवा से झण्डा लहराकर गौरवशाली ढंग से फहराने लगा – वह झण्डा जो सबके लिए हर्ष व प्रेरणा का स्रोत बन गया था।

पेरी-ख़ाला की शान्ति लौटने लगी थी और वह समझने लगी थी कि यह सब कोई सपना नहीं, उसका बेटा ज़िन्दा था और उसके साथ था। वह उठकर दृढ़ चाल से अपने घर की ओर चलने लगी। नाज़िम व वेली ख़ामोशी से उसके पीछे-पीछे चल रहे थे। हालांकि आंसू फूट पड़ सकते थे लेकिन आंसू बहाये बिना, एक भी शब्द बोले बिना घुटनों के बल झुककर उसने दहलीज़ के पास की ज़मीन को चूम लिया। फलोद्यान में मंजरित सेब का पेड़ किसी दूल्हे-सा साफ़-सजा उसकी प्रतीक्षा में था। पेरी-ख़ाला उसे सहलाने पास जा पहुंची और कांपते, झुर्रीदार हाथ से उसने उसके तनों व डालों को थपथपा दिया।

फिर से प्राप्त घर की ख़ामोशी को भंग करने की अनिच्छा महसूस करते हुए वेली और नाज़िम सेब के पेड़ की सबसे घनी डालियों के नीचे ज़मीन पर बैठ गये। फलोद्यान का चक्कर लगाने और घर पर नज़र डालने के बाद पेरी-ख़ाला भी उन्हीं दोनों के पास आकर घास पर बैठ गयी। उसकी आंखों में अनुद्वेग तथा शान्ति की अनुभूति प्रतिबिम्बित थी।

"यानी सपने सच हो सकते हैं," वह कोमल स्वर में बोली मानो सवाक चिन्तन में डूबी हो। "यूं तो मैंने सपने में भी ऐसे पुनीत दिन की कल्पना नहीं की थी।"

वेली उसे उसी के लहजे में कोमलता से जवाब देना चाहता था लेकिन उसे अपनी ही आवाज़ दग़ा दे गयी और वह चिल्ला-सा उठा।

"पेरी-ख़ाला, यह तो सिर्फ़ शुरूआत है। हमें और भी हैरतअंगेज़ दिन देखने को मिलेंगे – मैं तो यह सब सोचता हूं तो धड़कनें रुकती महसूस होती हैं!"

(५)

जिस दिन से शाख़बाज़ के मकान के ऊपर फहराये लाल झण्डे पर उगते सूरज ने अपनी स्वर्णिय झलमलाहट बिखेरनी शुरू की थी, गांव में जीवन बिलकुल बदल-सा गया था, हालांकि शाख़बाज़-बेक का दुखी दलाल चौधरी अभी भी गुर्रा-गुर्राकर अनिष्टकारी भविष्यवाणियां करता रहता था।

"क़िस्मत के चक्के कभी-कभी दुबारा पीछे भी घूम सकते हैं। रुक जाओ, जल्दी ही नये पैग़म्बर, मुक़द्दस मेख़्ती का यहां आगमन होगा और वह पुराने रिवाजों को तोड़नेवालों को, हमारे बाप-दादे के ज़माने से चली आ रही परम्पराओं को कलुषित करनेवालों को ज़बर्दस्त सज़ा देंगे!"

हाजी गुलू कुछ दिनों तक घर में छुपा लोगों की नज़रों से बचता रहा। फिर हिम्मत करके घर से बाहर निकला, उसके चोखे के कॉलर के बटन खुले थे। पेटी में पिस्तौल लटकाये चले जा रहे वेली की ओर अंगुली उठाकर उसने कहा:

"ज़रा देखो तो, कैसे अकड़के चल रहा है! तुम सोच भी नहीं सकते कि यह वही खेत-मज़दूर है जो आवारा कुत्ते की तरह कभी पसलियां बाहर को निकाले मारा-मारा फिरता था! नहीं, तुम सोचोगे, यह तो साक्षात केर-ओग्ली* है! ऐसे रंग-ढंग को आग लगे!"

लोग उसके इर्द-गिर्द जमा हो गये।

पहले के खेत-मजदूर वेली ने शान्तिपूर्वक हाजी गुलू की गोलाकार तोंद पर हाथ थपथपाये।

---

* केर-ओग्ली – एक अज़रबैजानी महाकाव्य का नायक। – सं०

"फ़िक्र न करो, हम जल्दी ही यह सब चर्बी पिघला डालेंगे! हम देखेंगे तुम्हारी पसलियां कैसी दिखती हैं!"

"यह तुम्हारा सूरजमुखी का तेल नहीं, गोश्त की चर्बी है, इतनी आसानी से नहीं पिघलेगी!" हाजी ने आत्मविश्वास से जवाब दिया। इस ख़्याल से वह ख़ुद को दिलासा देना चाहता था कि इस बेकहे मज़दूर की बातें हक़ीक़त नहीं बल्कि सिर्फ़ मज़ाक़ हैं।

और घर जाकर स्वादिष्ट बोज़बाश* खाकर वह सो गया।

गांव की बैठक में वेली को जैसे ही ग़रीब किसान समिति का अध्यक्ष चुना गया, उसने फ़ौरन ही बेकों की ज़मीन व पशुओं को बांटने का प्रस्ताव रख दिया और धनी हाजी गुलू ने अपने कॉलर के बटन कसकर बन्द कर लिये। उसकी रातों की नीन्द हराम हो गयी। वह गुस्से से उबलने लगा।

"क़यामत आ गयी!" वह मुखिया से, अपने दोस्तों से और दूसरे धनी ज़मीनदारों से रो-रोकर बकने लगा। "सुना आप लोगों ने – उन लोगों ने, उस मूरख, अर्द्ध विक्षिप्त पेरी-ख़ाला को ग्रामीण सोवियत का सदस्य बना दिया है! औरत को! वह हम लोगों को, मर्दों को हुक्म दिया करेगी! ख़ुदा की शान में इससे ज़्यादा बेअदबी और क्या हो सकती है?"

एक दिन एक सन्देशवाहक हाजी को गांव की बैठक में बुलाने आया; अब ऐसी बैठकें लगभग रोज़ होती रहती थीं। और इस बैठक में पेरी-ख़ाला का भाषण हुआ।

"यह सोचना भी दुखदायी है कि हम किसान पहले कैसे रहते थे," निस्तब्ध भीड़ को सम्बोधित करते हुए वह बोली। "हमारी स्थिति ऐसी थी मानो हमारे कटे हाथ-पांव बांधकर उन्होंने हमें किसी काल-कोठरी में फेंक दिया था। हमें अपने पूरे जीवन में प्राणदायी सूर्य को देखना नसीब नहीं हुआ। लेकिन सिर्फ़ यही सबसे बुरी बात न थी। सबसे बुरी बात यह थी कि हम अन्धे हो गये, अपनी पीड़ाओं को हमने भाग्य का दोष मान लिया और मुक्ति के लिए कभी कोई कोशिश

---

* बोज़बाश – मटर व आलू के साथ बना ग़ोश्त का शोरबा। अनु०

5*

नहीं की। जिस बुद्धिमान आदमी ने हमारे हाथ आज़ाद कराये और ग़रीबों को मुक्ति दी, उसने कहा: 'पढ़ना सीखो, अपनी आंखों से परदा हटा दो!' इसे ध्यान में रखते हुए मैं, पेरी-ख़ाला, प्रस्ताव रखती हूं कि हम फ़ौरन लेनिन की बातें अमल में लाना शुरू कर दें और निरक्षरता-उन्मूलन के लिए महिलाओं का पाठ्यक्रम चलायें।"

हाजी गुलू सोच रहा था कि अगर उसने एतराज़ करने की कोशिश की तो वेली या नाज़ार या जेल से भागा नाज़िम फ़ौरन उसकी गर्दन थाम लेंगे। इसलिए अपने ग़ुस्से पर क़ाबू रखते हुए उसने धीमे से पूछा:

"महिलाओं के इस पाठ्यक्रम में महिलाएं अपनी मर्ज़ी से आयेंगी या उन्हें मजबूर किया जायेगा?"

पेरी-ख़ाला को कोई जवाब न सूझा। यह बात उसके दिमाग़ में कभी नहीं आयी थी कि ऐसी भी औरतें हो सकती हैं जो लेनिन की बातें मानने से इनकार कर देंगी।

पास ही खड़े वेली ने पेरी-ख़ाला की ओर से जवाब दिया:

"बेशक, अपनी मर्ज़ी से! लेकिन जो पति या पिता उन्हें आने से रोकेंगे, उनके खिलाफ़ क्रान्तिकारी क़ानून के अनुसार कठोर कार्रवाई की जायेगी।" उसने हाज़ी गुलू की ओर सीधी आतंककारी दृष्टि डाली।

हाजी ने चोखा का कॉलर पहले से भी अधिक कसकर बांध लिया। जल्दी-जल्दी वह घर लौट आया। कुछ दिनों के लिए वह कहीं भी नहीं निकला और घर में ही बैठा-बैठा गांव से सुनी-सुनाई अफ़वाहें जमा करता रहा। कम्युनिस्ट गुरिल्लों की मदद से उस बेकहे वेली ने सचमुच ज़मीन की नपाई शुरू कर दी थी जिससे कि ज़मीन ग़ैरकानूनी ढंग-से ज़बरदस्ती लोगों में बांटी जा सके। दूसरी ओर, वह भिखमंगी पेरी-ख़ाला निरक्षरता निवारण पाठ्यक्रम के लिए मर्दों, औरतों और जवानों के नाम लिखती घर-घर घूम रही थी। फिर हाजी गुलू को सुनने में आया कि साईस नाज़ार अध्यापक, पाठ्यपुस्तकें, कापियां और पेंसिलें लाने पास के शहर रवाना हो गया था। इस तरह की ख़बरें सुन-सुनकर हाजी सिहर उठता था लेकिन मलामतें मन में ही रखता था।

इतना ज़्यादा काम था कि पेरी-ख़ाला और वेली को बैठकर गप-शप करने का भी समय नहीं मिल पाता था। वेली में परिपक्वता आ गयी थी, वह मज़बूत और कुछ-कुछ बड़ा दिखाई देने लगा था; बूढ़े-बूढ़े

किसान भी अब उसे "खेत-मज़दूर वेली" नहीं बल्कि "कॉमरेड वेली" कहकर बुलाते थे। पेरी-ख़ाला में भी परिवर्त्तन हुआ था। विधवाएं उससे सवाल करने और नौजवान लड़कियां सलाह लेने आती थीं। उसे शहर में सभा-सम्मेलनों में बुलाया जाता था। जब बेक की ज़मीन विभाजित करके बांटी गयी, वह वहां ग्रामीण सोवियत की प्रतिनिधि की हैसियत से मौजूद थी। सुबह से रात तक वह काम में व्यस्त रहती थी लेकिन इसके बावजूद घर की देखभाल का समय निकाल लेती थी। उसने दीवारों पर पलस्तर कर दिया, छानी की मरम्मत कर दी और मंजरित फलोद्यान के चारों ओर बाड़ा लगा दिया। गांव में पहले कच्ची ईंट के मकानों की सफ़ेदी कभी नहीं की जाती थी लेकिन पेरी-ख़ाला ने पहली बार दीवारों की सफ़ेदी कर दी और इसका परिणाम बड़ा सुखद रहा, हर जाने-आनेवाला उसके घर पर एक नज़र ज़रूर डालता था। दूसरी औरतों ने भी शीघ्र ही उसकी देखादेखी करते हुए दीवारों की सफ़ेदी कर ली और एक नया रिवाज चल पड़ा। लेकिन चम-चम सफ़ेद चमकती दीवारों के इर्द-गिर्द आंगन में कूड़ा-कर्कट का पड़ा रहना खलने लगा। पेरी-ख़ाला ने अपने घर के आस-पास का कूड़ा-कर्कट जमा करके आग लगा दी और पड़ोसियों ने भी वैसा ही किया। पूरा गाँव सुन्दर तथा उल्लासमय दिखाई देने लगा मानो नया बाना धारण कर लिया हो।

वसन्त का मौसम अधिक उत्तप्त हो उठा, धूप अधिक उदार हो उठी और एक दिन पेरी-ख़ाला का दिल उछल-सा पड़ा जब उसे सबसे बड़े सेब के पेड़ की डालों पर अखरोट जितने छोटे-छोटे हरे-हरे सेब दिखाई दिये। यह उसकी तृषित आत्मा के लिए सोते के ताजा पानी के घूंट-सा था। उसे अपना यौवन वापस लौट आया-सा प्रतीत हुआ। फलोद्यान जैसे अपनी मालकिन की प्रतीक्षा में ही अब तक नहीं फला-फूला था और अब पतझड़ में वह अपनी देखभाल के प्रतिदान-स्वरूप मालकिन को ढेर सारे फलों की सौग़ात देगा। अब रात के पाले या सूखी गर्म हवाओं या मुसाफ़िरों के लापरवाह हाथ का ख़तरा टल चुका था। जब सेब शहद से मीठे रस से भर उठेंगे, मैं उन्हें टोकरी में भरकर उपहारस्वरूप लेनिन को भेज दूंगी, पेरी-ख़ाला सोच रही थी। इच्छा इतनी बलवती थी कि उसकी सांस में समा गयी। काश, मैं कॉमरेड लेनिन को एक बार देख सकती, उनसे बातचीत कर सकती,

वह सोच रही थी। यह सपना इतना अनमोल था कि उसने इसके बारे में न तो वेली को, न अपने बेटे को ही बताया। उसकी बात सुनकर शायद वे हंस पड़ेंगे।

दिन बीते, हफ़्ते बीते। यह दिन और हफ़्ते काम से, प्रबन्ध से, सभाओं व साक्षरता पाठ्यक्रम के कार्यक्रमों से भरे थे लेकिन सपना अपनी जगह बलवती इच्छा का रूप धारण कर दिल में बरक़रार रहा। और पेरी-ख़ाला सोचा करती: क्या यह सचमुच असम्भव है? लेनिन कोई ख़ान नहीं, बेक या अमीर जागीरदार नहीं जिनके सशस्त्र अंगरक्षक उन्हें आम लोगों से अलग-थलग रखते थे। वह हमारे शिक्षक हैं, हमारी गौरवशाली आशाओं के उद्घोषक हैं। कम से कम वेली का तो यही कहना है...

वेली पर पेरी-ख़ाला को अटूट विश्वास था।

अगर लोग लेनिन को बतायें कि अज़रबैजान की एक महिला किसान उनसे मिलना चाहती है, उन्हें अपने दिल की सारी बातें बताना चाहती है तो वह निश्चय ही उसे अपने यहां आने का निमन्त्रण भेज देंगे, वह अपने आप को सोच-सोचकर दिलासा देती रहती।

लेकिन मक्कार जादूगरिनी सोयी नहीं थी, उसने एक बार फिर मनुष्य की नियति को उलझा देने की कोशिश की।

एक दिन सुबह में ज़ोरों की चीख़-पुकार से पेरी-ख़ाला की नीन्द खुल गयी: "आग! सब बाहर आ जाओ! आ-ग!" वह दौड़ती बाहर निकल आयी और हक्का-बक्का रह गयी। बेक के भूतपूर्व मकान और अब ग्रामीण सोवियत पर लहराता लाल झण्डा ग़ायब था। इसकी लोहे की छत के नीचे से धुएं का बादल उठ रहा था।

देखते ही देखते किसान वहां आ पहुंचे और आग बुझा दी गयी लेकिन कोई नहीं बता पाया कि झण्डे का डण्डा कौन ले भागा था। वेली और नाज़िम इसके बारे में काफ़ी देर तक विचार-विमर्श करते रहे। उन्होंने नाज़ार और जफ़र-अमी को भी बुला लिया था। साफ़ तौर पर यह एक लड़ाई की शुरूआत थी, जीवन को दांव पर लगा देनेवाली लड़ाई।

उस शाम साक्षरता पाठ के दौरान पेरी-ख़ाला को सिर्फ़ पांच औरतें दिखाई दीं; जब कि आम तौर से उनकी संख्या तीस या तीस से ज़्यादा

रहती थी। और वे पांचों भी चेहरे पर बुरक़ा डाले घबड़ाहट भरे स्वर में बोलीं:

"कहते हैं, पढ़कर हम अपना असली धर्म डुबो रहे हैं। अपने को शर्मिन्दा कर रहे हैं!"

"लेनिन की हुकूमत जल्दी ही ख़त्म हो जायेगी।"

"नयी हुकूमत क़ायम होगी और पढ़ने जानेवालों को फांसी पर लटका दिया जायेगा। पेरी-ख़ाला, ख़ुदा के लिए, हम पर गुस्सा न करना लेकिन अब हम भी नहीं आ सकेंगी।"

अहातों में अफ़वाहें फैली थीं कि ग्यान्जा* और नूख़ा में सोवियत सरकार का पतन हो चुका है और बेक की ज़मीन बांटनेवालों को चौक में फांसी पर चढ़ा दिया गया था।

घोड़े पर सवार हो वेली मदद मांगने सरपट चाल से शहर रवाना हो गया; न तो उसे, न तो पेरी-ख़ाला को कुछ करना सूझ रहा था, पीठ दिखा जानेवालों को क्या कहा जाये, खुलकर सामने आये दुश्मनों से कैसे लड़ा जाये?

ज़िला क्रान्तिकारी समिति का अध्यक्ष गांव आ पहुंचा। वह एक लम्बा-सा आदमी था। उसके बाल घुंघराले थे, चमकती काली आंखें थीं। उसने सेना की वर्दी पहन रखी थी, टोपी में सोने का सितारा जड़ा था।

पूरे गांव की एक सभा बुलायी गयी। किसान धीमे-धीमे अनिच्छा से आये – या तो उन्हें बेक के नक़ाबपोश दलालों का डर था या अब चूंकि उन्हें ज़मीन हासिल हो चुकी थी, भाषणों में उनकी दिलचस्पी जाती रही थी।

सीधे-साफ़ शब्दों में अध्यक्ष ने उन्हें युवा सोवियत जनतन्त्र की स्थिति की जानकारी दी; उसने प्रतिक्रान्ति के असफल प्रयासों के बारे में बताया और अन्त में बड़े विश्वास के साथ कहा:

"कम्युनिस्ट पार्टी के गिर्द, कॉमरेड लेनिन के गिर्द लोग, मज़दूर और किसान दृढ़तापूर्वक एकजुट हो रहे हैं! लेनिन के न्यायसंगत उद्देश्य की शक्ति को दुनिया की कोई भी ताक़त नहीं मिटा सकती!"

---

* अब किरोवाबाद शहर। – अनु॰

लोगों ने तालियां बजायीं, दिलचस्प रिपोर्ट सुनाने के लिए उसे धन्यवाद दिया लेकिन उसली सफलता वेली के भाषण को मिली।

"एक दिन जंगल में देवदार के बिरवे ने अपने पिता बड़े देवदार से शिकायत की: 'पिता जी, ज़रा देखिये, हम पेड़ों पर कुल्हाड़ी कितनी निर्ममता से प्रहार करती है'। बड़े देवदार ने अपनी शक्तिशाली डालों को हिलाया। 'क्योंकि बेटे, कुल्हाड़ी का हैण्डल हम से, देवदार की लकड़ी से बनता है'।" वेली की आंखें चमक उठी थीं और ठहाके लगाकर सबने उसकी प्रशंसा की। "हमें किसी बिल में छुपे शाख़बाज़ बेक से डरने की कोई ज़रूरत नहीं। हमें ख़तरा उसके नौकरों, उसके भाड़े के टट्टुओं से है जो हमारे बीच छुपे हैं।"

यह एक प्रकार का संकेत-सा था। सभी की नज़रें कुछ-कुछ परे खड़े हाजी गुलू और चौधरी की ओर मुड़ गयीं।

"बेक ने नहीं, उसके नौकरों ने लाल झण्डे को फाड़ा। अपने गन्दे हाथों से लेनिन की पताका को कलुषित किया!" उसने आगे कहा। लोगों पर बात का असर देखकर उसकी आवाज़ में ताक़त व विश्वास भर उठा। "लेकिन हम उन्हें ढूंढ़ निकालेंगे और कानून व लोगों के सामने जवाबदेह ठहरायेंगे! और कॉमरेडो, आप लोगों को अगर कभी किसी ग़द्दार का हाथ लाल झण्डे की ओर बढ़ता दिखाई दे तो आप उस कलुषित हाथ को फ़ौरन पकड़ लें जिससे कि हमारा दुश्मन हमारे क्रोध के सामने सहम उठे।"

चौधरी और हाजी गुलू ने ग़ुस्से भरी नज़रों से एक दूसरे की ओर देखा और वे थोड़ा पीछे हट गये लेकिन चौक से गये नहीं।

पेरी-ख़ाला को भी बोलने के लिए कहा गया। उसने दुबारा अनुरोध की प्रतीक्षा नहीं की क्योंकि वह जानती थी कि ऐसे कठिन समय में किसी को चुप्पी नहीं रखनी चाहिए, सही शब्द बन्दूकों से कम प्रभावशाली नहीं होते हैं।

पुरानी ज़िन्दगी उसकी याद में अभी भी जीती-जागती बनी थी। पीड़ा आसानी से नहीं भूली जाती। और कठिनाइयों से दो-चार होनेवाली क्या वही अकेली थी? इसलिए पेरी-ख़ाला को महसूस हुआ कि यही क्षण है जब किसानों को उन काले दिनों की याद दिलानी चाहिए जब हर किसान के घर में दुख और बदनसीबी का बसेरा था। और

इस प्रकार भावों में प्रवाहित हो, ख़ुद अपने से बेख़बर हो उसने उपस्थित लोगों को अपना सबसे प्यारा सपना – लेनिन से मिलने का, उन्हें बतौर उपहार अल्मामीक के मीठे, रसदार फल देकर ख़ुश करने का सपना बताया।

"लेकिन मैं आपको सच्चे दिल से बता देना चाहती हूं," उसने अपनी बात काटते हुए कहा। "अब जब मैं अपने सपने के बारे में सोचती हूं, मुझे शर्म महसूस होती है। आप पूछेंगे क्यों? क्योंकि लेनिन मुझसे सवाल करेंगे: 'लाल झण्डे को किसने फेंका? उस पवित्र झण्डे को किसने कलुषित किया? और आप लोगों ने साक्षरता स्कूल के दरवाज़े पर ताला कैसे लगा दिया? क्या आप को यह नहीं मालूम कि ज्ञान प्रकाश है और अज्ञान अन्धकार है?' और मुझे उनको बताना पड़ेगा: "कॉमरेड लेनिन, हम गांववासी नीन्द में बेख़बर हैं, गन्दे, चिपचिपे तोशक के तले हमने अभी अपनी नीन्द पूरी नहीं की है। हम थोड़ा और सोयेंगे और सो-सोकर एकदम अंधे बन जायेंगे!' नहीं, लेनिन से मिलकर बातें कहने से बेहतर है कि मैं धरती में समा जाऊं!"

एक विकृत मुस्कान के साथ पेरी-ख़ाला ने अपना भाषण समाप्त किया और फिर गहरी चुप्पी छा गयी। शर्मिन्दा किसान नज़रें नीची किये या तो ज़मीन या अपने बूटों की ओर देख रहे थे।

यह देखकर पेरी-ख़ाला को बड़ी तसल्ली मिली। अगर लोगों में अभी भी शर्म बाक़ी है तो लोग हाथ से गये नहीं।

क्रान्तिकारी समिति के अध्यक्ष ने पेरी-ख़ाला को एक नया झण्डा दिया।

"इसे फिर से ग्रामीण सोवियत की छत पर फहरा दो, बेटे," पेरी-ख़ाला ने वेली से कहा। "यह लेनिन की अजर-अमर पताका है। मैं जानती हूं, आज से हर ईमानदार आदमी इस झण्डे की रखवाली आंखों की पुतली की तरह करेगा!"

(६)

गर्मियां बीतने के बाद पतझड़ की ठण्ड शुरू हो गयी। फलोद्यानों में सूखे-मुरझाये पत्ते गिरने लगे। सेब के पेड़ों के नीचे पत्ते कांसे के सिक्कों की तरह दमकने लगे। पेरी-ख़ाला के फलोद्यान में पके सेब

कहरूबा के छोटे-छोटे सूरज-से दिखाई देते थे। उसने एक को भी हाथ लगाकर नहीं तोडा था, सिर्फ़ हवा से गिर पड़े फलों को ही उठाया था।

नाज़िम और उसके गड़ेरिये दोस्त जल्दी ही पशुओं को हांककर वादी में ले जानेवाले थे और पेरी-ख़ाला ने बेटे के साथ और वेली के साथ मिलकर फल तोड़ने और सबसे अच्छे सेबों को उपहारस्वरूप कॉमरेड लेनिन के पास भेजने का फ़ैसला किया।

जैसा कि बुद्धिमान बूढ़े लोग कहते हैं, सुख के दिन वसन्त के फूलों की तरह एक मे एक बढ़कर होते हैं।

क्रान्तिकारी समिति का अध्यक्ष सरपट घोड़ा दौड़ाता आया और पेरी-ख़ाला के घर के पास रुक गया।

"हम तुम्हें लेने आये हैं, पेरी-ख़ाला, यात्रा की तैयारी करो!"

"स्वागत है, आओ-आओ, बैठो," उसकी बात को पूरी तरह न समझते हुए पेरी-ख़ाला ने कहा। "मैं पल भर में चाय बनाकर ले आऊंगी, आओ, यहां कालीन पर बैठो।"

"धन्यवाद, पेरी-ख़ाला, हमारे पास बिलकुल समय नहीं! तुम्हें जल्द से जल्द यात्रा की तैयारी कर लेनी है। बाकू से टेलीफ़ोन आया। अक्तूबर क्रान्ति की वर्षगांठ मनाने के लिए सोवियत अज़रबैजान से एक प्रतिनिधि-मण्डल मास्को जा रहा है। और तुम प्रतिनिधि-मण्डल की एक सदस्या होगी।"

हर चीज़ पेरी-ख़ाला की आंखों के सामने तैरने लगी, उसे पैर जवाब देते महसूस हुए और उसने दरवाज़े का चौखट थाम लिया। लेकिन तभी यह महसूस करके ख़ुशी की लहर-सी दौड़ गयी कि उसका सपना पूरा होने को था, वह मास्को लेनिन से मिलने के लिए जानेवाली थी।

लेकिन अध्यक्ष ने उसे अधिक सोचने का समय नहीं दिया।

"पेरी-ख़ाला, जल्दी तैयार हो जाओ। बाकू के लिए गाड़ी रवाना होने में तीन घण्टे ही बाक़ी हैं। बस हमारे पास किसी तरह स्टेशन तक पहुंचने का ही समय बच रहा है!"

फाटक के पास घोड़े को देखकर वेली व नाज़िम ऐन मौक़े पर आ पहुंचे। आश्चर्यचकित हो, उल्लसित मन से उन्होंने कुछ चीज़ें जमा

करने में और सबसे अच्छे, बड़े-बड़े सुनहले फल चुनकर टोकरी में बन्द करने में पेरी-ख़ाला की मदद की। यह सेब व्लादीमिर ईल्यीच लेनिन के लिए उपहार थे।

नाज़ार शान्त लेकिन तेज़ चाल चलनेवाला एक भूरा घोड़ा ले आया और नाज़िम व वेली ने सवार होने में पेर-ख़ाला की मदद की।

"शुभ यात्रा! लेनिन को हमारे गांव के बारे में सब कुछ सच-सच बता देना! हमारे गांव में इधर-उधर बहुत कुछ हुआ लेकिन इसके बावजूद हमारे गांव ने सोवियत सत्ता के लिए लड़नेवाले गुरिल्लों का एक पूरा जत्था तैयार कर लिया है। यह बहुत मायने रखता है! और ग़रीबों को बेक की ज़मीन दी जा चुकी है, वे आख़िर अपनी ग़रीबी को भूलने लगे। शुभ यात्रा, पेरी-ख़ाला! कॉमरेड लेनिन को हम लोगों की ओर से सम्मान व अपार प्यार कहना। हम उनके प्रति, उनके उद्देश्य तथा उनकी पताका के प्रति हमेशा निष्ठावान रहेंगे!"

(७)

आलीशान शहर को मुग्ध दृष्टि से देखती पेरी-ख़ाला होटल के कमरे की बड़ी शीशेदार खिड़की के सामने बैठी थी।

बाकू भी काफ़ी बड़ा शहर है लेकिन बाकू देखने के बाद भी मास्को उसे आकर्षित करता था। रास्ते में लोगों ने उसे इसके बारे में बताया था लेकिन इसके बावजूद वह मास्को के इस व्यापक आकार-प्रकार की उसकी अद्भुत सौन्दर्य की ठीक से कल्पना नहीं कर पायी थी। जब से पेरी-ख़ाला ने लाल चौक के पत्थरों पर क़दम रखे थे, उस क्रेमलिन की दीवारें देखी थीं जहां धरती के लोगों के सुख-कल्याण के लिए लेनिन रहते व काम करते थे उसी पल से उसे एक आन्तरिक शक्ति की, अभूतपूर्व प्रेरणा की अनुभूति हो आयी थी।

पिछली शाम को वह अज़रबैजानी प्रतिनिधि-मण्डल क साथ बोल्शोई थिएटर में आयोजित समारोह-सभा में गयी थी। थिएटर छाल के जूते और घर में बुने कोट पहने मज़दूरों व किसानों, ग्रेटकोट पहने सैनिकों से खचाखच भरा था। पार्टी व प्रशासनिक कर्मचारियों ने चमड़े के

जैकेट पहन रखे थे। सब के सब बड़ी बेसब्री से महान नेता के आगमन की प्रतीक्षा में थे। थिएटर में ठण्ड थी, लाल मखमली पर्दे फीके पड़ गये थे, मुलम्मा हल्का पड़ गया था लेकिन इसके बावजूद हर चीज़ यूं दमक रही थी मानो सूरज चमक रहा हो क्योंकि सब के होंठों व दिलों में लेनिन का नाम बसा था।

आख़िर वह दीर्घप्रतिक्षित पल आ पहुंचा। परदा हिला और धीरे से ऊपर उठ गया। तालियों की गड़गड़ाहट और लोगों की आवाज़ें गूंज उठीं: "हुर्रा! कॉमरेड लेनिन ज़िन्दाबाद!" सिर हल्के से आगे को झुकाये, तेज़-तेज़ क़दमों से चलते लेनिन मंच पर जब आगे बढ़े तो लोग उठ खड़े हुए। लेनिन आगे बढ़कर अपनी जगह पर बैठ गये।

भावातिरेक के कारण पेरी-ख़ाला को कुछ भी दिखाई नहीं दे रहा था लेकिन पल भर बाद ही अपने पर क़ाबू पाते हुए उसने लेनिन को देखा और उनकी छवि हमेशा-हमेशा के लिए अपने हृदय में उतार ली।

पुरानी लोक कथाओं के नायकों की तरह लेनिन अगर भीमकाय होते तो पेरी-ख़ाला को कोई आश्चर्य नहीं होता। लेकिन जितना ही वह उन्हें देखती जा रही थी, उतना ही उसे महसूस हो रहा था कि लेनिन बिलकुल वैसे ही हैं जैसा होना चाहिए–हृष्ट-पुष्ट, चपल, आंखें चमकतीं, वेधती और कभी दृढ़ व साहसपूर्ण, कभी अत्यन्त सहृदय मुस्कान और बाहर को उभरा ऊंचा ललाट। सभा के दौरान उसने पल भर के लिए भी अपनी आंखें उनके चेहरे पर से नहीं हटायी।

एक बार फिर वेली की बातें और किसानों की सहमति याद करके उसके हृदय में निभृत लालसा जाग उठी।

"तुम्हें कॉमरेड लेनिन से बातचीत ज़रूर करनी चाहिए।"

उसे सिर्फ़ वेली की नहीं बल्कि दूसरे गांववासियों की भी आवाज़ें सुनाई देती महसूस हुई।

"तुम्हें कॉमरेड लेनिन से बातचीत ज़रूर करनी चाहिए!"

अगर मैं उनके अनुरोध पूरे किये बिना घर लौट जाऊंगी तो लोगों को अपना मुंह कैसे दिखाऊंगी, वह सोच रही थी। और ऐसा सोचकर उसने बग़ल में बैठे प्रतिनिधि-मण्डल के नेता बाकू के पुराने क्रान्तिकारी से याचनापूर्वक धीमे से कहा:

"पल भर के लिए ही सही लेकिन कोशिश कीजिए कि कामरेड लेनिन से हम अज़रबैजानियों की मुलाक़ात की व्यवस्था हो सके!"

काश, अगर व्यवस्था हो जाये तो वह उनसे अपने दिल की एक-एक बात बता देगी।

(८)

"कृपया, अन्दर जाइये, व्लादीमिर ईल्यीच आप लोगों की प्रतीक्षा कर रहे हैं," सचिव ने कहा और सबसे पहले पेरी-ख़ाला के अन्दर जाने के लिए रास्ता छोड़ते हुए सब उठ खड़े हुए।

गहरे नीले साटन का चुनटदार स्कर्ट और सिर का काला रेशमी रूमाल ठीक करके वह छोटे-छोटे क़दम रखती लेनिन के ऑफ़िस के अन्दर चली गयी। उसका चेहरा पीला पड़ गया था।

पेंसिल से कुछ चिह्न लगाते लेनिन कागज़ों पर नज़र दौड़ा रहे थे। किसी नौजवान की तरह वह उछलकर उठ खड़े हुए और पेरी-ख़ाला की ओर मुस्कराती आंखों से देखकर मेज़ के पीछे से निकलकर, उसे हाथ से थामकर एक आराम कुर्सी पर बैठा दिया और हाथ के इशारे से उन्होंने दूसरे प्रतिनिधियों को भी बैठने के लिए कहा।

"शायद हमें दुभाषिया की ज़रूरत होगी?" सवाली नज़र से सचिव की ओर देखकर लेनिन ने कहा। सचिव बाहर चला गया और पल भर बाद ही सैनिक वर्दीवाले एक सांवले नौजवान के साथ वापस लौट आया।

पेरी-ख़ाला को अपना दिल डूबता-सा महसूस हुआ–लेनिन उसकी ओर आशा भरी दृष्टि से देख रहे थे मानो सबसे पहले उसी की बातें सुनना चाहते हों और दूसरे प्रतिनिधियों की नज़रें भी उसी की ओर मुड़ी थीं। और यात्रा के समय व होटल में उसके दिमाग़ में उठनेवाली ढेर सारी बातें कहीं ग़ायब हो गयी थीं। लेकिन लेनिन ने उसकी दुविधा भांप ली थी।

"कॉमरेड नारीमानोव ने मुझे अज़रबैजान की स्थिति के बारे में और वहां की महिलाओं के कठिन जीवन के बारे में बहुत कुछ बताया है," वह बोले। उनकी मित्रतापूर्ण आंखें पेरी-ख़ाला के चेहरे पर टिकी थीं।

"यह अप्रत्याशित नहीं! युग-युग से रूस में और पूरब में किसान महिलाओं का जीवन लगभग एक-सा रहा है। मेहनतकश महिलाओं का भाग्य अनिवार्यत: सब कहीं एक-सा था।"

पेरी-खाला सहज हो चुकी थी: लेनिन की बातचीत का ढंग बड़ा सरल था, वह किसी पुराने मित्र की तरह थे। उनकी दृष्टि तथा चाल-ढाल में ऐसी सहृदयतापूर्ण सरलता थी कि उसे महसूस हुआ, वह उनसे भी उसी तरह बात कर सकती है जैसे अपने बेटे नाज़िम या वेली से कहती है।

"धन्यवाद, कॉमरेड लेनिन," पेरी-खाला ने कहा, "हम ग़रीबों के प्रति चिन्ता के लिए आपको धन्यवाद। आपने और सोवियत सत्ता ने हमारे लिए एक नये, अच्छे जीवन का द्वार खोल दिया है।"

"ओह, लेकिन हम अभी सचमुच अच्छी ज़िन्दगी का निर्माण कहां कर पाये हैं," लेनिन गम्भीरतापूर्वक बोले और उनकी सिकुड़ी आंखों में चिन्ता दौड़ आयी। "हमारे सामने बहुत-सी कठिनाइयां हैं – रोटी की कमी है, कपड़ों की कमी है, जाड़ा आ पहुंचा है और अस्पतालों व अनाथालयों को गरमाने के लिए लकड़ी तक नहीं है। यातायात ठप है, रेलगाड़ियाँ मुश्किल से चलायी जाती हैं – यह सब आपको मुझसे कहीं ज़्यादा अच्छी तरह मालूम है। और निरक्षरता, अज्ञानता तथा अन्धविश्वास हमारे ख़तरनाक दुश्मन हैं। नहीं, हमें सचमुच खुशहाली भरे दिनों तक पहुंचने के लिए अभी बहुत लम्बा रास्ता तय करना है।" प्रभावशाली स्पष्टवादिता के साथ लेनिन ने अपनी बात पूरी की।

पेरी-खाला लेनिन की चिन्ताओं को समझ रही थी लेकिन उनसे पूरी तरह सहमत नहीं हो पा रही थी।

"अज़रबैजान के किसानों के पास अब ज़मीन है और उन्हें बेकों के जुए से आज़ाद किया जा चुका है। यह एक बहुत बड़ी बात है! हम खुद अपने मालिक हैं।"

उसके शब्द सुनकर लेनिन प्रसन्न हो उठे। तेज़ी से पेरी-खाला व दूसरे प्रतिनिधियों पर नज़रें दौड़ाते हुए उन्होंने तीव्र उत्सुकता से पूछा:

"तो अज़रबैजानी महिलाएं समझती हैं कि सोवियत सत्ता ने उन्हें युगों पुराने अंधेरे से मुक्ति दिलायी है? सच? और क्या किसान सचमुच सोवियतों को अपनी, जनता की सत्ता मानते हैं? कॉमरेड पेरी-खाला, मुझे बताइये," लेनिन ने दुभाषिया की ओर देखा जिसने सिर हिला दिया, हां, यही सम्बोधन ठीक था, "मुझे बताइये कि क्या गांव के कम्युनिस्ट और सोवियत सत्ता के ग़ैर-पार्टी समर्थक समझते हैं कि पूरा का पूरा पूरब अज़रबैजान की ओर नज़रें लगाये है! यह हमारी सम्पूर्ण नीति के लिए अत्यन्त महत्वपूर्ण है! आपके मज़दूर, किसान, आपके लाल सैनिक समाजवाद की पताका उठानेवाले पूरब के पहले लोग हैं!"

पेरी-खाला समाजवाद का ठीक-ठीक मतलब तो नहीं जानती थी लेकिन उसे याद था कि किस प्रकार वेली ने लाल झण्डा बेक के भूतपूर्व मकान के ऊपर फहराया था और किस तरह दुश्मनों ने उस पवित्र प्रतीक को कलुषित करने के लिए अपने गन्दे हाथ बढ़ाये थे लेकिन क्रान्तिकारी समिति के अध्यक्ष ने दूसरा झण्डा लाकर दिया था जो गौरवशाली ढंग से हमेशा-हमेशा फहराता रहेगा।

"कॉमरेडो, अज़रबैजान को एक आदर्श सोवियत जनतन्त्र बनाना आपके हाथों में है जिससे कि पूरब के उत्पीड़ित जनगण आपकी उपलब्धियों में अपना भविष्य देखकर आनन्दित हों!" लेनिन ने बल देते हुए कहा। उनकी आंखों में वही चुनौती भरी चमक थी जो श्रोताओं का दिल मोह लेती थी। "और इस महान कार्य में महिलाओं को महत्वपूर्ण स्थान ग्रहण करना है। आपके आदर्श जनतन्त्र में महिलाओं को निश्चय ही अभूतपूर्व ऊंचाइयां तय करनी है। उन्हें निश्चय ही सम्मान, प्रभाव और पूर्ण स्वतन्त्रता मिलनी चाहिए। संस्कृति के सारे वरदान महिलाओं को दिये जाने चाहिए! कॉमरेडो, पूरब के लिए यह बात असाधारण रूप से आन्दोलनकारी महत्व की होगी।"

पेरी-खाला को लेनिन के कहे सारे शब्द फिर पूरी तरह समझ में नहीं आये लेकिन उनकी बातों का मूल-तत्व वह जान गयी थी। प्रतिनिधियों पर बड़ा गहरा असर पड़ा था, लेनिन के शब्दों ने उनमें यह अनुभूति पैदा कर दी थी कि उनके मज़बूत डैने उग आये थे।

लेनिन ने उनसे विस्तारपूर्वक सवाल किये: बेक की ज़मीन किस तरह बांटी गयी थी, क्या किसानों के पास घोड़े और हल-फाल हैं कि नहीं, क्या प्राप्त ज़मीन पर वे एक साथ मिलकर खेती करने को इच्छुक है कि नहीं? पेरी-खाला को इन सब चीज़ों के बारे में बातचीत

करना बड़ा आसान लगा ; लेनिन के सवालों का जवाब देते समय उसे ऐसा महसूस हो रहा था, मानो वह खुद अपने जीवन की गाथा सुना रही हो ; उसे सिर्फ़ इस बात की हैरानी थी कि लेनिन की दिलचस्पी उन बातों में थी जिन्हें वह छोटी-छोटी, रोज़मर्रे की बातें समझती थी ; लेकिन लेनिन के लिए वे बातें महत्वपूर्ण थीं।

स्कूलों के बारे में पूछे जाने पर पेरी-ख़ाला ने बताया कि ग्रामीण सोवियत ने साक्षरता पाठ्यक्रम में सभी औरतों को, यहां तक कि जिनकी उम्र चालीस साल की थी, उनको भी बुलाने का फ़ैसला किया था। उसने उन कठिन दिनों के बारे में भी साफ़-साफ़ बता दिया जब लड़कियां भी पढ़ने के लिए आने से कतराती थीं और कुछ पति आज भी अपनी पत्नियों को शिक्षा पाने की इजाज़त नहीं देते हैं।

"यह तो आपके यहां की आदत है," लेनिन ने कहा और प्रतिनिधियों ने सहमति में सिर हिला दिया। पुराने रिवाजों का असर आज भी बहुत ज़्यादा था। "लेकिन कोई बात नहीं, सब ठीक हो जायेगा," लेनिन ने कहा। "अज़रबैजानी भाषा में पाठ्यपुस्तकों की क्या हालत है? और लिखने की कॉपियों की?"

तो लेनिन इन चीज़ों के बारे में भी सोचते थे! पहले पेरी-ख़ाला यह बताने में लजा गयी कि पांच-छह लोगों के लिए एक पुस्तक होती है, लेनिन के पास दूसरी बहुत-सी चिन्ताएं भी तो हैं। लेकिन उनकी वेधती आंखों की ओर देखकर वह शर्मिन्दा हो उठी – अपने पिता से सचाई नहीं छुपायी जा सकती!

"वे पुस्तकें बारी-बारी से पढ़ती हैं, कॉमरेड लेनिन। हमारे यहां पुस्तकों की बड़ी कमी है। लेकिन हम आपसे किसी और चीज़ के बारे में अनुरोध करना चाहते हैं।"

"क्या?" लेनिन ने तत्परता से पूछा।

"हमारे ज़िले में तीन सौ गांव हैं और अब काफ़ी सारे लोग पढ़ना सीख गये हैं लेकिन अज़रबैजान में एक भी अख़बार नहीं," किसी प्रौढ़ किसान की तरह सोच-विचार के साथ पेरी-ख़ाला ने कहा। "ज़िले में छपाई की कोई मशीन भी नहीं। अगर आप हम लोगों के लिए एक छपाई मशीन भेज सकते तो हम कोई मासिक अख़बार निकाल सकते थे और गांव के मामलों और ज़रूरतों के बारे में लिख सकते

थे। जो पढ़ना नहीं जानते, उनके लिए शाम के समय पढ़कर सुनाने की व्यवस्था की जा सकती है। इससे हमें निश्चय ही बड़ी मदद मिलती।"

अपनी नोटबुक में कुछ लिखने के बाद लेनिन दूसरे प्रतिनिधियों से मुख़ातिब हो उनके मामलों के बारे में पूछताछ करने लगे।

लेनिन से चुपके-चुपके उनके सचिव ने उन्हें इशारे से बताया कि जाने का समय हो गया, लेनिन थक गये हैं।

वे उठ खड़े हुए।

"कॉमरेड लेनिन," पेरी-ख़ाला कांपती आवाज़ में बोली। "आदमी की नियति के धागे बुननेवाली 'समय' नामी जादूगरिनी के घृणित छल-छद्म से अल्लाह आपकी हिफ़ाज़त करे। वह आपको लम्बी उम्र दे।"

"मानव नियति से खेलनेवाली जादूगरिनी – अच्छा, आप उसे 'समय' कहती हैं?" लेनिन ने आंखें भींच लीं। "बहुत ख़ूब। जादूगरिनी, अं?"

उत्साहित हो पेरी-ख़ाला ने लेनिन को पुरानी दन्तकथा सुना दी।

"बहुत दिलचस्प है," ध्यान से सुनने के बाद लेनिन ने कहा। "लोग अपनी बात कहना जानते हैं। वे जानते हैं कि इस विचार को किस तरह प्रकट किया जाये कि पुराने समाज में इनसान का भाग्य परिस्थितियों के सांयोगिक सामंजस्य पर निर्भर करता था और उनके सभी सपने नष्ट कर दिये जाते थे। लेकिन अब से वह 'समय' नामी जादूगरिनी हमारी मददगार होगी, मानव भाग्य से खेलनेवाली मक्कार नहीं। हम कम्युनिस्ट उस जादूगरिनी से लोगों के लिए काम लेंगे... जहाँ तक प्रतिक्रान्तिकारियों का सवाल है, हम उन से अच्छी तरह निबट लेंगे!" और यह कहकर लेनिन उल्लासपूर्वक हंस पड़े।

तभी पेरी-ख़ाला को अचानक ही फलों से भरे टोकरे की याद हो आयी जो अभी तक बाहरवाले कमरे में पड़ा था ; दूसरे प्रतिनिधियों को एक ओर हटाकर वह उसे लाने चली गयी।

"यह हमारे फलोद्यान का फल है! वही फलोद्यान जो हमें आपके ज़रिये फिर से मिला, कॉमरेड लेनिन!" टोकरे को आगे बढ़ाकर वह भावाविभूति से सुर्ख़ पड़कर बोली। "मैंने ख़ुद अपने हाथों से मिट्टी खोदी। मैं इसे पानी से नहीं अपने पसीने से सींचती। लीजिए यह

6—362

छोटा-सा लेकिन पूरे दिल से दिया गया उपहार स्वीकार कीजिए।" उसने शरद की हवाओं से लाल पड़े गालोंवाली पहाड़ी लड़की की तरह एक सबसे बड़ा, लाल सेब निकालकर लेनिन के हाथ में रख दिया।

उन्होंने उसे थपथपा कर सूंघा। उसकी ख़ुशबू ठण्डे ऑफ़िस में सूर्य की ऊष्मा लाती प्रतीत हो रही थी। और पेरी-ख़ाला ने देखा उनका हाथ छोटा-सा लेकिन बड़ा मज़बूत था।

"वाह, क्या ख़ुशबू है," लेनिन ने लम्बी सांस ली। "आप जानती हैं, मेरा एक बड़ा ही परिचित मास्को का मज़दूर था। पक्का कम्युनिस्ट, नाम था इवानोव, लाजवाब आदमी था।" लेनिन पेरी-ख़ाला की ओर इस तरह मुख़ातिब हुए मानो वहां उनके अलावा और कोई न हो। "अपने पीछे बीवी और चार बच्चे छोड़कर वह कुछ ही समय पहले मोर्चे पर मारा गया। आपके उपहार से उन्हें बड़ी प्रसन्नता होगी! इवानोव परिवार की ओर से आपका शुक्रिया!"

लेनिन के कमरे से बाहर जाते समय पेरी-ख़ाला की आंखें भर आयी थीं। लेनिन के दर्शन हो जाने के बाद अब मृत्यु भी भयानक नहीं लगेगी, वह सोच रही थी।

लेकिन मरने की उसकी कोई इच्छा न थी।

प्रतिनिधि-मण्डल के मास्को से लौटने के बाद एक महीना भी नहीं बीता होगा जब वेली पहाड़ी रास्ते पर सरपट घोड़ा दौड़ाता शहर से आकर पेरी-ख़ाला के बाड़े के पास खड़ा होकर चिल्लाया: "पेरी-ख़ाला, वे छपाई की मशीन ले आये हैं! टाईप भी! सब कुछ! बाकू से छपाई कर्मी भी आये हैं! लेनिन हमें भूले नहीं हैं!"

"लेनिन के अल्फ़ाज़ और काम एक ही हैं, बेटे," दहलीज़ पर खड़ी पेरी-ख़ाला बोली। मिर उठाकर पूर्ण सन्तोष के साथ वह सूर्यास्त की लालिमा को निहारने लगी।

"ज़रा सोचो," वह चिन्तन में डूब गयी थी। "लेनिन – ख़ुद लेनिन ने उन्हें नहीं भुलाया था, उन्होंने वही किया जो एक किसान, कल के खेत-मज़दूर ने कहा था। लेनिन की ऐसी दिलचस्पी के प्रति कृतज्ञता प्रकट करने के लिए मुझे काम करना चाहिए, डट कर!

दो हफ़्ते बाद ही ज़िलाई समाचार-पत्र **लेनिन की राह पर** का पहला अंक प्रकाशित हुआ।

इलियास एफ़ेन्दियेव

(जन्म १६१४)

"सुख की तुम्हारी धारणा हमेशा अच्छी अनुभूतियों तथा आवेगों की विजय है," इलियास एफ़ेन्दियेव की नायिकाओं में से एक अपने प्रेमी से कहती है। उसके शब्द स्वयं लेखक पर भी लागू होते हैं क्योंकि उनकी कृतियां नेक तथा उदात्त भावावेगों के गीत हैं।

इलियास एफ़ेन्दियेव की कहानियों, लघु उपन्यासों तथा नाटकों में भावात्मकता तथा गीत्यात्मकता की समृद्धता मिलती है। प्रस्तुत कहानी "छवैया और लाल फूल" सहित उनकी अनेक रचनाएं समकालीन युवाजनों और धरती पर अपना स्थान पाने के लिए उनकी तलाश से सम्बन्धित है।

इलियास एफ़ेन्दियेव

छवैया और लाल फूल

शहर के चोटीवाले हिस्से के एक मकान पर जब वृद्ध कारा अपने शिष्य के साथ चढ़ रहा था, सूर्योदय होने ही वाला था।

दोनों ही लम्बे व सुगठित थे, दोनों ने ही तेल के दाग़वाली मोटिया कमीज़ें पहन रखी थीं। वृद्ध ने भौंहों तक लटकती एक पुरानी भूरी टोपी पहन रखी थी लेकिन नौजवान का सिर धूप व हवा में खुला था और काले बाल बीच से कढ़े थे। दायें हाथ में वृद्ध ने समय के साथ कोयले की तरह काला पड़ा एक पुराना पाइप थाम रखा था।

वे छत पर साथ-साथ चलते हुए एक छोर से दूसरे छोर तक गये। नौजवान ने पूछा: "क्या हम काम शुरू करेंगे?" वृद्ध ने सिर हिलाकर सहमति जता दी।

नौजवान सीढ़ी के सहारे नीचे उतर गया और वृद्ध ने थैले से तम्बाकू निकालकर बिना किसी उतावलेपन के पाइप में भरना शुरू कर दिया और इसके साथ-साथ वह सूर्य की रोशनी से चौंधियाती आंखों को सिकोड़े काम की जगह का मुआयना भी करता जा रहा था।

छत का पुराना किर* मुलायम होकर फैल गया था। फिर यहां-वहां सिकुड़ गया था और दरारें पड़ गयी थीं।

फिर वृद्ध को वह जगह दिखाई दी जहां किर किसी फफोले की की तरह फूलकर फूट गया था और उसमें बने छेद से एक फूल उगकर बाहर निकल आया था। उसका रंग चमकता लाल था और उगते सूरज की रोशनी में किसी लाल मणि की तरह प्रभासमान था। छोटे-छोटे हरे पत्तों ने उसे घेर रखा था।

फूल पर आंखें टिकाये वृद्ध ने पाइप जला लिया। किर से छत की मरम्मत करते समय उसे ऐसी चीज़ें प्रायः देखने को मिलती रहती थीं – खास तौर से वसन्त या पतझड़ के समय और हमेशा वह जब कभी ऐसे फूलों की ओर झुकता था, उसे ऐसी अनुभूति होती थी मानो वे उससे कुछ कहना चाहते हों। लेकिन क्या? वृद्ध ने इसके बारे में कभी गहराई से नहीं सोचा था। वह बस देखकर ही सन्तोष कर लेता था।

सूरज क्षितिज से हटकर सागर के ऊपर आ लटका। चरमराते जोड़ों को सीधा करने के बाद वृद्ध ने टोपी को आंखों पर अधिक झुकाते हुए पूरब की ओर देखा। मोटे चमड़े के बूटवाले उसके पैर चौड़ाई में पूरी तरह फैले थे। उसे देखने पर ऐसा लगता था मानो वह वहां पर आदिकाल से खड़ा था और प्रलय तक वहीं खड़ा रहेगा।

धूप से वृद्ध का चेहरा सांवला हो गया था। पतझड़ के खेतों की हल-रेखाओं की तरह उसके चेहरे पर काली धंसी झुर्रियां थीं।

नौजवान का सिर छत के किनारे ऊपर निकलता दिखाई दिया। औज़ारों का झोला वृद्ध को थमाने के लिए वह सीढ़ी के सबसे ऊपरवाले डण्डे पर खड़ा था। फिर दोनों ने सब्बल हाथों में लेकर पुराने किर को छत पर से तोड़-तोड़कर नीचे अहाते में फेंकना शुरू कर दिया।

जब यह काम खत्म हो गया, दोनों सीढ़ियों से नीचे उतर आये और वृद्ध ने जेब का बटन खोलकर एक रूबल बाहर निकाला।

"यह लो!"

"मेरे पास पैसे हैं!"

"कोई बात नहीं, ले लो।"

---

* किर – एक क़िस्म का प्राकृतिक असफ़ाल्त या बीटूमेन जिसके भण्डार अज़रबैजान में पाये गये। – अनु०

हाथ में रूबल थमाकर नौजवान दौड़ता चला गया। वृद्ध उसकी ओर प्रशंसा भरी नज़रों से देखता रहा। फिर दीवार की छाया में बैठकर उसने अपना पाइप सुलगा लिया।

वह इधर-उधर आने-जानेवाले लोगों और यातायात को देखता प्रतीत होता था। लेकिन सत्तर साल में शहर के शोर-गुल में उसकी दिलचस्पी खत्म हो गयी थी। वह इन से परे कुछ देखता रहता था मानो सड़क के दूर किनारे पर किसी चीज़ की तलाश हो। लेकिन उसे खुद नहीं मालूम था कि वहां उसे किस चीज़ को देखने की प्रत्याशा थी। बस यूं ही देखता रहता था।

बाँह के नीचे काग़ज़ का एक ठोंगा दबाये और हाथ में एक अख़बार लिये कहीं पास से नौजवान आ पहुंचा।

"आज का अख़बार है?" वृद्ध ने पूछा।

"हां। कोई ख़ास ख़बर नहीं। देखना चाहते हैं?"

मुंह में पाइप दबाये वृद्ध ने अख़बार खोलकर आराम से देखना शुरू कर दिया और नौजवान झोले से चुक्र का एक गुच्छा निकालकर मकान के फाटक से अन्दर जाते हुए बोलता गया, "अभी धोकर लाता हूँ।"

जब तक नौजवान लौटा वृद्ध ने अख़बार फैलाकर रोटी, पनीर, सॉसेज के साथ बीयर की दो बोतलें उस पर रख दी थीं। फिर समय के साथ काला पड़ा सींग की मूठवाला चाकू निकालकर वृद्ध ने सॉसेज के टुकड़े काटना शुरू कर दिया।

"क्या आपके ख़्याल से हम सात बजे तक काम ख़त्म कर लेंगे?" नौजवान ने अचानक ही पूछा।

"काम? हां, उम्मीद तो है।" वृद्ध ने उसकी ओर देखा। 'सात बजे तक।' लड़का नौजवान था। उसे वे दिन याद आ गये जब वह खुद नौसिखुआ का काम करता था और ऐसे ही सवाल पूछता था। तब से न जाने कितना समय बीत चुका था लेकिन कभी-कभी ऐसा लगता था मानो कल की ही बात हो।

खाना खाने के बाद बचे-खचे खाद्य पदार्थ को अख़बार में लपेटकर उन्होंने पिछले दिन वहां लाये गये बड़े धूएं से काले पड़े कड़ाह के नीचे आग जला दी।

इस कड़ाह से वृद्ध का आधी सदी से परिचय था – वह कोलतार

में उठते बुलबुले को ही देखता रहा था। आज के इस नौजवान की तरह ही न जाने कितने साल तक आस्तीनें ऊपर चढ़ाकर वह किर को फेंटता रहा था। किर उसकी बांह की शक्ति के आगे हार मानकर मुलायम होता चला जाता था।

जब पहली दफ़ा उसने किर को फेंटा था, वह एकदम नौजवान ही था और एक वृद्ध कारीगर के अधीन उसने काम सीखना शुरू ही किया था। कारीगर का नाम भी उसी की तरह कारा ही था – कारा छवैयों का ख़ानदानी नाम होता था। वे दोनों शहर की सबसे सुन्दर इमारत, अकादमी की इमारत की छत पर बड़ी ऊंचाई पर काम कर रहे थे। सिर्फ़ इसका नाम तब दूसरा था – इस्माइलिया।

वृद्ध दुबारा समय की प्रवंचककारी तेज़ गति के बारे में सोचने लगा। ठीक पचास साल पहले जुमे के दिन उसने कारीगर के साथ मिलकर उस इमारत की छत पर किर डालना शुरू किया था। वह नवरोज़-बैराम का आखिरी जुमा था। वे सूर्यास्त तक काम करते रहे थे। फिर पास के भोजनालय से वे ताज़ा नान और केतली भर अच्छी चाय लाये थे।

शाम को उस्ता कारा उसे अपने घर आमन्त्रित करके ले गये थे। फाटक के पास आग की लपटें उठ रही थीं और बच्चे लपटों को देख-देखकर उत्तेजित हो शोर मचा रहे थे।

गुलसुम-बाजी (बूढ़े कारीगर की बीवी, भगवान उनकी आत्मा को शान्ति दे, वह उस्ता कारा की बड़ी अच्छी बीवी थी) गौउर्मा* के साथ पुलाव और फिर पूर्वी मिठाइयों के साथ नाशपाती के आकार-वाले गिलासों में चाय ले आयी।

उसे यह सारी बातें याद थीं – छोटी-बड़ी सब। वे दोनों जैसे उसकी आंखों के सामने थे – उस्ता कारा और गुलसुम-बाजी।

अब यह नौजवान फावड़े की लम्बी मूठ से पूरी ताक़त लगाकर किर फेंट रहा था। किर गुंधे आटे की तरह फैल-फैल जाता था। नौजवान की संवलायी बांहों की मांसपेशियां फैल-सिकुड़ रही थीं। उसके चेहरे पर पसीने की बड़ी-बड़ी बूंदें चुहचुहा आयी थीं।

---

* गौउर्मा – गोश्त और सब्जी का बना अज़रबैजानी खाना।

वृद्ध ने पाइप का क़श लेकर नौजवान की ओर प्रशंसा भरी दृष्टि से देखा। अच्छा, मज़बूत नौजवान है, ठीक छवैयों की तरह! आखिर वृद्ध ने एक पत्थर पर अपने पाइप की राख झाड़ दी।

"बस, काफ़ी है," वृद्ध ने आवाज़ दी। अब थोड़ा उबलने दो। और तुम थोड़ी देर बैठकर सुस्ता लो।"

फावड़ा रखकर नौजवान ने एक रूमाल निकाल लिया। पहली बार वृद्ध ने उसके पास इतनी अच्छी तरह इस्तरी किया रूमाल देखा था (उसकी देखभाल सिर्फ़ उसकी बूढ़ी दादी ही करती थी)। रूमाल की इस्तरी ख़राब न हो जाये, इसकी चौकसी बरतते हुए बड़ी सावधानी से उसने अपने चेहरे का पसीना पोंछा।

"मैं थोड़ा पानी पीने जा रहा हूं," उसने कहा।

"जाओ-जाओ।"

"आपके लिए भी ले आऊं?"

"नहीं, धन्यवाद।"

फाटक से बाहर निकलते नौजवान को वृद्ध ने पीछे से आवाज़ दी: "ज़्यादा मत पी लेना। कुछ ही दिनों पहले तुम्हारे गले में ख़राश हो गयी थी!"

सूरज नीचे झुक आया था लेकिन काम अभी भी बहुत बाक़ी था। नौजवान एक के बाद दूसरी बाल्टी भरता हड़बड़ाये ढंग से काम कर रहा था और वृद्ध छत पर खड़ा हो किर की बाल्टी खींच लेता और छत पर गाढ़ी हमवार तह फैलाये जा रहा था।

कुछ समय बाद वृद्ध ने जेब से घड़ी निकालकर देखी – पौने सात बज गये थे। तब वह छत के किनारे झुककर नौजवान से बोला:

"अब चलने की तैयारी करो। काम हम कल ख़त्म करेंगे।" और जैसे अपने-आप से बोलते हुए कहा, "मेरी कमर थोड़ी-थोड़ी दुख रही है।"

नौजवान का चेहरा खिल उठा। उसने बाल्टी नीचे रख दी।

"तो मेरी ज़रूरत तो नहीं आपको?"

"नहीं, जाओ!"

"तब फिर कल मिलेंगे।"

कन्धों पर जैकट डाल वह जल्दी-जल्दी चलता बना। लेकिन वृद्ध

को कोई जल्दी न थी, उसे कहीं नहीं जाना था। सीढ़ी ज़ोरों से हिले नहीं, इसलिए धीरे-धीरे नीचे उतरकर उसने बाल्टी उठा ली और उबलते किर में डाल दी। फिर छत पर चढ़कर उसने बाल्टी ऊपर खींच ली।

जब काम ख़त्म हुआ – उसने आज ही काम ख़त्म करने का वायदा किया था और वह अपने वायदे को तोड़ना नहीं चाहता था – अंधेरा घिर आया था। धीमे-धीमे चलकर वह सागर-तट पर जाकर पानी के निकट एक बेंच पर बैठ गया। बग़ल में ही एक कनेर का पेड़ उगा था।

काम ख़त्म होने के बाद के क्षण उसे प्यारे थे, पानी के पासवाली यह सीट उसे प्यारी थी, उसे सागर से प्यार था।

वहां काफ़ी तादाद में लोग मटरगश्ती कर रहे थे। पास-पास गुंथे से जोड़े भी सामने से गुज़र रहे थे। लेकिन वृद्ध की नज़र उन पर न थी। सिर के ऊपर बत्तियां जल रही थीं लेकिन पटरी की रोशनियां निहारने की आंखें उसके पास न थीं। उसकी नज़र सागर पर, किनारे पर बिखरती काँपती प्रकाश-रेखाओं पर टिकी थी।

खाड़ी में वाहनों की बत्तियां जल रही थीं। दूर चौकसी की बत्तियां चमक-चमक रही थीं। झाग के गोटेवाला सागर दमक रहा था। इसमें जीवन की शाश्वतता बसी थी, इसकी गति अविराम थी, अनियन्त्रित, शाश्वत। और सागर के साथ संलाप से वृद्ध को नयी शक्ति की अनुभूति होती थी।

दो बार पाइप भरकर पीने के बाद वह उठ खड़ा हुआ। रास्ते में वह उस मकान के पास से गुज़रा जिसकी छत पर उसने कुछ ही समय पहले किर की तह चढ़ायी थी। उस मकान के पास से गुज़रते समय उसे जालीदार पर्दों से सुप्रकाशित कमरा दिखाई दिया, मेज़ लगी थी और दो बच्चों के साथ एक पुरुष बैठा था। वे रात का खाना खा रहे थे। रेडियो पर मधुर संगीत आ रहा था।

... शहर के बहिर्वर्त्ती हिस्से में स्थित अपने छोटे-से कमरे का दरवाज़ा खोलकर वृद्ध ने रोशनी जला दी। छत से बिना शेडवाला लैम्प लटक रहा था, एक मेज़ थी जिस पर मोमजामे का मेज़पोश बिछा था, कुर्सियां थीं, एक लोहे का पलंग था जिस पर घिसा-पुराना तोशक पड़ा था। हर चीज़ घिसी पुरानी लेकिन साफ़-सुथरी थी।

बिना किसी हड़बड़ी के जैकेट उतारकर वृद्ध ने दरवाज़े के पासवाली खूंटी पर टांग दिया। कमरे से सटी छोटी-सी रसोई में जाकर उसने आलमारी से मट्ठे का एक मर्तबान निकाला (एक पड़ोसिन हर दिन उसके लिए मट्ठा ख़रीदकर यहां रख जाती थी)। मट्ठा पीकर कमरे में लौटने के बाद उसने ख़बरें सुनने के लिए रेडियो चला दिया। ख़बरों के बाद सकरुण लोक गीत 'सेगुआख़' की घोषणा की गयी।

कभी वृद्ध को खान शुशिन्स्की के गाये 'सेगुआख़' गीत सुनने के अलावा कुछ भी नहीं भाता था। लेकिन अब – अब उसने रेडियो बन्द कर दिया। जब से उसने सुना था कि उसका बेटा जावांशीर मोर्चे से कभी घर नहीं लौटेगा, वह 'सेगुआख़' सुनने की हिम्मत नहीं जुटा पाता। उसके स्नायु अत्यन्त संवेदनशील हो गये थे। उसके हृदय में दुख इस तरह भर गया था कि अब और जगह ही नहीं बची थी ...

इसलिए वृद्ध ने रेडियो बन्द कर दिया। वह सोने के लिए लेट तो गया लेकिन नीन्द नहीं आ रही थी।

एक आदमी जो हर दिन वृद्ध के पास आता था, वह था वही उसका नौजवान शिष्य। लेकिन पिछले दस दिनों से वह भी नहीं आया था। क्यों? लेकिन जवान से पूछा कैसे जा सकता था?

उठकर उसने बत्ती बुझा दी। कुछ पलों के लिए उसे कुछ भी दिखाई नहीं दिया, वह उसी अंधेरे में जाकर लेट गया। लेकिन विचार आते-जाते रहे और उनके साथ ही रोशनी और उम्मीद भी।

वह सोच रहा था कि कल लड़का काम ख़त्म देखकर हैरान हो उठेगा। और यह कि फिर वे किस तरह पास के घरों की छतों पर काम शुरू करेंगे। और यह कि लोग किस तरह उनका शुक्रिया अदा करेंगे, घर के अन्दर आमन्त्रित करेंगे।

लोग उसके काम से हमेशा सन्तुष्ट होते थे, उसका आदर करते थे और इसी कारण उसके पास काम करानेवालों के नामों की एक सूची पहले से होती थी और कारीगर कारा को भी कभी इस बात का गर्व था।

सोने से पहले वृद्ध किर फेंटते उसी नौजवान के बारे में सोच रहा था।

दूसरे दिन उन्होंने पड़ोस के घर में काम किया। पहले की ही तरह

वृद्ध छत पर और लड़का नीचे ज़मीन पर काम कर रहा था। जब काम ख़त्म होने को था और वृद्ध ने नीचे झुककर बाल्टी उठानी चाही तो उसे पास ही खड़ी एक लड़की दिखाई दी। उसने काम के समय पहनाया जानेवाला ओवरऑल पहन रखा था। उसके छोटे बाल पीछे की ओर लाल फीते से बंधे थे। उसे देखते ही पता चलता था कि वह अभी-अभी नहाकर आयी थी, उसके ललाट के बाल अभी तक गीले थे। पीठ के पीछे हाथ रखे वह लड़की नौजवान की ओर देख रही थी। नौजवान बड़ी तेज़ी से बाल्टी भर-भरकर जा रहा था। चूंकि वह हड़-बड़ाया था, इसलिए थोड़ा-थोड़ा किर हर बार छलककर नीचे गिर पड़ता था।

वृद्ध सोच रहा था, शायद कोई जिज्ञासु राहगुज़र होगी। लोग प्रायः उन्हें काम करते देखने के लिए रुक जाते थे। लेकिन काम ख़त्म होने के बाद जब वृद्ध नीचे उतरा, नौजवान ने लड़की की ओर सिर से इशारा किया।

"मैं आपसे परिचय कराना चाहता हूं, उस्ता।"

भौंहों के नीचे से देखती लड़की वृद्ध के निकट आ गयी। फिर वह अचानक ही मुस्करा उठी। उसके दांत एकदम सफ़ेद थे और काले-काले बालों में लाल फीता लगा था।

लड़की का हाथ कोमल ढंग से दबाकर वृद्ध ने अपना पाइप बाहर निकाल लिया।

"काम करती हो?" पाइप साफ़ करते हुए वृद्ध ने पूछा।

"नये फ़िल्म स्टूडियो का निर्माण कर रही है," नौजवान ने उसकी ओर से जवाब दिया। "अभी वहीं से आ रही है।"

जैसे और कुछ पूछे जाने के इन्तज़ार में वृद्ध के चेहरे की ओर देखती लड़की उसके निकट ही खड़ी रही। लेकिन वृद्ध ने कुछ भी नहीं पूछा।

"अगर अब आपको मेरी ज़रूरत नहीं तो..."

"हां-हां, जाओ, जाओ," वृद्ध ने कहा।

लड़का पल भर को हिचकिचाया, फिर मुड़ा और दोनों आगे बढ़ गये।

"रशीद," वृद्ध ने लड़के को अचानक आवाज़ दी।

जब लड़का लौटकर आया, वृद्ध ने तीन रूबल का नोट उसके हाथ में थमा दिया।

"क्या आपको काम के लिए पैसे मिल चुके हैं?"

"नहीं, लेकिन..."

"शुक्रिया!" लड़की तक पहुंचने के लिए लड़का दौड़ पड़ा।

उसके बाद से लड़की ने हर दिन आना शुरू कर दिया। लड़की को देखते ही रशीद हड़बड़ा उठता और किर छलककर बाल्टी से ज़मीन पर गिर पड़ता। और जैसे ही कारीगर की इजाज़त मिलती, वह झपट-कर जैकेट उठा लेता और दोनों साथ-साथ चलते बनते।

वृद्ध कोई सवाल नहीं करता। समय आने पर वे ख़ुद उसे बतायेंगे। लेकिन जिस दिन से लाल फीतेवाली लड़की ने आना शुरू किया था, वह सपनों की दुनिया में रहने लगा था। वह युवा लोगों के ब्याह की कल्पना करता और सोचता कि पहला बच्चा होने पर वे उसका नाम कारा रखेंगे। भावी युवा परिवार के जीवन का हर दिन उसकी आंखों के सामने से गुज़र जाता। इस ब्लाक के सभी मकानों की छतें ठीक करने पर कितने पैसे मिलेंगे, वह बार-बार गिनता रहता और मन ही मन वह उन सारी चीज़ों का अन्दाज़ लगाता रहता जिनकी ज़रूरत ब्याह के समय पड़ेगी।

एक ख़ुशगवार इतवार को अप्रत्याशित घटना हुई।

स्नान-गृह से लौटने के बाद वृद्ध जब अपने एकाकी कमरे में चाय तैयार कर रहा था, तभी दरवाज़े पर दस्तक हुई।

इस बार नौजवान अकेला नहीं आया था। लेकिन वृद्ध को और भी अधिक ख़ुशी हुई थी।

"आओ, बैठो," वह हड़बड़ाकर बोला। "अन्दर में दमघोंट है," और उसने कमरे की एकमात्र खिड़की खोल दी।

दोनों ने सबसे अच्छे कपड़े पहन रखे थे। लड़के ने सफ़ेद कमीज़ और नीली टाई पहन रखी थी। लड़की की कलाई में सोने की छोटी-सी घड़ी चमक रही थी।

अचानक वृद्ध को महसूस हुआ कि लड़के में पहले जैसी सहजता और लापरवाही न थी, शायद कोई चीज़ उसे परेशान कर रही थी।

"आज मौसम काफ़ी अच्छा है," वृद्ध ने अचानक ही कहा।

रशीद ने तेज़ी से उसकी ओर देखा। पहली दफ़ा उसने कारीगर के मुंह से कोई बेकार-सी बात सुनी थी या उसके चेहरे पर निरर्थक मुस्कान देखी थी।

वृद्ध उठकर रसोई में चला गया और पुराने फ़ेशन के फूलदार ट्रे में तीन गिलास चाय ले आया।

"आप को तकलीफ़ नहीं करनी चाहिए थी, उस्ता," नौजवान बोला। "यह लड़की ले आती ..."

"तकलीफ़! या ख़ुदा, इसमें तकलीफ़ क्या है?.." वृद्ध ने दोनों पर से दृष्टि हटाकर बाहर की ओर देखा। "तुम पल भर यहीं बैठो मैं अभी ..."

लड़के ने वृद्ध की बाँह पकड़ ली।

"लेकिन उस्ता, हम खाना खा चुके हैं। परेशान न हों। या शायद आपको भूख लगी है?"

वृद्ध ने सिर हिला दिया।

"तब फिर बैठिये, मुझे आपसे कुछ कहना है।"

नौजवान ने वृद्ध को पहले कभी उधेड़बुन में नहीं देखा था।

सब चुप थे। ख़ामोशी वृद्ध की सहनशक्ति को पारकर गयी थी।

"चाय पीओ, नहीं तो ठण्डी हो जायेगी," उसने कहा।

कई वर्षों में पहली दफ़ा रशीद ने वृद्ध के स्वर में इतनी उदासी महसूस की थी, इतना स्नेह महसूस किया था। उसका दिल डबडब हो रहा था।

जल्दी से गिलास उठाकर उसने कुछ ही घूंट में चाय पी डाली। खाली गिलास लेने के लिए वृद्ध ने हाथ बढ़ा दिया लेकिन नौजवान ने रोक लिया।

"शुक्रिया, मुझे और चाय नहीं चाहिए।"

वृद्ध ने नौजवान की ओर भौं चढ़ाकर देखा।

"आज सुबह क़िले से दो आदमी आये थे," वह बोला। "मैंने कह दिया है कि अभी बहुत काम है, हम पन्द्रह के बाद ही आ सकेंगे।"

नौजवान ने लड़की की ओर देखा। दुबारा ख़ामोशी छा गयी। आख़िर रशीद झटके से सीधा बैठ गया।

"उस्ता, मैं कल नहीं आ पाऊंगा।"

"क्या मतलब?" वृद्ध की आवाज़ घुटी-सी थी।

"मैं किर फेंटने के लिए नहीं आ पाऊंगा।"

"क्यों?"

"मैं पढ़ने के लिए जाऊंगा।"

"कहां?" वृद्ध ने ना समझने का बहाना किया।

"ट्रांसपोर्ट तकनीकी स्कूल में।"

कई मिनटों तक वृद्ध कुछ भी नहीं बोला।

"क्या तुम्हें दिक़्क़त नहीं होगी?"

लड़के ने वृद्ध के मन की बात समझ ली।

"नहीं, सब ठीक रहेगा, हम काम चला लेंगे," उसने कहा।

"मैं काम करूंगी, वह पढ़ने जायेगा," पुरुषों की बातचीत में लड़की ने दखल दिया। "आप जानते हैं ..."

फिर रुककर वह सही शब्द तलाशने लगी।

"आप जानते हैं, ज़माना बदलता है, अब किर लगानेवालों का ज़माना लद गया। नये मकानों में अब किर इस्तेमाल में नहीं लाया जाता।"

बात तो सच है, वृद्ध सोच रहा था। अब नये मकानों में किर का इस्तेमाल नहीं होता।

लड़की ने निर्ममता से कहना जारी रखा।

"जैसी स्थिति आपकी है, वैसी रशीद की नहीं। रशीद जवान है। उसे भविष्य के बारे में सोचना है।"

हां, बेशक, उसे सोचना है ...

"हालांकि सच कहूं तो," लड़की की आवाज़ कहीं दूर से आती प्रतीत होती थी, "मैं जानती हूं, रशीद के लिए आप पिता की तरह हैं। काफ़ी समय तक तो रशीद आपको छोड़ने के लिए तैयार ही नहीं हो रहा था।"

वृद्ध ने सिर उठाकर लड़की की ओर भिन्न आंखों से देखा। यह वही लड़की थी जिसे वह तंग ओवरऑल और लाल फीते में देखता था? इतनी छोटी लेकिन इतनी बहादुर।

फिर लड़की अपना और नौजवान का गिलास (वृद्ध ने अभी तक चाय नहीं पी थी) उठाकर रसोई में चली गयी। जब वह लौटी,

रशीद राहत की सांस लेकर उठ खड़ा हुआ। वृद्ध भी उठ खड़ा हुआ। वे पल भर को ख़ामोश खड़े रहे। फिर रशीद के होंठों से वही पुराने शब्द फूट निकले।

"तो अगर आपको अब मेरी ज़रूरत नहीं ..."

"हां-हां, जाओ ..."

"अलविदा, उस्ता।"

"अलविदा। सदा ख़ुश रहो।"

दरवाज़े पर जब दोनों पहुंच गये, लड़की ने भावावेशवश बूढ़े के पास दौड़कर आते हुए उसे चूम लिया।

फिर वे चले गये। दरवाज़े से धूप की सुनहली किरण आ रही थी। फिर दरवाज़ा बन्द हो गया और कमरे में हमेशा की तरह उदासीन अंधेरा छा गया।

वृद्ध दरवाज़े के पास जैसे कोई बहुत ज़रूरी बात याद करता खड़ा था। फिर वह खिड़की के पास चला आया। लेकिन तब तक वे दोनों ग़ायब हो चुके थे।

जैकेट के अन्दर हाथ डालकर उसने पाइप बाहर निकाला। हमेशा की तरह वह सावधान था, उसमें किसी तरह की हड़बड़ाहट न थी। फिर सिर पर टोप पहनकर वह बाहर निकल गया।

शान्त, तेज़ चाल से वह सार्वजनिक बग़ीचे की ओर चल पड़ा। यह जगह उसे बचपन से जानी-पहचानी थी। हर इतवार के दिन छवैये यहां जमा होते थे।

रवि रश्मियों से क्षितिज स्वर्णिम हो उठा था और अकादमी की विचित्र आलंकरण से सुसज्जित इमारत चमकने लगी थी।

चलते-चलते वह मन ही मन में उन घरों को गिनते भी जा रहा था जिन पर उसे आगामी हफ़्ते में फिर की लिपाई करनी होगी। वह जीवन के बारे में सोच रहा था – जीवन पुरातन किन्तु चिर नवीन है। वह जीवन के सीधे-सादे और बुद्धिमत्तापूर्ण नियमों के बारे में भी सोच रहा था।

सुलैमान वेलीयेव

(जन्म १९१६)

सुलैमान वेलीयेव का जन्म बाकू के निकट अप्शेरोन में स्थित रोमानी नामक क़स्बे में हुआ था। उनके पितामह और पिता ने तेल उद्योग में काम किया था, स्वयं उन्होंने भी बाकू के तेल क्षेत्रों में काम किया।

दूसरे विश्व युद्ध के दौरान वह मोर्चे पर लड़ने गये और जर्मनी व इटली के फ़ासिस्ट बन्दी शिविरों में उन्हें क़ैद कर लिया गया। वह इटली व युगोस्लाव कम्युनिस्ट गुरिल्लों के साथ मिलकर प्रतिरोध में लड़े। उन्होंने मिस्र, ईरान , इराक़ की यात्रा की।

वह लाक्षणिक रूप से स्वानुभूत घटनाओं का वर्णन करते हैं। यही कारण है कि क्रान्ति-पूर्व अज़रबैजान की उनकी तस्वीरें जीवन्त तथा यथातथ्य हैं। क्रान्ति से पहले के मज़दूर आन्दोलन और युद्धकालीन दायित्वों के पालन की चिन्ताओं के चित्रण में वह अत्यन्त सिद्धहस्त रहे हैं। हमने इस संकलन में सागर पर स्थित प्रसिद्ध नगर नेफ़्त्यानिये काम्नी के बारे में उनका शब्द-चित्र चुना है।

'ग्रन्थियाँ' उनका नवीनतम उपन्यास है जिसमें उन्होंने अपने प्रिय नायकों, शिरवान के मज़दूरों तथा तेलकर्मियों का चित्रण किया है।

सुलैमान वेलीयेव

लहरों में बसी आबादी

नेफ़्त्यानिये काम्नी पहुंचना इतना आसान नहीं। कैस्पियन अपनी जल-यात्रा की आज्ञा तभी देता है जब साफ़, खुशगवार मौसम हो और तभी आप आवेशयुक्त सागर पर फैलते कल्पनातीत शहर तक पहुंच सकते हैं।

बाकू और नेफ़्त्यानिये काम्नी के बीच 'एम० एस० बाबाज़ादे' नामक जहाज़ आता-जाता है। इसका नामकरण उस आदमी पर किया गया है जिसकी साहसपूर्ण अन्तर्दृष्टि ने पहली बार सागर के गर्भ में छिपे तेल भण्डार तक पहुंचने की कोशिश की थी, और जो अब जहाज़ के रूप में नया बाना धारण करके वही कठिन यात्रा बार-बार करता है। 'एम० एस० बाबाज़ादे' बाकू से तेलकर्मियों को सीधे सागर से निकलते डेरिकों, कुसुमित उद्यानों, कैण्टिनों, क्लब, चिकित्सा-केन्द्र, पुस्तक-दुकान, मज़-दूर आवासोंवाले शहर में ले जाता है। छुट्टियों के दिन वह मज़दूरों को शहर, उनके परिवारों और मित्रों के बीच वापस ले आता है।

जहाज़ के केबिनों में से एक में हमें एक प्रदर्शनी भी देखने को मिली जो उस असाधारण सोवियत भूगर्भवेत्ता को समर्पित है जिसका पूरा जीवन "काले सोने", अप्शेरोन की मुख्य सम्पदा से जुड़ा था।

जहाज़ से सागर तटीय खानलार बस्ती के परिदृश्य दिखाई देते हैं। इसका नामकरण १९०७ मे शहीद हुए क्रान्तिकारी खानलार सफ़ारालियेव के नाम पर हुआ है।

किसी समय प्रसिद्ध तेल विशेषज्ञ आगा नेइमतुल्ला ने वहां पर कई ढालवें कुओं की खुदाई की थी लेकिन उन्हें उस समय बड़ी निराशा हुई जब तेल की जगह सिर्फ़ गर्म पानी व कीचड़ ही हाथ लगा। हालांकि विशेषज्ञों ने सिद्ध किया कि यह स्वास्थ्यप्रद कीचड़ है और इसकी मदद से गठिया व दूसरी बीमारियों का इलाज किया जा सकता है। बस्ती में कीचड़ से इलाज करनेवाला एक क्लीनिक खोल दिया गया जो आज पूरे जनतन्त्र में प्रसिद्ध है।

लेकिन स्पष्ट रूप से यह कीचड़ तेल का सहचर था। प्रसंगवश बता दूं कि नफ़्तालान गांव में निकाला जानेवाला नाफ़्तालान तेल भी कई आरोग्यकारी तत्वों से परिपूर्ण है। इसमें चमत्कारी औषधीय गुण हैं – परीकथाओं में वर्णित जीवन-जल की तरह। देश के सभी हिस्सों से गठिया से पीड़ित लोग नाफ़्तालान आते हैं और स्वस्थ होकर जाते हैं।

नाव धीरे-धीरे आगे बढ़ गयी और किनारा कुहरे में विलीन हो गया। और मानो हमारी उत्साहपूर्ण प्रत्याशा पूरी करने के लिए ही पहले डेरिक पानी में उठ खड़े हुए।

इस सब की शुरूआत तब हुई थी जब सागर के पेटे में नीचे दूर तक कुंओं की ढालवीं ड्रिलिंग की खोज हुई। तेलकर्मियों ने समुद्र में मिट्टी भरे कंक्रीट के द्वीप बनाने की कोशिश की। बाबाज़ादे के सुझाव पर बहुत से पुराने, टूटे-फूटे जहाज़ों के ढांचों के लंगर समुद्र में डाल दिये गये। उन्हीं से दूर सागर में पहले कुंओं की ड्रिलिंग की गयी और वे आज भी काम कर रहे हैं। फिर भी, नेफ़्त्यानिये काम्नी का जन्म उस समय हुआ जब मंचिका प्रणाली की खोज हुई और हल्के, ठोस ढांचे शक्तिशाली टेकों का सहारा लेते हुए दूर सागर तक पहुंच पा सके। यह बाकू से सौ किलोमीटर दूर है। इतनी दूर समुद्र के पेटे में कुआं ड्रिल करने की हिम्मत किसे हुई होती?

तीन घण्टे से कुछ ज़्यादा की यात्रा के बाद हम एक असामान्य बस्ती के लोगों के बीच पहुंचे जो अपने आप में आधुनिक इंजीनियरिंग का एक चमात्कार है।

हम नाव से दिखाई देनेवाले पहले डेरिक पर पहुंचे। इसके साथ लगे एक संगमरमरी फलक पर कुछ मिटे स्वर्णाक्षरों में अंकित है: "पहला कुआं, इसकी ड्रिलिंग ऑपरेटर कावेरोच्किन द्वारा की गयी। इसके साथ ही दूर सागर में तेल-उत्पादन शुरू हुआ। पहली बार तेल ७ नवम्बर, १९४९ को निकला।"

कावेरोच्किन का नाम पूरे अज़रबैजान में सुविख्यात है क्योंकि वह उस पहले दल के नेता थे जिसने कैस्पियन सागर में पैर जमाने में सफलता पायी थी। प्रचण्ड आंधियों और हवाओं से जूझते हुए लगातार तीन महीनों तक दिन-रात काम करके उन्होंने अपने साथियों के साथ पहले तेल-कूप की ड्रिलिंग करके कैस्पियन के गर्भ में छुपे खज़ाने का द्वार खोल दिया। प्रकृति के साथ उस दुर्धर्ष संघर्ष में जब आंधी की हवाओं की शक्ति तेरह प्वाइंट पर पहुंच गयी थी, कावेरोच्किन, सादीख़ोव और गासानोव वीर गति को प्राप्त हुए...

हां, कैस्पियन प्रायः अत्यन्त निर्मम हो जाता है। आज भी जब कि नेफ़्त्यानिये काम्नी वास्तव में एक बस्ती का रूप धारण कर चुका है और सब की सुरक्षा के लिए हर तरह के उपाय किये जाते हैं, कभी-कभी ज़बर्दस्त कठिनाइयां सामने आ खड़ी होती हैं। मंचिकाओं ने चौड़ी सड़कों का रूप धारण कर लिया है, बस्ती के केन्द्र में एक लंगर चौक है जहां एक भोजनालय है, क्लब है और रात में अच्छी तरह रोशन किताबों की एक दुकान है। धरती पर से लायी गयी मिट्टी में पेड़ उगते हैं और फूल खिलते हैं। सच कहा जाये तो परीकथा में वर्णित बीच समुद्र में किसी उद्यान की तरह। सोवियत सत्ता की ५०वीं वर्षगांठ के समारोहों के लिए क्रीड़ा मण्डपों तथा पेड़ों की छाया तले बैठने के लिए बेंचोंवाली एक छायादार चौड़ी सड़क का उद्घाटन किया गया।

जिस दिन हम वहां पहुंचे, कैस्पियन में भव्य शान्ति थी, रवि-रश्मियों में वह बड़े उल्लास से दमक रहा था। यह विश्वास करना कठिन था कि बिस्के की खाड़ी के बाद यह दुनिया का दूसरा अशांत समुद्र है। शायद इसका कारण यह था कि बहादुर तेलकर्मियों ने उसे वशीभूत कर लिया था?

इस समय आकर्षक, उदार कैस्पियन न सिर्फ़ तेल में समृद्ध है

बल्कि यहां मछलियों की सर्वोत्कृष्ट क़िस्में भी पायी जाती हैं – ख़ास तौर से स्टर्जन मछलियां। सच तो यह है कि दुनिया में मछली के जितने काले अंडे उत्पादित होते हैं उनका सबसे बड़ा हिस्सा यहीं उपलब्ध होता है।

कुल मिलाकर यह कहा जा सकता है कि प्रकृति ने हमारे अप्शेरोन प्रायद्वीप को समृद्ध बनाने में पूरी उदारता से काम लिया है। जैसे जाफरान को ही लीजिए – इसका एक ग्राम शब्दश: उतने ही सोने के बराबर है।

बहरहाल, विषयान्तरणों की कोई ज़रूरत नहीं: नेफ़्त्यानिये काम्नी की यात्रा स्वयं अत्यन्त रुचिकर है।

डेरिकों का यह विराट समूह विश्वसनीय हाथों में है। इन क्षेत्रों की ज़िम्मेदारी कावेरोच्किन के एक शिष्य, दूर समुद्र में ड्रिलिंग में परम निष्णात, सोवियत संघ की सर्वोच्च सोवियत के प्रतिनिधि क़ुर्बान अब्बासोव पर है। अपने वरिष्ठ मित्र की मृत्यु के बाद उन्होंने उसका स्थान ग्रहण करके समुद्र में दूसरे कुएं की ड्रिलिंग की।

डेरिकों से कुछ दूरी पर मुझे समुद्र से उभरता एक बेलनाकार ढांचा दिखाई दिया। वह किसी तेल-टंकी की तरह दिखाई देता था लेकिन बहुत छोटा-सा प्रतीत होता था।

"उस छोटी-सी तेल-टंकी में ठीक बीस हज़ार टन तेल अटता है," मेरी जिज्ञासा भरी दृष्टि को भांपकर पास से गुज़रते एक तेल कर्मी ने कहा।

"असम्भव!"

"इसकी ऊंचाई बारह मंज़िली इमारत जितनी है," यात्रा में मित्र बने एक व्यक्ति ने बताया। "इसका बहुत थोड़ा-सा हिस्सा ऊपर है, लगभग चालीस मीटर तो नीचे है।"

कुछ देर ख़ामोश रहने के बाद उसी ने पूछा: "क्या आपने पम्पिंग स्टेशन देखा?"

उत्तर की प्रतीक्षा किये बिना वह मुझे उस पम्पिंग स्टेशन पर ले गया जो हौज़ों और टैंकरों में निकर्षित तेल पम्प करता है। यह सब बड़ा सरल-सहज प्रतीत होता था लेकिन कल्पना की उड़ान भरनेवाले जुल वेर्न जैसे महा कल्पना विलासियों के भी शायद छक्के छूट जाते।

मैं नेफ़्त्यानिये काम्नी का चित्रण एक बस्ती के रूप में कर रहा हूं लेकिन इसके बावजूद मुझे तब बड़ा अजीब लगा जब मैं एक ऐसे दरवाज़े के पास पहुंचा जिसके ऊपर लिखा था "बस्ती सोवियत"। तो यानी कि यहां समुद्र में भी म्युनिसिपल व्यवस्था का बोलबाला था!

अब मैं अपनी नोटबुक से कुछ उद्धरण प्रस्तुत कर रहा हूं।

इस बस्ती की आबादी छह हज़ार से ज़्यादा है। यहां की आबादी में लगभग तीस जातीयताओं के लोग हैं। निस्सन्देह आबादी शब्द से मेरा इसका परम्परागत तात्पर्य नहीं: यह लोग यहां समुद्र में तो रहते ही हैं, बाकू में भी रहते हैं जहां प्रत्येक का अपना फ़्लैट या कमरा है।

नेफ़्त्यानिये काम्नी में एक तेल तकनीकी विद्यालय है। यहां मज़दूर अपनी पढ़ाई जारी रख सकते हैं। संस्कृति प्रासाद की अपनी शौक़िया कला मण्डली है। शौक़िया कलाकारों के कंसर्टों में चार चांद लगाने बाकू से कलाकार प्राय: आते रहते हैं और सोवियत संघ के जन कलाकार रशीद बेइबुतोव, अज़रबैजान की जन कलाकार शौकेत अलेकपेरोवा सहित बहुत से दूसरे कलाकार यहां अक्सर मेहमान बनते हैं।

कुछ ही मिनटों बाद बाकू के लिए रवाना होनेवाली नौका पर सवार होने से पहले नेफ़्त्यानिये काम्नी के हम अतिथिगण और काम के बाद घर लौटते कर्मी छायादार सड़क की बेंचों पर बैठ जाते हैं। चारों ओर सागर ही सागर है। सील मछलियों के गीले पृष्ठ भागों की तरह बहुत-सी काली-काली चट्टानें कभी लहरों में छुप जातीं, कभी फिर दिखाई देने लगतीं। इस जगह का नामकरण इन्हीं काली-काली चट्टानों के कारण नेफ़्त्यानिये काम्नी – काली चट्टानें किया गया। पहले यहां सबसे बहादुर मछुवारे भी अपनी कमज़ोर, हल्की नावों में आने से भय खाते थे। चट्टानें फिसलन भरी और तेलही थीं – लेकिन तब किसी को गुमान तक नहीं था कि तेल के कारण वे ऐसी थीं। उन पर चढ़ना असम्भव था लेकिन मामूली-सी आंधी में भी जहाज़ का उनसे टकराकर ध्वस्त हो जाना आसान था। कभी-कभी इन काली चट्टानों के आस-पास जलती गैस के कारण नीली-नीली रोशनियां टिमटिमा उठती थीं और इस "शैतानी" आग के डर से लोग दूर ही रहते थे।

एक बार फिर हमें बड़ी अतिथि-परायणता के साथ 'बाबाज़ादे' ने डेक पर आने को आमन्त्रित किया। समुद्र में हमें एक और आश्चर्यजनक

दृश्य से दो-चार होना पड़ा: हमें पानी में तैरता ड्रिलिंग रिग दिखाई दिया। ऐसे रिग सोवियत संघ में तेल की खोज पहली बार कर रहे हैं और आप के लिए यह बताना बड़ा कठिन होगा कि इन पर काम करनेवाले लोगों को तेलकर्मी या नाविक कहा जाये।

कुछ ही समय पहले मैंने समाचारपत्र 'बाकू' में पढ़ा था कि एक पूरा का पूरा तैरता ढांचा निर्माणाधीन है। इसकी डिज़ाइन ऐसी बनायी गयी है कि यह काफ़ी गहरे पानी के अन्दर ६,००० मीटर तक कुओं की ड्रिलिंग कर सकता है। इस अधिष्ठापन का विस्थापन ६,००० टन होगा, इसका प्लेटफ़ॉर्म ६० मीटर लम्बा और ४५ मीटर चौड़ा होगा तथा इसकी कुल ऊंचाई ७,५ मीटर होगी। यह दुनिया का सबसे बड़ा तैरता हुआ ड्रिलिंग रिग होगा। इस विशाल अधिष्ठापन में वास्तव में एक स्वचालित संयन्त्र होगा। मज़दूरों के रहने के लिए न केवल सुसज्जित केबिन होंगे बल्कि एक हॉल भी होगा जिसका इस्तेमाल सिनेमा दिखाने के लिए या क्लब के रूप में या तो आराम करने के लिए किया जायेगा। नये तैरते रिग को सबसे पहले नेफ़्त्यानिये काम्नी के पास–पड़ोस में काम में लगाया जायेगा जहां वह कठिन जगहों पर प्रायोगिक ड्रिलिंग करेगा। फिर यह समुद्र में और आगे जाकर लंगर डालेगा और इसके साथ ही मर्मर ध्वनि करते पेड़ और खिलते फूलोंवाली विशाल वीथिका भी समुद्र में आगे बढ़ती जायेगी।

बाकू को "तेल अकादमी" के नाम से अभिहित करना एकदम सही है। यह मात्र संयोग नहीं कि बाकू के तेलकर्मी देश के विभिन्न हिस्सों में देखे जाते हैं जहां वे नये-नये तेल भण्डारों को विकसित करने में मदद देते हैं। मैंने खुद उन्हें पूर्वी साइबेरिया में देखा था जहां हमारे देश के यह दक्षिणवासी अभूतपूर्व पालों और जमी धरती से भयभीत हुए बिना काम करते हैं। मैं जानता हूं कि एक बार बाकू के तेलकर्मियों को फ़ौरी तौर पर पड़ोसी तुर्कमानिया से तेल कूप में लगी आग बुझाने के लिए बुलाया गया था।

अज़रबैजान में तेल उत्पादन अनवरत गति से बढ़ रहा है और इस तेल उत्पादन का आधा से अधिक हिस्सा कैस्पियन सागर से मिलता है। कैस्पियन सागर रूपी भूगर्भीय ख़जाने से नेफ़्त्यानिये काम्नी के बहादुर कर्मी काला सोना निकालते हैं।

लेकिन आप यह न सोचिये कि समुद्र से तेल निकालना बड़ा महंगा है।

हालांकि इन ढांचों के निर्माण और उपयोग में काफ़ी बड़े विनियोग की ज़रूरत पड़ती है, समुद्र से निकाले जानेवाले तेल पर बाकू में समुद्र तट से तेलनिकासी की अपेक्षा लगभग एक-तिहाई ख़र्च ही पड़ता है। सबसे पहली बात तो यह है कि समुद्र के गर्भ में छुपी यह सम्पदा अतुल है। यहां निकलनेवाले तेल को पम्प नहीं करना पड़ता है–आम तौर से तेल किसी फ़व्वारे के रूप में फूट निकलता है।

हमारी नाव बाकू पहुंच रही है। तट पर के पुराने बीबी-एइबात तेल क्षेत्र दिखाई देने लगते हैं। वहीं सौ साल से ज़्यादा समय पहले अज़रबैजान के पहले तेल डेरिक खड़े किये गये थे। यही वह तेल क्षेत्र है जिसके बारे में मैक्सिम गोर्की ने अपनी यात्रा के बाद बिलकुल सही लेकिन करुण शब्दों में कहा था: "अनगिनत खजानों के मुंह पर बसी यह आबादी जीवन व प्रकृति की दरिद्रता में अनुपम है।"

किसी ज़माने में हमारा बाकू ऐसा ही था। अब हमारी नौका शानदार सागर तट पर पहुंच गयी थी जहां पेड़ मर्मर ध्वनि करते झकोले खा रहे थे और शाम की रोशनियों की हज़ारहा टिमटिमाहटों ने हमारा अभिनन्दन किया। झुटपुटाते आकाश की पृष्ठभूमि में सोवियत सत्ता काल में खड़े किये गये नये-नये ख़ूबसूरत मकान सीना ताने हैं। सोवियत सत्ता काल में ही लोग अपनी राष्ट्रीय सम्पदा के स्वामी बने और यह सम्पदा लोगों के सुख-कल्याण तथा ख़ुशहाली के लिए काम में लायी गयी।
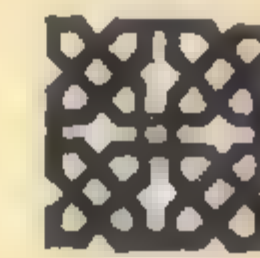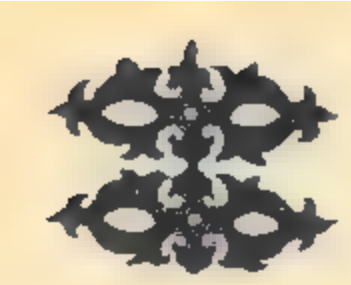
इमरान कासुमोव

(जन्म १६१८)

नाटककार, गद्यकार तथा जननेता कासुमोव सोवियत अज़रबैजान की सीमाओं से परे दूर-दूर तक ख्यात हैं। इसी नाम के उपन्यास पर आधारित फ़िल्म 'दूर किनारों पर' (यह उपन्यास कासुमोव ने गसन सईदवेली के साथ मिलकर लिखा है) कई देशों के सिनेमा-हालों में दिखाई जा चुकी है। उनके नाटक 'लंगर' का प्रस्तुतीकरण मास्को के 'माली' थिएटर द्वारा किया गया था।

"आदमी को सिर्फ़ जीना ही नहीं, विजयी होना चाहिए।" इस संकलन में शामिल कासुमोव की कहानी 'अगली चोटी' का यही विषय है। यह कहानी उनकी लाक्षणिक सूत्रात्मकता, गहन सूक्ष्मता की परिचायक तो है ही, इसके साथ ही, वाग्मिता एवं अनावश्यक अलंकरण के प्रति उनकी अस्वीकृति भी प्रकट करती है।

हाल के वर्षों में लेखक ने फ़्रांसीसी प्रतिरोध में भाग लेनेवाली अज़रबैजान की गौरवशाली बेटी भेरियान के बारे में एक प्रलेखीय वृत पूरा किया है; इसका शीर्षक है "फ़्रांसीसी गॉबलिन।"

इमरान कासुमोव

अगली चोटी

पर्वतारोहियों से सुनी एक सच्ची कहानी पर आधारित लघु उपन्यास तथा सिने-पटकथा।

ऊनी स्पोर्ट सूट पहने एक लम्बी, छरहरी लड़की रेलगाड़ी के स्लीपिंग डब्बे के गलियारे से गुज़र रही है।

वह कई डब्बों के खुले दरवाज़ों के सामने से गुज़रती है।

एक डब्बे में चार लड़के एक-दूसरे के कन्धों पर बांहें डाले कॉलेज में गाया जानेवाला एक हास्य गीत गा रहे हैं जिसमें एक हृदयहीन, शुष्क प्रोफ़ेसर के बारे में बताया गया है। बर्थों पर सटे-सटे बैठे दूसरे लड़के गीत का मज़ा ले रहे हैं।

एक दूसरे डब्बे में मोटा-सा स्वेटर पहने एक सनई बालोंवाला लड़का दो आह-ऊह करनेवाली लड़कियों को बाज़ीगरी दिखा रहा है; वह एक सिक्का ललाट पर रगड़ता है और जूते की एड़ी से निकाल देता है; सिक्का निगलकर खाली हाथ दिखाता है और कान से निकाल लेता है। वह एक-एक करके दो मीठी पूरियां मेज़ से उठाकर मुंह में

डाल लेता है और झल्लाती लड़कियों की ओर देखते हुए झेंप के साथ अपना पेट थपथपा देता है—पूरियां इस बार सचमुच ग़ायब हो गयी थीं...

एक दूसरे डब्बे में टेबल-लेम्प की स्निग्ध रोशनी में दो छात्र बैठे थे और तीसरा छात्र पेंसिल से बड़े आत्मविश्वासपूर्ण रेखांकन कर रहा था...

अख़िर इन सब दरवाज़ों के सामने से गुज़रने के बाद लड़की उसके पास जा पहुंचती है जिसकी उसे तलाश थी। वह अन्धेरे कोच प्लेटफ़ॉर्म पर खुले दरवाज़े से आती रोशनी में खड़ा था।

"अकेलेपन की बड़ी चाह है," सीने पर सुशोभित माला पर अंगुली फेरती वह कूजती आवाज़ में बोली। "मैं पूरे डब्बे में तुम्हें ढूंढ़ती फिर रही हूं, क्यामिल।"

"न तो मैं गा सकता हूं, न बाज़ीगरी दिखा सकता हूं, न ही रेखांकन कर सकता हूं," सिगरेट की राख झाड़ते हुए क्यामिल सूखी मुस्कान से बोला।

वह बड़ा ही लम्बा-तड़ंगा, काले बालोंवाला लड़का है। उसने भी स्पोर्ट सूट पहन रखा है।

"लेकिन वे लोग तुम्हारे जैसा पर्वतारोही तो नहीं बन सकते हैं," लड़की कहती है।

"यह तो ठीक ही है," लड़का अनिच्छापूर्वक हामी भरता है।

"तो आओ, हम चलें," लड़की उसे बढ़ावा देती है। "वे चाहें तो गीत गायें या हाथ के कमाल दिखाते रहें।"

"नहीं, सेव्दा," सिर हिलाते हुए क्यामिल बोला।

सिगरेट का जला टुकड़ा वह खुले दरवाज़े से बाहर फेंक देता है।

"वही पुरानी बात होगी। मेरे वहां पहुंचते ही साशा हाथ के कमाल दिखाना बन्द करके मेरे साथ पुराजीव विज्ञान में जाने की पेशकश करेगा और हमारे चारों के चारों गायक मेरे ऐतिहासिक भौतिकवाद के पीछे पड़ जायेंगे," वह आगे बोला।

"हरेक की अपनी पसन्द होती है," होंठ सिकोड़ते हुए सेव्दा ने कहा।

"ज़रूर," क्यामिल फिर उससे सहमति जताता है। "मैं आगामी छुट्टियों के समय उन्हें इसी के बारे में बताना चाहता था।"

"और तुम करोगे भी," उसके निकटतर आकर सेव्दा सोत्साह

बोली। "मेरी आंखों के सामने मुख्य संस्थान का दर्शक–कक्ष दिखाई दे रहा है। सामने दीवार पर तुम्हारी तस्वीर होगी। क़रीब से गुज़रनेवाला हर कोई कहेगा: हमारा सर्वाधिक प्रसिद्ध छात्र..."

उसका उत्साह देखकर क्यामिल थोड़ा परेशान हो उठता है।

"अभी तो वहां इम्तहान बाक़ी रखनेवाले छात्रों की लम्बी सूची ही है," वह चिन्तन भरी मुद्रा में कहता है। वह सेव्दा की गर्दन पर अंगुली रख देता है। "क्या तुम यह माला मुझे दे सकोगी, सेव्दा?"

"किस लिए?" वह हैरान होकर पूछती है।

"गार्लीदाग पर्वत पर एक शिला-समुच्चय है। कुछ दिनों में तुम्हारी माला की गुरियां उन शिलाओं के बीच होंगी," वह श्रद्धापूर्ण स्वर में कहता है।

"बहुत ख़ूब," ताली बजाते हुए सेव्दा आश्चर्य से कहती है। "ठीक है!"

वे आमने-सामने खड़े हो खिड़की के शीशे में अपना प्रतिबिम्ब देखते हैं।

...हूबहू उसी तरह उनके सिर छोटी-सी पहाड़ी झील के नीले जल में प्रतिबिम्बित हैं। सुबह का वक़्त है और झील में सेव्दा व क्यामिल के प्रतिबिम्ब हैं और उनसे थोड़ा पीछे आकाश में दो छोटी चोटियों पर अपना हिमस्नात सिर फैलाये गार्लीदाग है।

"बेशक, गार्लीदाग कॉकेशिया में सबसे ऊंचा पहाड़ नहीं है लेकिन इस पर चढ़ना 'सबसे कठिन श्रेणी का आरोहण' है," क्यामिल विचार-पूर्ण मुद्रा में कहता है।

उसने अपना हाथ पानी में डाला, लगता था कि वह चोटी की रेखाओं पर हाथ फेर रहा हो।

"ऊपर चोटी तक पहुंचने से रोकने के लिए तीन 'प्रहरी' हैं और वहां तक चढ़ने के लिए सिर्फ़ चट्टानों पर ही नहीं हिमसंहति पर भी चढ़ना आना चाहिए," क्यामिल आगे कहता है।

"तुम उन शैतान 'प्रहरियों' पर ज़रूर क़ाबू पा लोगे," सेव्दा धीमे से विश्वासपूर्वक कहती है।

"पर्वतारोहियों की कई टीमें गार्लीदाग पहुंचकर शिला-समुच्चय

खड़ा कर चुकी हैं," सेव्दा की बातों पर कोई ध्यान दिये बिना क्यामिल बोलता चला गया। "लेकिन मैं..."

"क्या?"

"तीनों पार्श्ववर्ती चोटियों का चक्कर लगाने के बाद मैं तुम्हारी माला वहां रख दूंगा," क्यामिल अपने हाथ से पानी में प्रतिबिंबित पहाड़ों के ऊपर तिहरे चाप की रूपरेखा खींचता है।

सेव्दा जल्दी से गर्दन से माला निकाल लेती है।

माला लेकर क्यामिल कुछ कहना चाहता है लेकिन बीच में कोई आवाज़ आ टपकती है।

"क्यामिल!" ऊपर से कोई ज़ोरों से आवाज़ देता है।

क्यामिल सिर ऊपर उठाता है।

वे एक ढलवे, घास से भरे किनारे पर बैठे हैं, एक सीधी चट्टान उनकी पीठ के पीछे खड़ी है, गार्लीदाग और उसकी पड़ोसी चोटियां उसकी पृष्ठभूमि में हैं।

चोटी पर से रस्सी की एक सीढ़ी नीचे लटक रही है, कई लड़के प्रशिक्षण के सिलसिले में ऊपर चढ़े थे और एक लड़की रस्से की सीढ़ी में फंसी अधर में लटकी थी।

"एकदम दूधमुंहे बच्चे हैं," क्यामिल गुर्राया।

उछलकर खड़ा हो वह चोटी के क़रीब नीचे जा पहुंचा और चट्टान के उभरे हिस्सों को कुशलतापूर्वक थामता लड़की तक पहुंचकर सीढ़ी ठीक कर देता है। भयभीत लड़की सहमी-सहमी नीचे उतरने लगती है।

"अच्छा होता गृह-प्रबन्ध का प्रशिक्षण लेतीं और सलाद व सूप बनाना सीखतीं," क्यामिल ने लड़की की ओर मुंह करके कहा।

बड़ी आसानी से, सीढ़ियों का सहारा लिये बिना क्यामिल तेज़ी से नीचे उतर आता है।

नीचे पहुंचते ही उसे अपने सामने एक प्रौढ़, गंजा-सा आदमी खड़ा दिखाई देता है।

"गार्लीदाग जानेवाले पर्वतारोही आप हैं क्या?" उस आदमी ने पूछा।

"हां-हां।"

"मैंने फ़ौरन ही जान लिया था," उस आदमी ने कहा और

उसकी ओर हाथ बढ़ा दिया। "मेरा नाम क़ुर्बानोव है, मैं अड्डे का प्रबन्धक हूं। आपके साथ कौन-कौन जा रहा है?"

"एक जादूगर और एक गायक," क्यामिल ने जवाब दिया।

"मज़ाक छोड़िये।"

"मैं मज़ाक़ नहीं कर रहा हूं," क्यामिल उसे आश्वस्त करता है। "जो है उसी से सन्तोष करना चाहिए, जो नहीं है उसकी कामना नहीं करनी चाहिए।"

वे धीमे-धीमे चलते हुए चमकदार रंगों से रंगे तख़्तियों के बने बंगलों की ओर चल पड़ते हैं...

साशा और तोफ़िक़ भी उन्हीं की ओर आते दिखाई देते हैं।

"इनसे मिलिये। आप हैं अलेक्सान्दर बोचकोव और तोफ़िक़ अलिज़ादे – दोनों द्वितीय श्रेणी के पर्वतारोही हैं।" क्यामिल कुर्बानोव से उनका परिचय कराता है। "आप चाहें तो नाम सूची में देख सकते हैं।"

क़ुर्बानोव साशा और तोफ़िक़ का अभिनन्दन करता है। वे इकट्ठे बंगलों में से एक के पोर्च में पहुंचते हैं।

"एक दिन साज़-सामान की व डॉक्टरी जांच तथा आराम के लिए," क़ुर्बानोव कहता है। "पूरी टीम पश्चिमी पल्याण पर उतरेगी। वहां आप लोग खुला पड़ाव डालेंगे, लौटने का निश्चित समय तय करेंगे और आप तीनों फ़रमाज़ के साथ आगे जायेंगे।" वह सिर हिलाकर ग्रीष्म मण्डप की ओर इशारा करता है।

क्यामिल, साशा और तोफ़िक़ एक साथ मुड़कर उधर देखते हैं।

फ़रमाज़ बहुत बूढ़ा आदमी है। उसने चोखा पहन रखा था। सीने पर सजावटी क़ारतूस की पेटी थी। वह मण्डप के सामने एक पेड़ की ठूंठ पर बैठा था। एक भारी-सी, गांठदार छड़ी उसकी बग़ल में रखी थी। वह घनी भौंहों से देखता चुपचाप माला फेरने में लगा था।

"अच्छा साथी," क्यामिल बड़बड़ाया।

"मैं शर्तिया कह सकता हूं यह लेर्मोन्तोव से मिला होगा या शामिल से लड़ा होगा," वास्तविक हार्दिकता से तोफ़िक़ आश्चर्य प्रकट करता है।

"ओह, खाट पर ही कैमरा छोड़ आया," निराशा से अंगुलियां चटकाता क्यामिल वोला। "उस ठूंठ पर बैठे उस की तस्वीर लाजवाब होती।"

"उस अस्थि-अवशेष पर सफ़री थैला और कुलाबा क्या फ़बेगा!" सिर को पीछे से खुजलाता साशा सोच रहा था।

"वह अपने चोखा में सिर्फ़ छड़ी लेकर जायेगा," क़ुर्बानोव कहता है। "वह हमेशा इसी तरह जाता है।"

इशारे से क़ुर्बानोव पर्वतारोहियों की ओर इंगित करता है।

फ़रमाज़ सिर हिलाकर मौन स्वीकृति देता है।

"सिर मुड़ाते ओले पड़े," क्यामिल हतप्रभ-सा बोला।

"पहले दूधमुंहे बच्चों से, फिर पेंशनयाफ़्तों से मुलाक़ात हुई।"

...खुला पड़ाव: बहुत-से तम्बू, ज़रूरी सामान लाती ले जाती बाह्य टोकरियां, तम्बूओं में से एक पर एण्टीना लगा है।

ऊंचे पहाड़ों पर एक छोटे-से पल्याण के हिमोढ़ पर पड़ाव लगा है।

इसके पीछे दो संगी चोटियों के साथ गार्लीदाग का हिमधवल शिखर दमक रहा है।

हिमोढ़ के पार साज-सामान से पूरी तरह लैस क्यामिल, साशा और तोफ़िक़ रस्से से लटके हैं।

किसी गड़ेरिये की तरह कन्धे पर छड़ी रखे बिना किसी साज-सामान के फ़रमाज़ सब से ऊपर मौजूद है। लड़के-लड़कियां पर्वतारोहियों को विदा करने तम्बुओं से बाहर निकल पड़े हैं।

"रवानगी का अन्तिम निश्चित समय पांचवे दिन दोपहर को है," क़ुर्बानोव क्यामिल से कहता है।

"इस समय मेरी घड़ी में छह बजकर पन्द्रह मिनट हुए है," अड्डे-चीफ़ की घड़ी से समय मिलाते हुए क्यामिल कारोबारी स्वर में कहता है।

"हम तुम्हारे बिना कैसे रहेंगे?" अपने से आगे बढ़ते तोफ़िक़ से एक लड़का कहता है।

"सुबह और शाम को तीनों मिलकर गाना गाओ और मैं वहां से तुम्हारे सुर में सुर मिलाऊंगा," तोफ़िक़ ने आकाश की ओर इशारा करते हुए हंसकर कहा।

"अलविदा, अर्द्धांगनाओ!" साशा आवाज़ लगाता है। अपनी पेटी से बर्फ़ की कुल्हाड़ी निकालकर वह लड़कियों के सामने नचाना चाहता है लेकिन कुल्हाड़ी फिसलकर ज़मीन पर गिर पड़ती है।

"प्रथम ग्रासे मक्षिका पात:।" मूर्खों के से अन्दाज़ में सिर झुकाते हुए साशा बोला और आगे बढ़ गया।

सेव्दा दौड़कर क्यामिल के पास जा पहुंचती है।

"तुम कुछ भूले तो नहीं?" वह जल्दी-जल्दी में पूछती है। "यक़ीन है, कुछ नहीं भूले?"

"नहीं, बिलकुल नहीं," सीने के पासवाली जेब को थपथपाता क्यामिल स्नेहपूर्वक बोला।

वह विदा देने के लिए आये लोगों की ओर देखता है।

"तो हम कूच करते हैं: दोस्विदानिया, ख़ुदा हाफ़िज़, सलूद, अर्रिविदेर्सि!" वह ज़ोरों से बोलता है।

वह तेज़-तेज़ क़दमों से चलकर फ़रमाज़ के पास पहुंच जाता है।

"आववेडेर्सेन!" लड़कों में से कोई आवाज़ देता है।

"आडियू।" कोई उसे जवाब में कहता है।

"गुड बाय," विदा के शब्द पहाड़ियों में गूंज उठते हैं।

लड़कियां सेव्दा के आस-पास जमघट लगा देती हैं।

"जानती हो," दूर लुप्त होते पर्वतारोहियों की ओर देखती यह बोलती है। "वह नाम कमाकर लौटेगा..."

"और अगर असफल रहा तो?" एक झांईदार मुंहवाली लड़की बोली।

"क्या मतलब है तुम्हारा?" सेव्दा आशंकित होकर बोली।

...क्यामिल अपना ललाट पोंछता है।

अपनी मंज़िल का पहला शिखर तय करके वे चारों सबसे ऊंची जगह पर खड़े हैं। उस जगह यत्र-तत्र सफ़ेद बर्फ़ के धब्बे हैं।

"नीचे की ओर छोटी-छोटी गुफ़ा हैं," अपनी छड़ी से एक ओर संकेत करता हुआ फ़रमाज़ कहता है। "हम रात वहां बिता सकते हैं।"

"'रात बिताने' से क्या मतलब है तुम्हारा?" क्यामिल गुस्से से पूछता है। "अभी तो दोपहर भी नहीं बीता। रात होने तक तो हमें दूसरे शिखर को पारकर लेना चाहिए।"

"वहां पड़ाव डालना ठीक नहीं," फ़रमाज़ आवेशरहित स्वर में कहता है।

"चलें," आगे बढ़ते हुए क्यामिल कहता है।

8—362

पहले की ही तरह आवेशरहित फ़रमाज़ उससे आगे पहुंच जाता है।

"शायद हमें पड़ाव डाल देना चाहिए?" साशा सुझाता है।

क्यामिल रुक जाता है।

"गुफ़ा में हम आराम से रात बिता सकते हैं: खाना बनायेंगे, रेडियो सुनेंगे," सीने से लटकते ट्रांजिस्टर को थपथपाकर साशा कहता है।

"प्रस्ताव का समर्थन कोई करता है या नहीं?" तोफ़िक़ की ओर मुड़ते हुए क्यामिल पूछता है।

"प्रस्ताव का समर्थन? प्रस्ताव, प्रस्ताव," तोफ़िक़ एक ऑपेरा की परिचित धुन गा उठता है। "रात भर के लिए पड़ाव? रात भर के लिए पड़ाव!"

"सबकी राय ले ली गयी। निर्णय पुराना है: हम दूसरी चोटी पर चढ़ाई जारी रखेंगे," गाइड के पीछे-पीछे चलता हुआ क्यामिल थोड़े में बोला।

गहरी सांस छोड़कर लड़के भी लड़खड़ाती चाल से पीछे हो लिये।

अवरोह आसान है, रस्सी पतली है। पहले मुलायम, नमदे के चुस्तों में दो पैर उस पर से गुज़रते हैं, पीछे-पीछे पर्वतारोहियों के जूतों में पांवों का दूसरा जोड़ा, फिर तीसरा...

गाइड अपने पैरों से बड़ी सावधानी से हिमाच्छादित एक शिला-फलक को टटोलता है। गांठदार छड़ी ज़मीन में धंस जाती है फिर हल्का क़दम आगे उठता है...

दूसरी उतराई। पर्वतारोहियों की पीठों के पीछे दूसरी चोटी का शिखर दिखाई दे रहा है, अब उतराई अधिक मुश्किल हो गयी।

तीनों को जोड़नेवाली रस्सी कन्धों से होकर हरेक आदमी की कांख में बंधी है और उसका छोर गाइड के हाथों में है।

फ़रमाज़ धीमे-धीमे बढ़ रहा है लेकिन उसकी मन्द गति में अनुभवी पर्वतवासी की ख़ासियत आसानी से महसूस की जा सकती है। वह सुविधाजनक स्थल चुनता है, रस्सी ढीली करता है और आशा भरी निगाहों से ऊपर की ओर देखता है।

क्यामिल आगे बढ़ती टीम की गति में कोई बाधा नहीं आने देता:

दो या तीन प्रयासों में ही वह ठीक फ़रमाज़ के पास जा पहुंचता है। पार्श्व को सम्भालता साशा बड़े उत्साह में था।

लेकिन तोफ़िक़ स्पष्ट रूप से अस्वस्थ था: वह अपने फटे होंठ चाटता है और हरेक मीटर की उतराई तय करने में उसे बड़ी मेहनत करनी पड़ रही थी।

क्यामिल के आगे बढ़ने से ख़ाली हुई जगह पर मज़बूती से पैर न जमा पाने के कारण वह बार-बार झूलने लगता है।

सन्तुलन बनाये रखने की कोशिश में वह संयोगवश एक पत्थर को धकिया देता है।

पत्थर क्यामिल की ओर लुढ़कने लगता है। तेज़ी से क्यामिल पत्थर को लात मारकर एक ओर खिसका देता है। रास्ते के दूसरे पत्थरों को साथ लेता वह पत्थर खड़खड़ाते प्रपात-सा नीचे की ओर चल पड़ता है।

साशा इशारे से क्यामिल को तोफ़िक़ की दु:स्थिति के बारे में बताता है।

"थोड़ा-सा नींबू का जूस पी लो," क्यामिल सुझाता है। "अब हमें ज़्यादा देर नहीं लगेगी।"

"मेरी चिन्ता न करो, भाइयो," तोफ़िक़ उन्हें आश्वस्त करता है। "मैं बिलकुल ठीक हूं।"

लेकिन क्यामिल से फ़्लास्क लेकर वह जूस के कई घूंट पी लेता है।

तम्बू में तोफ़िक़ जी भरकर मग से पानी पीता है।

उसके स्लीपिंग बैग से पानी की बूंदें लुढ़क पड़ती हैं जिस में से उसने पानी पीने के लिए सिर निकाला था।

साशा उसे आराम से लेटा देता है, बैग की ज़ीपर अच्छी तरह खींच देता है और ऊपर से कम्बल ओढ़ा देता है।

तम्बू के खम्भे से बंधे टॉर्च की रोशनी में चाकू से एक डिब्बा खोलने की कोशिश करता क्यामिल गम्भीर मुद्रा में एक गोलाकार पत्थर पर बैठा था। साशा उसके पास चला आता है।

उसकी बग़ल में ही गैस स्टोव पर शोरबा उबल रहा था। थोड़ा आगे कई थर्मस बोतलें नीचे पड़ी थीं।

हवा का एक झोंका नायलन के छोटे से तम्बू से आ टकराता है।

"उसे ज्वर हो आया है," क्यामिल की बग़ल में बैठकर साशा कोमल स्वर में बोला।

"मैंने पहले ही देख लिया था," क्यामिल उखड़े स्वर में कहता है। "जब मैंने उसे ऊपर खींचने के लिए हाथ बढ़ाया था तो उसका सिर गर्म महसूस हुआ था। क्या सो गया है?"

साशा चुपचाप सिर हिला देता है।

"हमें गुफ़ाओं में ही ठहर जाना चाहिए था," वह आह भरकर कहता है।

"हां-हां, क्यों नहीं, वहां ताप-प्रणाली और क़ालीन बिछाने की व्यवस्था जो थी," क्यामिल गम्भीर स्वर में कहता है।

"फिर भी..."

"फिर भी हम क़रीब पहुंच गये हैं," चाकू से ऊपर की ओर इशारा करते हुए क्यामिल बोला।

साशा उसके और क़रीब चला आता है।

"क्या तुम्हारे ख़्याल से वह वहां तक चल पायेगा?" तोफ़िक़ की ओर सिर से इंगित करते हुए साशा बुदबुदाकर कहता है।

उसे पूरा विश्वास है कि तोफ़िक़ गहरी नीन्द में सोया है लेकिन वह सोया नहीं है और अपने सूखे होंठों पर जीभ फेरता उनकी बातचीत सुन रहा है।

"क्या नहीं चल पायेगा?" क्यामिल गुर्राया। "तो..."

अचानक वह बातचीत का विषय बदल देता है।

"अठारह सौ तीस के उस अस्थि-अवशेष को जगाओ। नाश्ता तैयार है।"

साशा टार्च की रोशनी तम्बू के दूसरे कोने की ओर घुमा देता है।

"वह तो वहां है ही नहीं," वह चकित होकर कहता है।

"मैं यहां हूं," आवाज़ बाहर से आती है और फ़रमाज़ वहां आ पहुंचता है। "थोड़ी-थोड़ी बर्फ़ हटा दी है। यहां हमेशा बहुत बर्फ़ रहती है," वह उन्हें बताता है।

साशा बड़ी कुशलता से शोरबा मगों में डाल देता है।

"क्या तुम यहां अकसर आते हो?" क्यामिल जिज्ञासापूर्वक पूछता है।

तोफ़िक़ उन्हें अधखुली आंखों से देखता रहता है।

"नहीं," शोरबा सुड़कते हुए फ़रमाज़ निरुद्विग्न स्वर में कहता है। "बड़े अबालाकोव के साथ आया हूं, दो इंग्लिसी और जापारिदज़े के साथ आया हूं, लड़ाई में अपने गुप्तचरों के साथ आया हूं," अपने गांठदार हाथ की अंगुलियों पर वह गिनाता है। "फ़ात्मा के साथ आया हूं।"

"बड़े अबालाकोव के साथ आ चुके हो?" साशा की ओर मुड़ते हुए क्यामिल अविश्वासपूर्वक कहता है। "मेरी समझ में बात नहीं आती कि उसे इस आदमी की क्या ज़रूरत थी?"

"क्या तुमने बर्फ़ के शेर तेनज़िंग के गाइड का काम नहीं किया है?" साशा व्यंग्य भरे स्वर में कहता है।

"नहीं," बूढ़ा सिर्फ़ सिर हिला देता है।

"अरे हां, मैं तो भूल ही गया था," साशा दिखावटीपन से बोला। "तेनज़िंग तो ख़ुद गाइड है और फिर नेपाल में रहता है, हिमालय पर चढ़ता है।"

"एक मिनट," आस्तीन ऊपर उठाते हुए क्यामिल बोलता है। "मैं दोनों अबालाकोवों को जानता हूं, जापारिद्ज़े के बारे में सुना है और जर्मनों के पृष्ठ भाग पर हमला करने के लिए यहां से गुज़रनेवाले गुप्तचरों के बारे में भी पढ़ा है," वह याद करते हुए कहता है। "लेकिन फ़ात्मा..."

"मेरी पत्नी," फ़रमाज़ निरुद्विग्न स्वर में कहता है।

ख़ामोश होकर वह मग में मुंह लगा देता है।

"भुलक्कड़?" अंगुली से कनपटी छूते हुए साशा ने पूछा।

"शायद," क्यामिल बूढ़े को सम्बोधित करता है। "अगर हम यहां बीमार को छोड़ दें और लौटते समय साथ ले लें तो?"

"नहीं," साशा दृढ़तापूर्वक कहता है।

"हां," क्यामिल इतनी ही दृढ़ता से कहता है।

फिर एक ज़बर्दस्त ख़ामोशी छा जाती है।

साशा व क्यामिल की आंखें मिलती हैं, दोनों ही पीछे हटने को तैयार नहीं।

"बर्फ़ उसे दफ़न कर देगी," साशा कहता है।

"हम उसे बर्फ़ से निकाल लेंगे," क्यामिल कहता है।

"ऐसा कोई नियम नहीं," साशा आवेशपूर्वक कहता है।

"है, ऐसा नियम है," क्यामिल पलक झपकाये बिना कहता है। "तीन आदमी एक के लिए नहीं रुकते।"

फिर ख़ामोशी छा गयी।

फ़रमाज़ प्लेट खिसकाकर साशा व क्यामिल की ओर देखने के बाद आंखें झुका लेता है।

"जाने का समय हो गया," तम्बू के एक कोने से एक अप्रत्याशित स्वर सुनाई देता है और अपना सफ़री थैला घसीटता तोफ़िक़ प्रकाश के घेरे में आ खड़ा होता है। "नाश्ते के समय गपशप आनन्ददायी है लेकिन इसके लिए तब इतनी ऊंचाई तक चढ़ने की क्या ज़रूरत थी?" वह पहले जैसे ही अप्रत्याशित स्वर में कहता है और कम्बलों व थर्मसों को समेटना शुरू कर देता है।

"तोफ़िक़," उसके हाथों से एक थर्मस लेकर साशा कहता है, "मैं तुम्हारे साथ यहां ठहरूंगा।"

"क्यों?" तोफ़िक़ तेज़ी से पूछता है और सबको सम्बोधित करते हुए खुद ही जबाव देता है। "क्योंकि मैं गर्त में गिरने से बाल-बाल बचा और मैंने भयभीत होकर बीमारी का दिखावा करने का फ़ैसला किया?"

"लेकिन तुम सचमुच बीमार हो, तुम्हें ठण्ड लगी है," साशा कुपित होते हुए बोला। "तुम खांस रहे हो।"

"हां-हां," तोफ़िक़ कहता है। "मुझे निमोनिया हो गया, प्लुरिसी हो गयी है। मुझे वह थर्मस दो।"

"तोफ़िक़!" क्यामिल कठोर स्वर में दोनों के बीच हस्तक्षेप करता है।

"माफ़ करना, क्यामिल," सामान पैक करते हुए तोफ़िक़ कहता है। "मैं सचमुच डर गया था और मैंने सोचा कि जब तक तुम लोग ऊपर चढ़ोगे, मैं सो लूंगा..."

वह खड़ा होकर पीठ का थैला ठीक करता है।

"मुझे माफ़ करना," वह दुबारा कहता है और बाहर चला जाता है।

....होंठ पर दांत जमाये और लयात्मक चाल से चलने की कोशिश करता तोफ़िक़ हिमाच्छादित ढलान पर चढ़ता चला जाता है।

सामने-सामने चल रहे हैं क्यामिल, साशा, फ़रमाज़।

यह एक तुषाराच्छादित सुबह है, हवा के तेज़ झोंके चल रहे हैं।

साशा फ़रमाज़ के पास आ खड़ा होता है।

"ऐसी स्थिति बहुत ख़राब है," वह हांफता हुआ कहता है। "पता ही नहीं चलता है कि सांस कब फूलने लगी और चाल कब बिगड़ गयी।"

"इस से भी बुरी स्थिति हो सकती है," फ़रमाज़ दार्शनिक लहजे में कहता है।

"और हवा, तोबा है," बातचीत जारी रखने के मक़सद से साशा मज़ाक़िया ढंग में कहता है। लेकिन फ़रमाज़ अपने पैरों की ओर देखता ख़ामोश था।

क्यामिल के आने की प्रतीक्षा करता साशा रुक जाता है। "तुम सोच क्या रहे हो?" क्यामिल को दिक करने के ख़्याल से वह कहता है।

"माला के वज़न के बारे में," क्यामिल रहस्यमय ढंग से उत्तर देता है। "तुम्हारे ख़्याल से, औरतें गुरियों की जो मामूली लड़ी पहनती हैं, उसका वज़न कितना होगा?"

"नक़ली?" साशा किसी पारखी की तरह लापरवाही से पूछता है।

"नक़ली?" क्यामिल नासमझी से पूछता है। "शीशे की गुरियां हैं, मामूली-सी, लम्बी लड़ी।"

"सौ ग्राम," साशा विश्वासपूर्वक कहता है। "क्यों?"

"सूचना के लिए धन्यवाद," क्यामिल सन्तोषपूर्वक कहता है।

साशा फिर पीछे छूट जाता है और तोफ़िक़ की प्रतीक्षा करता है।

"ठीक है?" वह सोल्लास पूछता है।

"बढ़ते चलो," तोफ़िक़ दांत भींचते हुए जवाब देता है। "खुद को देखो, लट्टू-सा हिल रहे हो।"

"कोई होश में नहीं," साशा शिकवा करता है। "कहीं शोरबे का तो असर नहीं?"

एक शिखर के पीछे फ़रमाज़ ग़ायब हो जाता है, उसके बाद क्यामिल भी।

"इस मोड़ के बाद – आख़िरी चोटी!" शिखर के पीछे गायब होते-होते साशा विजयोल्लास से घोषणा करता है।

रुके बिना तोफ़िक़ फ़्लास्क निकालकर जूस के दो-चार घूंट लेता है और मुंह बनाता है।

वह जल्दी-जल्दी शिखर पर मुड़ता है, रुकता है और निराश हो जाता है।

गार्लींदाग की चोटी दिखाई नहीं देती थी। सिर्फ़ आख़िरी "प्रहरी" है: लगभग एकदम चिकनी, ढलवीं दीवार की तरह जिसके पार हिम-तुषार से भरे मैदान शुरू होने की उम्मीद की जा सकती है और यही मैदान घने ऊर्मिल कुहरे के आवरण में छुपी चोटी को जाता है।

"आगे नहीं बढ़ा जा सकता," ऊपर की ओर छड़ी से इशारा करते हुए फ़रमाज़ कहता है।

"आगे नहीं बढ़ा जा सकता?" गाइड का मतलब भली-भांति समझने के बावजूद क्यामिल व्यंग्रतापूर्वक पूछता है।

"गार्लींदाग छुप रहा है," फ़रमाज़ अन्यमनस्कता से कहता है। "हमें लौटना होगा।"

"क्या?" साशा उसकी बात को मज़ाक समझकर पूछता है।

"वापस?" तोफ़िक़ अनचाहे राहत महसूस करता है।

"वापस?" क्यामिल की भृकुटि चढ़ जाती है। "इतना नज़दीक पहुंचकर वापस? एक और मोड़ बस..."

"सात या आठ सौ मीटर," साशा अनुमान लगाता है।

"वापस? कैम्प में वापस? थोड़ी हिम्मत करो, बुढ़ऊ!" क्यामिल चीख़-सा पड़ता है।

"जा नहीं सकते," फ़रमाज़ अपनी बात पर जोर देता है। "बादल आ रहे हैं।"

"बादल क्या? आग उगलें या प्रलय मचायें," क्यामिल आग-बबूला हो उठता है। "आगे बढ़ो!"

"मैं नहीं जाऊंगा," फ़रमाज़ सिर हिला देता है।

"तुम्हें कोई जाने को कह भी नहीं रहा है," क्यामिल बीच में ही बोल उठता है। "साशा, तोफ़िक़, चलो!"

वह अपने पर क़ाबू पा लेता है।

"उसे यहीं रहने दो," वह अपने साथियों से धीमे लेकिन निश्चयात्मक स्वर में कहता है। "हम उसके बिना जायेंगे! और फिर वह अस्थि-अवशेष हमारी क्या मदद कर पायेगा? सिर्फ़ बेकार का बोझ ही है।"

अपनी छड़ी पर झुका फ़रमाज़ उन्हें आवेशरहित देखता रहता है। पर्वतारोही दूर जाकर विलीन हो जाते हैं।

वे "प्रहरी" के पास पहुंचकर आरोही रस्से को बांछते हैं।

कई तहें सम्भाले क्यामिल दीवार पर चढ़ना शुरू करता है। साशा व तोफ़िक उसके पीछे-पीछे हैं।

क्यामिल बाँह के सहारे ऊपर पहुंचता है, बाहर निकले पत्थर खण्डों पर पैर जमाता है, रस्से को फेंककर शिलाफलक में फंसा देता है और इस तरह ऊपर पहुंचकर साशा की मदद करता है। साशा ऊपर चढ़ने में तोफ़िक़ की मदद करता है और क्यामिल दायीं ओर खिसककर रस्सा फंसाने के लिए नये शिलाफलकों की तलाश करता है।

दूर से वे ऐसे कीड़ों की तरह दिखाई देते हैं जो सफ़ेद-काली दीवार पर टेढ़े-मेढ़े ऊपर चढ़ रहे हों।

फ़रमाज़ को अपनी ज़िद छोड़नी पड़ी।

अगली चढ़ाई के बाद जब क्यामिल एक छोटे-से शिलाफलक को ढूंढ़ निकालता है, वृद्ध को वहां देखकर हैरान रह जाता है।

"अंकुड़े," फ़रमाज़ मांगता है।

और कोई शब्द बोले बिना फ़रमाज़ अंकुड़े लेकर सिर्फ़ अपनी छड़ी के सहारे ऊपर चढ़ने लगता है। छड़ी वह लगभग अदृश्य दरारों में घुसेड़ देता है।

साशा शिलाफलक पर पहुंच जाता है।

"कमाल है," वह फ़रमाज़ के मुलायम चुस्तों को अपने सिर के ऊपर चमकता देखते हुए प्रशंसा भाव से बोल उठा। "जैसे स्वचालित मशीन हो।"

रस्से पर पूरा भार डालकर तोफ़िक़ आख़िरकार किसी तरह शिलाफलक पर पहुंच तो जाता है लेकिन पूरी तरह थका-हारा।

"आगे बढ़ो!" फ़रमाज़ के पीछे-पीछे चलते हुए क्यामिल आदेश देता है।

तोफ़िक़ साशा द्वारा जगह ख़ाली करने की प्रतीक्षा करता है और जब साशा के पैर उसके सिर के ऊपर पहुंच जाते हैं, फ़्लास्क निकालकर वह पीड़ादायक ढंग से एक घूंट जूस पी लेता है।

फ़रमाज़ ऊपर चढ़ता शिखर के एक छिछले पनाले में पहुंच जाता है, उसका शरीर पूर्णतया लम्बवत् है, उसके हाथ गड्ढ के एक किनारे में और पैर दूसरे किनारे में घुसे हैं।

नीचे से क्यामिल को उसके चोखा के किनारे ही दिखाई दे रहे थे जो एक पतली बेल्ट से घेराकार बंधा था। सुमरनी उसकी कमर में लटकी थी।

पनाले के आख़िर में पहुंचकर फ़रमाज़ ने चट्टान में एक अंकुड़ा ठोंक दिया।

अंकुड़े को चरखी की तरह काम में लाते हुए, एक-दूसरे की मदद करते हुए पर्वतारोही लगभग दस-पन्द्रह मीटर तय कर लेते हैं।

आरोहण अत्यन्त दुष्कर है और ऐसी दीवार पर चढ़ना कभी-कभी तो एकदम ही असम्भव लगने लगता।

फ़रमाज़ शिलाफलक को पकड़कर धीमे से ऊपर चढ़ जाता है।

क्यामिल भी बूढ़े की ही तरह ऊपर चढ़ आता है।

फिर साशा हाथ बढ़ाता है, फिर तोफ़िक़...

अब इस पर्वतारोहण का सबसे कठिन हिस्सा शुरू होता है।

'प्रहरी' दो भागों में विभक्त है। उन्हें अपनी यात्रा पूरी करने के लिए दूसरी ढलान पर पहुंचना ज़रूरी है और पर्वतारोही उस हिम दरार के ऊपर दो शाखाओंवाली सीढ़ी फैला देते हैं।

छड़ी से सन्तुलन बरक़रार रखते हुए फ़रमाज़ सतत गति से सीधे सीढ़ी के ऊपर से गुज़र जाता है।

क्यामिल भी बिना रुके आसानी से पारकर जाता है।

धीरे-धीरे लेकिन चुस्ती से साशा भी दूसरे किनारे पर पहुंच जाता है।

तोफ़िक़ भी ठीक ढंग से ही पारकर रहा है लेकिन जब सीढ़ी के दो डण्डे बाक़ी रह गये थे, सीढ़ी नीचे फिसलने लगी।

पल भर के लिए तोफ़िक़ रस्से के सहारे झूलने लगता है और दूसरे ही पल अपने साथियों के पास पहुंच जाता है।

ठण्ड के बावजूद क्यामिल के ललाट पर पसीने की बूंदें चुहचुहा आयीं।

"तुम किस सोच में पड़े हो?" हमेशा की तरह उल्लासमय ढंग से साशा ने पूछा।

"पसीने के वज़न के बारे में सोच रहा हूं," ललाट पोंछते हुए क्यामिल ने कहा। "इस पसीने का वज़न तुम्हारे विचार से कितने टन होगा?"

"मुझे तुम क्या समझते हो, माप-तौल का ब्यूरो?" साशा आपत्ति करता है।

"आगे बढ़ो," क्यामिल विषय बदलते हुए कहता है।

'प्रहरी' पर क़ाबू पाने के लिए एक अन्तिम प्रयास की ज़रूरत थी।

श्रृंग के पार गार्लीदाग के बर्फ़ के मैदान टिमटिमा रहे हैं।

चोटी स्वयं अभी तक घने धुएं जैसे कुहरे में आवृत है।

बर्फ़ की धूल जैसे छोटे-छोटे टुकड़ों को ढलानों पर उड़ा ले जाती तेज़ हवा बहने लगती है।

हाथों में थर्मस और चॉकलेट लिये पर्वतारोही फ़रमाज़ के इर्द-गिर्द एक वृत्ताकार पठार पर बैठ जाते हैं।

तोफ़िक ज़ोरों से भर्राई आवाज़ में खांसता है और क्यामिल उसकी ओर देखने लगता है।

तोफ़िक खांसी को जबरन दबा लेना चाहता है लेकिन इससे हालत और जानलेवा हो जाती है। वह मुंह दूसरी ओर कर लेता है।

क्यामिल तोफ़िक़ का स्कार्फ़ पकड़कर लड़के का मुंह अपनी ओर कर लेता है।

"तुम्हारी नाक से ख़ून बहा था?" क्यामिल ने तेवर चढ़ाकर पूछा।

"किसकी, मेरी नाक से?" तोफ़िक़ ना समझने का बहाना करते हुए गालों व नाक को पोंछता है। "अरे हां, एक फुंसी थी..."

साशा उसके ललाट पर हाथ रखता है। "इसे तो ज्वर है।"

"निस्सन्देह, यह दुख की बात है," क्यामिल कहता है, "लेकिन तुम्हें यहीं रहना होगा।"

"ठीक है," साशा आह भरता है। "मुझे नीचे भी यह बात

पसन्द न थी और यहां तो बिलकुल ही नहीं ... लेकिन खैर, मैं इसके साथ रहूंगा।"

"सच कहूं तो," क्यामिल कुछ कहना चाहता है लेकिन बीच में ही चुप हो जाता है और एक सिगरेट निकालकर जला लेता है।

उसके साथी समझ जाते हैं कि वह कोई महत्वपूर्ण बात कहना चाहता है।

"सच कहूं तो," मुंह से धुआं निकालते हुए क्यामिल धीमे-धीमे कहता है, "मेरे ख़्याल से सबसे अच्छा होगा कि गाइड तुम्हारे साथ यहीं रहे। मैं खुद चोटी तक पहुंच सकता हूं।"

"कोई नहीं पहुंच सकता," अचानक फ़रमाज़ बोल उठता है। "वह छुप रही है।"

"छुप रही है तो क्या प्रलय मचाने दो," क्यामिल गुर्राया। "मैंने 'प्रहरी' तक पहुंचने से पहले भी यही कहा था और अभी भी कह रहा हूं जबकि चोटी एकदम सीधे सामने है ... चाहे जो हो, मैं जिन्दा पहुँचूं या मुर्दा। साशा।"

"हां," साशा क्षीण स्वर में कहता है।

"हम कोई पड़ाव ढूंढ़ निकालेंगे और तुम बीमार के साथ रहोगे।"

"कौन बीमार है?" तोफ़िक़ उठ खड़ा होता है। तुम्हारा मतलब है कि मैं बीमार हूं?"

वह दिखावे के लिए जल्दी से फ़्लास्क निकालकर बड़ा-सा घूंट भरता है और पर्वतारोहियों का थैला उठा लेता है।

"तुम मुझे बीमार कहते हो?" वह क़हक़हा लगाने की भी कोशिश करता है।

वह सीधे लड़खड़ाती चाल से चोटी की ओर चल पड़ता है।

"वह ज़्यादा से ज़्यादा बीस-पच्चीस मिनट चल पायेगा और हमें कम से कम बर्फ़ से भरा चार सौ मीटर लम्बा रास्ता तय करना है," साशा सवाक चिन्तन करता है।

"रुक जाओ!" वह चिल्ला पड़ता है। "रुक जाओ, तोफ़िक!"

जवाब में तोफ़िक वही प्रोफ़ेसर और छात्रोंवाला परिचित गीत गाने लगता है। वह गाना तो कम था, पागलपन में चिल्लाना या प्रलाप करना ज़्यादा था।

"उसे रोकना असम्भव है," क्यामिल बोलता है।

"लेकिन वह सचमुच बीमार है," साशा के स्वर में चिन्ता है। "वह कल भी बीमार था और इस समय ..."

"आगे बढ़ो!" क्यामिल उसकी बात काटकर आदेश देता है।

वे जल्दी-जल्दी तोफ़िक के पीछे चल पड़ते हैं: दूधिया कुहरे में वह धुंधली आकृति-सा दिखाई देता है।

वे उस आकृति तक पहुंचते हैं लेकिन आकृति तोफ़िक़ की नहीं फ़रमाज़ की थी जो किसी तरह वहां तक उनसे पहले ही पहुंच गया था।

फ़रमाज़ तोफ़िक से आगे बढ़कर गाइड का स्थान ग्रहण कर लेता है।

हवा ज़ोर पकड़ लेती है, झंझावात शुरू हो जाता है।

चारों चोटी की चढ़ाई शुरू करते हैं।

तीन बार दूधिया कुहरा उन्हें पूरी तरह आवृत कर लेता है।

... उन्हें बर्फ़ में एक अतल गर्त पार करना है।

... अचानक शुरू हो जानेवाले भीषण हिमपात से बचने के लिए उन्हें एक शिलाफलक के नीचे शरण लेनी पड़ी।

... आख़िर उन्हें आकाश की ओर मुंह करके चढ़ाई चढ़नी पड़ती है, उनकी पीठें सीधे-खड़े शिखर से सटी हैं ... उन्हें बर्फ़ की कुल्हाड़ी की मदद से भगीरथ प्रयास करते हुए, उस पर क़दम जमाते हुए फिर से नयी सीढ़ी बनानी पड़ती है ... और पूरे समय पीठें शिखर से टिकाये रखनी पड़ती हैं ...

अचानक ही हिम झंझावात रुक जाता है।

नितान्त निस्तब्धता छा जाती है।

हम पर्वतारोहियों को हिम के आदिम राज्य में देखते हैं: वे गार्मी-दाग के उत्तुंग श्रृंग पर, उस शिला-समुच्चय की बग़ल में हैं जिसे पूर्ववर्त्ती पर्वतारोहियों ने बनाया है। उनके ऊपर आंखों को चौंधिया देनेवाला सूर्य चमक रहा है।

दरअसल चार में से सिर्फ़ तीन ही वहां खड़े हैं: फ़रमाज़, क्यामिल और साशा।

तोफ़िक शिला-समुच्चय के पास पड़ा है। यह उसका वास्तविक भगीरथ प्रयास था जिसके बाद वह भहराकर नीचे गिर पड़ा था और पानी से निकाली मछली की तरह तड़फड़ा रहा था।

विजेताओं से हंसने, चीखने और नाचने की उम्मीद की जा सकती थी। लेकिन यह विजय बड़ी मुश्किल से हासिल हुई थी और क्यामिल व साशा बुत बने खड़े थे, उनके चेहरे पर विजय का संकेत देनेवाली सिर्फ़ हल्की-सी मुस्कान ही थी।

"गार्लीदाग, दुर्धर्ष!" मानो अपने आप पर विश्वास न कर पाते हुए क्यामिल पता नहीं क्यों बुदबुदाया।

"यहां ऊपर संगीत तथा कविता की भाषा में सोचने की अनुभूति हो आती है," साशा लगभग वशीभूत-सी स्थिति में बुदबुदाते हुए विभिन्न कविताओं की पंक्तियां उद्धृत करने लगता है। "यहां ऊपर हम वेगवती धाराओं को जन्मते, घटाओं को घिरते और आंधी के रूप में दौड़ते देखते हैं... या: तुम्हारे पर्वतों की वेणियां दूध से अधिक श्वेत हैं और वे रेशम से भी ज़्यादा मुलायम आवरणों में अवगुंठित हैं... या: शृंग, हिमनदियां और पहाड़ी सोते, सूरज, आकाश और बादल सपनों सरीखे.... ओह, लड़को, मैं गद्गद् हूं।"

वह फ़ौरन सीने से लटकता रेडियो चला देता है और संगीत की लहरियां गूंजने लगती हैं।

"क्या तुम यह सब देख सकते हो?" क्यामिल साशा से पूछता है।

आंखों से चश्मा हटाकर वह अपनी बांहें इस तरह फैला देता है मानो सारी दुनिया को आलिंगनबद्ध कर लेना चाहता हो।

धूप चमकती-दमकती है और उनके सामने एक विलक्षण दृश्य उपस्थित है: दुर्धर्ष शृंगवरों की लुभावनी छायाकृतियां, गर्तों और खोहों की कालिमा, घाटियों पर घिरे ऊर्मिल बादल।

"मैं देख रहा हूं," साशा बुदबुदाता है। "पर्वतमाला, शैलबाहु, और उस ओर चक्कर काटती एक चील भी मुझे दिखाई दे रही है।"

"और पहाड़ों के पार संस्थान का मुख्य दर्शक-कक्ष," क्यामिल बेतुके ढंग से बोल उठता है।

"इसका दर्शक-कक्ष से क्या वास्ता?" साशा ना समझते हुए पूछता है।

"वहां छात्रों की बकाया परीक्षाओं की सूची टंगी है लेकिन अब समय वह महत्वपूर्ण नहीं," क्यामिल बुदबुदाता है। "अब सामने दीवार पर संस्थान के सबसे असाधारण छात्रों की तस्वीरें टांगी जायेंगी।"

"क्या इसी के लिए तुम यहां तक चढ़े थे?" रेडियो बन्द करते हुए साशा ने पूछा।

"और किस लिए," क्यामिल कहता और आंखें मिचमिचाता है लेकिन कारण नहीं समझ पाता है। "बुदबुदाकर कविता पढ़ने के लिए? लेकिन बुदबुदाकर क्यों?"

"लोग जो बातें नीचे ज़ोरों से कहते हैं, यहां शिखर पर वही धीमे से कहते हैं," कनझब्बे से चेहरे को पूरी तरह ढंकते हुए फ़रमाज़ अचानक बोल उठता है। "हमें नीचे की ओर चल देना चाहिए, दुबारा झंझावात शुरू हो सकता है।"

क्यामिल झुककर शिला-समुच्चय के बीच परम्परागत चिह्न रख देना चाहता है और देखता है कि तोफ़िक अभी तक वहां उसके पैरों तले निस्पन्द पड़ा है।

"वह तो बेहोश है!" साशा चौंककर बोलता है और दवा की कोई शीशी बाहर निकालता है।

फ़रमाज़ जल्दी से शिला-समुच्चय के पास आ जाता है।

साशा शीशी की दवा तोफ़िक़ के मुंह में डालने की कोशिश करता है और बूढ़ा उसका सिर ऊपर उठाने में सहारा देता है।

क्यामिल कुछ समझने में असमर्थ हो भयावह ढंग से आंखें मिचमिचाता रहता है।

उल्लास तथा उत्तेजना में किसी ने नहीं देखा था कि क्यामिल ने अपनी आंखों से बर्फ़ चश्मा कब हटा लिया था।

होश में आते तोफ़िक़ को धूमिल धब्बा दिखाई देने लगा जिसने धीरे-धीरे क्यामिल का रूप धारण कर लिया।

क्यामिल की आंखों में तीनों साथी धीरे-धीरे धूमिल धब्बे बन गये। वे धब्बे घनीभूत होकर एक काले धब्बे में बदल गये।

"तुम्हारा चश्मा, तुमने आंखों से चश्मा कैसे हटा लिया!" साशा कराह उठता है। "ऐसी तेज चमक में!"

"इसी कारण हमारे गाइड ने अपना कनझब्बा इतना नीचे तक गिरा लिया था," व्याकुलता से आंखें मिचमिचाते हुए क्यामिल कहता है। देर तो हो चुकी थी लेकिन फिर भी उसने जल्दी से आंखों पर चश्मा चढ़ा लिया।

"आंखों में दर्द है?" उसके चेहरे की ओर घूरते हुए साशा पूछता है।

"धब्बे, बिन्दु.... गर्म, चुभते बिन्दु.... दमकते बिन्दुओं की पूली..." क्यामिल अपनी पीड़ा का वर्णन करता है।

"क्या तुम्हें कुछ भी दिखाई नहीं देता?" साशा पूछता है। उसने नज़रें दौड़ायीं तो देखा कि हवा ने बर्फ़ की धूल फिर उड़ाना शुरू कर दिया।

"कुछ भी नहीं," क्यामिल स्वीकारता है।

"क्या तुम खड़े हो सकते हो?" फ़रमाज़ तोफ़िक़ से पूछता है।

"हां," उठने की कोशिश करते हुए तोफ़िक़ कहता है। "लेकिन मैं चल नहीं सकता हूं," वह निराशा से आगे कहता है।

"मैं इसे उठाकर ले जाऊंगा," साशा के पास पहुंचकर फ़रमाज़ कहता है।

"बांहों में?" साशा विस्मय विमूढ़ हो पूछता है।

"बांहों में या पीठ पर–जब जैसी स्थिति होगी," फ़रमाज़ समझाता है।

"क्यामिल का क्या होगा?" कुछ देर चुप रहने के बाद साशा पूछता है। "वह देख नहीं सकता है।"

"मैं यहीं रहूंगा," उनके पीछे से क्यामिल की आवाज़ आयी।

फ़रमाज़ और साशा दोनों एक साथ पलट पड़े।

"कहां रहोगे?" साशा पूछता है।

"कोई जगह ढूंढ़ निकालो, थर्मस और खाने के डब्बे छोड़ जाओ," शिला-समुच्चय की दीवार को अन्धे की तरह टटोलते हुए क्यामिल कहता है।

"तुम पागल हुए हो!" साशा उस पर चीख पड़ता है।

"बस आंखों का चक्कर है। ठीक हो जायेगी," दांत पर दांत जमाते हुए क्यामिल कहता है।

"बेवकूफ़ न बनो, क्यामिल," साशा कहता है।

क्यामिल उसके हाथ झटक देता है।

"चश्मा मैंने आंखों से उतारा था, इसके लिए कोई दोषी नहीं," वह कटु स्वर में कहता है। "इसके लिए सिर्फ़ मैं दोषी हूं। समझे?"

"नहीं," साशा दृढ़ स्वर में कहता है।

"जाओ," क्यामिल आदेशात्मक स्वर में कहता है। "तीन आदमी एक के लिए नहीं रुकते।"

"मुझे भी यहीं रहने दो," अचानक तोफ़िक़ बोल उठा। "आंधी शुरू हो रही है। तुम दोनों यहां से निकल जाओ।"

पूर्णतया किंकर्त्तव्यविमूढ़ साशा तोफ़िक और क्यामिल के बीच में खड़ा रहता है।

"चारों चलेंगे," फ़रमाज़ मुख़्तसर कहता है। "चार आये हैं, चार जायेंगे।"

"तीन!" क्यामिल सन्निपातग्रस्त-सा चीख़ पड़ता है।

फ़रमाज़ उसकी बांह इतनी ताक़त से दबा देता है कि क्यामिल पीड़ा से कराह उठता है।

"चारों," बूढ़ा दुर्दमता से अपनी बात दुहराता है।

हाहाकारमय वायुघोष में उसका स्वर दब जाता है।

...हाहाकारमय वायुघोष के बीच, आंधी के झोंकों के बीच हिमाच्छादित ढलान पर एक अजीब-सी गाड़ी चली जा रही है: स्लेज की जगह थैलों को इस्तेमाल में लाते हुए पर्वतारोही नीचे दो-दो की क़तार में उतर रहे हैं: फ़रमाज़ और पीछे से उसकी गर्दन पकड़े तोफ़िक़ और साशा व बुत-सा सामने बैठा क्यामिल।

नये ढंग की स्लेज को मोड़ने व रोकने के लिए फ़रमाज़ अपनी छड़ी काम में ला रहा है, साशा अपनी पर्वतारोही छड़ी। वे तेज़ी से नीचे फिसल रहे हैं।

दायीं ओर ज़ोरों से डगमगाते हुए फ़रमाज़ एक हिम शृंग के पास गति कम कर देता है। साशा भी वैसा ही करता है।

दुबारा नये ढंग की स्लेजें नीचे की ओर चल पड़ती हैं। यह एक लोमहर्षक स्की दौड़ जैसा था।

एक खड़ी ढलान के पास फ़रमाज़ रुककर पीछे रह गयी स्लेज की प्रतीक्षा करता है।

"तुम्हें अपनी इस ईजाद को पेटेण्ट करा लेना चाहिए," वहां आकर रुकने के बाद सांसों पर क़ाबू पाते हुए साशा कहता है। "विश्व

कौतुक, क्या झूठ क्या सच, निःशुल्क... मुश्किल है?" वह फ़रमाज़ से मुख़ातिब होता है।

"अब आसान हो जायेगा," फ़रमाज़ जवाब टालता-सा कहता है।

धीरे-धीरे तेज़ गति पकड़ते हुए थैले हिमाच्छादित मैदान पर फिसलते चले जाते हैं।

तेज़ से तेज़ मोड़ एक से बढ़कर एक कठिन।

"और अब?" साशा फ़रमाज़ से फिर पूछता है।

फ़रमाज़ चुप है।

वह रस्से का एक छोर उछालकर साशा को पकड़ा देता है, तोफ़िक़ को उससे बांध देता है और दूसरा छोर अपने हाथों में थाम लेता है।

एक दूसरे की मदद करते हुए चारों हिमाच्छादित शृंग पर रेंगते चले जाते हैं।

...थके पर्वतारोही एक बाहर को निकली चट्टान के नीचे सांसों पर क़ाबू पाने के लिए रुक जाते हैं।

उनके इर्द-गिर्द झंझावात उमड़ रहा है। एक अपनी दृष्टि खो चुका है। दूसरा बीमार है। साशा की भी सहनशक्ति जवाब देने को है।

किसी पहाड़ी पक्षी की तरह ख़ुद को घुटनों में सिकोड़े फ़रमाज़ अकेला बैठा है।

"आज बीस तारीख़ है?" फ़रमाज़ अचानक पूछता है।

"भगवान जाने। मैं तो भूल चुका हूं," तोफ़िक़ दांत भींचे कहता है।

"ज़रूर बीस ही है," फ़रमाज़ विश्वासपूर्वक कहता है।

अपने ही विचारों में खोये-खोये उसने अपनी सुमरिनी से एक गुरी निकालकर चुपके-चुपके बग़ल की एक दरार में डाल दी।

क्यामिल चाहता भी तो नहीं देख सकता था, फ़्लास्क से जूस पीने के लिए तोफ़िक ने अपना सिर पीछे की ओर झुका रखा था लेकिन साशा बूढ़े की हरकत देख लेता है।

"यह क्या है, कोई अन्धविश्वास?" वह पूछता है।

"एक नियम," बूढ़ा उसकी बात सही करता है।

"लेकिन तुम कुछ बताओगे नहीं," साशा अफ़सोस ज़ाहिर करते हुए लम्बी सांस छोड़ता है।

"ज़रूर बताऊंगा," सुमरिनी पर अनायास अंगुलियां फेरते हुए फ़रमाज़ सहमत हो जाता है।

क्यामिल उन्हें देख नहीं सकता है, उसकी आंखों के सामने अन्धेरे का झिलमिलाता आवरण भर है। उसे उनकी बातें भी समझ में नहीं आती हैं लेकिन बूढ़े पर्वतवासी का अन्यमनस्क स्वर उसे सुनाई देता है।

"लड़ी के यह मनके फ़ातमा के थे, मैंने उसे विवाह के दिन उपहार में दिये थे, हमने सलाह की थी कि सौ मनकों का मतलब होगा साथ-साथ जीने के सौ बरस। हर साल वह एक मनका निकाल देती थी। लेकिन जब हम गुप्तचरों को इस रास्ते से पार कराकर लौट रहे थे, एक गोली चली... यह किसी जर्मन ने चलायी थी... फ़ात्मा गिर पड़ी लेकिन किसी तरह मुझे यह लड़ी सौंप गयी... लड़ी में अड़तीस मनके बाकी थे। 'फ़रमाज, तुम्हें हमारी बातचीत याद है न,' वह बोली थी। वही बातचीत मेरे लिए नियम है... मैं उसका पालन कर रहा हूं... आज एक और साल बीत गया... अब सत्रह बच रहे हैं।"

"तुम्हारी उम्र इस समय कितनी होगी?" तोफ़िक हैरानी से पूछता है।

"बानवे," फ़रमाज़ कहता है।

"तुम लोग किस चीज़ के बारे में बातें कर रहे हो?" क्यामिल पूछता है।

"मनकों के बारे में," तोफ़िक़ कहता है, "और पर्वतों में प्रेम के बारे में।"

क्यामिल चौंककर अपनी जेब में कुछ तलाशता है।

"कुछ गुम गया?" साशा उसकी ओर झुककर पूछता है।

"मैं कोई चीज़ डालना भूल गया... उस शिला-समुच्चय में..."

...अड्डे के कैम्प से थोड़ी ही दूरी पर क़ुर्बानोव के नेतृत्व में लोगों का एक झुण्ड खड़ा है: वे छात्र-छात्राएं हैं, अड्डे के कर्मचारी हैं।

"सलाम," झाँईदार चेहरेवाली लड़की हाथ हिलाकर बोलती है।

"हाई ... बोन जुंर ... गुटेन मोर्गेन ..." आवाज़ें उठती हैं। लेकिन हर्षोल्लास भरी पुकारें शान्त पड़ जाती हैं।

चार आदमी हिमोढ़ से नीचे आ रहे हैं: फ़रमाज़ क्यामिल को किसी अन्धे की तरह सहारा देता ला रहा है और मुश्किल से क़दम उठा पाते तोफ़िक को साशा ने सहारा दे रखा है।

क़बानोव चारों पर नज़र टिका देता है: फिर वह फ़रमाज़ से विवरण पूछता है। फ़रमाज़ अस्पष्ट ढंग से सिर हिला देता है मानो कहना चाहता हो: यह कुछ भी नहीं, कोई बात नहीं।

क़ुर्बानोव फिर पूछता है: इन लोगों को क्या हुआ है?

फ़रमाज़ फिर सिर हिला देता है: कोई बड़ी बात नहीं।

क़ुर्बानोव तब ऊपर की ओर इंगित करता है: क्या वहां तक पहुंच पाये?

फ़रमाज़ अपनी छड़ी ऊपर की ओर, ऐन गार्लीदाग की ओर उठा देता है ...

... और गार्लीदाग की छाया झील में पड़ रही है, इसका हिमाच्छादित शिखर आकाश छू रहा है।

थोड़ा नीचे क्यामिल का सिर है और आंखों पर सफ़ेद पट्टी। पार्श्व में ही सेव्दा का सिर है।

"क्या हुआ था, क्यामिल?" वह चिन्तातुरता से पूछती है। "आंखें एक या दो हफ़्ते में ठीक हो जायेंगी। लेकिन आप लोग चोटी तक पहुंच पाये या नहीं?"

"हम ऊंचाई तक पहुंचे, सेव्दा," क्यामिल कोमल स्वर में कहता है। "जितनी मैंने सोच रखी थी, उससे भी ज़्यादा ऊंचाई तक ... बाक़ी लड़के कहां हैं?"

"वहां, लतागृह में," सेव्दा शिविर की ओर इशारा करती है। "शायद फिर गा रहे हैं या हाथ का कमाल दिखा रहे हैं।"

"आगे बढ़ो," उठते हुए क्यामिल कहता है। "मैं अकेलापन सहन नहीं कर सकता। इन दिनों साथ-साथ बंधे रहने की आदत पड़ गयी है।"

वे झील से लतागृह की ओर बढ़ते हैं जहां से आवाज़ें व क़हक़हे सुनाई दे रहे हैं।

सेव्दा क्यामिल को सहारा देकर ले जाती है। वह चुपके से उसके परिवर्तित, अधिक गम्भीर चेहरे के भावों को पढ़ने की कोशिश करती है।

राह में चलते-चलते क्यामिल अपनी ऊपरी जेब से मनकों की लड़ी निकालकर उस पर हाथ फेरता है।

"इसमें बहुत थोड़े से हैं," वह सोचते हुए बोलता है। "जब हम बाकू लौटेंगे, मैं तुम्हें दूसरी लड़ी ख़रीद दूंगा जिसमें कम से कम सौ मनके होंगे ... या कम से कम अस्सी ..."

चिंगीज़ गुस्सैनोव

(जन्म-१९२९)

गुस्सैनोव एक विशिष्ट गद्यकार, साहित्यिक अध्येता और आलोचक हैं।

उनके उपन्यासों, कहानियों तथा काव्यात्मक गद्य की विषयवस्तु काफ़ी हद तक नीतिशास्त्र की समस्याओं से सम्बन्धित है। गुस्सैनोव मानवीय सम्बन्धों में पवित्रता के लिए, उदात्त विचारों के लिए संघर्ष करते हैं और पाखण्ड एवं अश्लीलता का विरोध करते हैं चाहे इनकी अभिव्यक्ति किसी भी रूप में अथवा जितने भी प्रच्छन्न ढंग से क्यों न हो। उनके कथानक सरल तथा सहज हैं। घटनाएं समरूप और प्रशान्त ढंग से घटित होती हैं। भावावेग मूल कथ्य में निहित होते हैं: द्वन्द्व पंक्तियों में छुपा होता है। लेखक मुख्य रूप से एक मनोदशा के चित्रण से मतलब रखता है और इस प्रकार अपने विचारों एवं अनुभूतियों को पाठक तक सम्प्रेषित करने का प्रयास करता है। "द्वीप" एक मार्मिक कहानी है जिसमें लेखक अपने बचपन और अपनी मां के बारे में बताता है।

चिंगीज़ गुस्सैनोव

द्वीप

अपनी मां मख़फ़िरात मेलिक-मामेद-कीज़ी को समर्पित

पहली किलकारी। नवजात शिशु की किलकारी से सभी परिचित हैं। मेरी भी, आपकी भी।

पहले आंसू। उन्हें कौन याद करता है, उन आंसुओं को? वे सहज प्रवाहित होते हैं।

पहली हंसी – हम इसे भी भूल जाते हैं। यही सब मेरे प्रागैतिहासिक युग का निर्माण करते हैं।

याद के द्वीप... अपने बारे में कुछ आरम्भिक बातें मैं जबरन भुला देता हूं क्योंकि ऐसी बातें नहीं होतीं। कोई मुझ पर विश्वास नहीं करेगा, खुद मैं भी अपने आप पर विश्वास नहीं करता। यह प्रकृति के विरुद्ध और अवैज्ञानिक है।

लेकिन इसके बावजूद मैं बताये बिना नहीं रहूंगा क्योंकि यह मुझे आज भी साफ़-साफ़ याद है।

एक पुराने अंजीर के पेड़ के नीचे मेरे माता-पिता एक नमदे पर लेटे हैं। बांस के पालने में बग़ल में एक बच्चा सोया है। जब मेरी मां की नीन्द खुली, उसने मुझे बालू पर देखा। मैं बालू खा रहा था। मैं बालू खाये जा रहा हूं, बालू ताज़ा है, भुरभुरी है हालांकि मेरे दांत नहीं – दांत

उगने से पहले आदमी को रेंगने का पूरा ऐतिहासिक चरण तय करना पड़ता है।

लेकिन पहली बात आख़िर थी क्या? शायद कुछ और।

मैं पांच साल का था या लगभग पांच साल का: पिताजी मेरे लिए गांव से एक मेमना ख़रीद लाये थे; हमारा अगुवा और अनथक सरगना मेरा चचेरा भाई अनवर – बेचारा असमय ही यह अमर्त्य संसार छोड़ गया – मुझे साथ लेकर बड़े से, थोड़े ढलवे चरागाह के लोहे के घेरे में घुस गया।

उस चरागाह के केन्द्र में सोनेवाले गुम्बददार अलेक्सान्दर नेव्स्की के गिरजाघर की इमारत है। अनवर गोल-गोल ईमानदार आंखोंवाले मेमने को अन्दर घसीट ले जाने में मेरी मदद करता है। धूल भरे बाकू में गिरजाघर के पास का चरागाह हरीतिमा का द्वीप है। एक लम्बे रस्से से मैं मेमने को घेरे की छड़ियों से बांध देता हूं और मैं व अनवर, दोनों शीतल, लम्बी-लम्बी, हरी घास में लेट जाते हैं।

...या शायद यह।

एक काली तश्तरी घूम रही है। मुझे लगता है जैसे बक्से में बैठकर संगीतकार स्वर-लहरियां बाहर भेज रहे हैं। मैं एक स्टूल पर बैठा हूं, मेरे पैर स्टूल के पावों में लगी आड़ी लकड़ी तक भी नहीं पहुंचते हैं। मैं मज़दूरों व किसानों के मिलिशिया स्टेशन नं. ३ में हूं। यह एक मंज़िली मिट्टी की बनी इमारत है और इसकी खिड़कियों में छड़ें लगी हैं। यहां सिर्फ़ पुरुष ही पुरुष हैं। ग्रामोफ़ोन पर एक रिकार्ड घूम रहा है – लेज़गिन्का! लम्बे क़द के बड़े-बड़े पुरुष नाच रहे हैं। वे मेज़ से परे छोटी-सी जगह में नाच रहे हैं। भूरी लचीली पेटियां तथा कारतूसों की कमर में लगी पट्टियां चरमरा रही हैं। बिरजिस फूलकर ऊपर उठ रहे हैं। पालिश लगे बूट इस तरह दमकते हैं मानो उन पर वार्निश हो। पिता जी को नाचना अच्छा लगता है और दूसरे सिपाहियों में भी कम उत्साह नहीं। वे पंजों पर खड़े होकर सचमुच के नर्तकों की तरह नाचते हैं। सब नाच रहे हैं, सिर्फ़ मैं देख रहा हूं। उनके चेहरों पर मुस्कान खेल रही है। मैं भी ख़ुश हूं, उनका वयस्क लोगों का नाच देखकर मैं भी रोमांचित हूं। सुदूर अतीत के उस दिन क्या हुआ था? ऐसे सवाल मुझे अब परेशान करते हैं लेकिन तब... वयस्क लोग नाच रहे थे! वयस्क? वे बीस या पच्चीस साल के पुरुष थे। इस समय मेरी जो आयु है, उस से भी कम के वे थे, महज नौजवान। लेकिन मेरे लिए वे आज भी बड़े हैं।

...याद में बसी पहली ख़ुशी...

मैं पिरशागी के बंगले में हूं। इमारत के पीछे दीवार से लगी बालू की एक टेकरी-सी खड़ी है। अप्शेरोन पर अक्सर बहनेवाली उत्तरी हवा से यह टेकरी जमा हुई है। हम मकान की किर से ढकी चपटी छत से टेकरी पर कूदकर मुलायम बालू में धंस जाते हैं और हमारे नंगे पांवों के नीचे से रेत की छोटी-छोटी धाराएं बहने लगतीं।

हालांकि किसी ने कुछ नहीं बताया था, मुझे अचानक ऐसा लगा कि मां आयी है। मैं गांव की धूल भरी सड़क पर दौड़ पड़ा। उससे सबसे पहले मिलने के लिए मैं जितनी तेज़ी से दौड़ सकता था, दौड़ रहा था। वह सैनेटोरियम से वापस लौट रही थी। किसी स्वास्थ्य केन्द्र में वह यही पहली और आख़िरी दफ़ा जा पायी। सड़क पर उड़ती चाल से दौड़े हुए मुझे मां का चेहरा दिखाई देने लगा था – वह इस बात से ख़ुश होकर मुस्करा उठी थी कि मैंने उसे देख लिया था।

वह रही! मैं उसकी बांहों में उछलकर घुस गया, अपने गन्दे, धूल भरे पैरों व हाथों से मैंने उसे चारों ओर से जकड़ लिया, मेरी नंगी एड़ियां उसकी पीठ से सटी थीं। मुझे उठाकर वह ले चली। आह, कितनी प्यारी थी वह, मेरी मां!

मैं बंगले में अकेला रह गया हूं लेकिन मेरी मौसी मुझे शहर भेजने का फ़ैसला करती है। भारी-भरकम लेकिन चुस्त व तेज़-तर्रार मेरी मौसी मुझे एक ड्राइवर को सौंप देती है जो शहर के बाज़ार में जा रहा है। हमारा छकड़ा धूल भरी सड़क पर लम्बे समय तक हचकोले खाता रहा; शाम हो जाती है लेकिन लगता है, हम कभी पहुंच ही नहीं पायेंगे। सौहार्दपूर्वक, देर तक सीटी बजाती उपनगरीय ट्रेनें हमारे पास से धड़धड़ाती गुज़र जाती हैं; पास में और दूर में अनगिनत डेरिक हैं; हवा में तेल की गन्ध बसी है – यह ऐसी गन्ध है जो मुझ से बचपन से लेकर आज तक अभिन्न है क्योंकि इसी से होकर मेरे रास्ते गुज़रते हैं, इसी में वह नगर है जहां मैं पैदा हुआ, इसी में समुद्र है और मेरे देश से सम्बन्धित हर चीज़ इससे जुड़ी है।

यह रही आखिरी टेकरी; गोलाश्म पत्थरोंवाली सड़क यहां से शुरू होती है। छकड़े की एक दरार से मैं बड़े-बड़े, उभरे, चिकने गोलाश्म पत्थरों को देखता हूं। मैं गहरे नीलारुण रंगवाले दमकते बैंगन के पौधों से भरी टोकरी के ऊपर झुककर शहर देखने लगता हूं।

छकड़ा संकरी सड़कों पर खड़खड़ाता, चपटी छतोंवाले मकानों के पास से गुज़रता आगे बढ़ता रहा। एकाएक वह हमारी गली के सामने रुक जाता है। "क्या तुम अपना मकान ढूंढ़ सकते हो?" दाढ़ियों से ढके चेहरेवाले गाड़ीवान ने पूछा। भला मैं अपना मकान कैसे नहीं ढूंढ़ सकता था! बस वह रहा।

मैं छकड़े से नीचे कूद पड़ा और नमस्ते या धन्यवाद कहे बिना फाटकों की ओर दौड़ पड़ा – मैं तब जानता ही नहीं था कि उस आदमी को धन्यवाद कहना चाहिए। मैं गांव का मकान, ड्राइवर, सब भूल चुका था और घर की ओर दौड़ रहा था जहां मुझे लगता है, मैं चिरन्तन काल से नहीं गया हूं। निस्सन्देह, तब मुझे यह भी पता नहीं था कि चिरन्तन क्या होता है और आज भी नहीं पता...

वे रहे फाटक!

मैं पल भर को रुक जाता हूं। दूसरी मंज़िल के हमारे दोनों कमरों में और पूरी की पूरी गैलरी में तेज़, चौंधियाती बिजली की रोशनी फैली है।

सब ज़िन्दा हैं, दोनों – मां भी, पिताजी भी। वे जवान हैं। उनके चेहरों पर कितनी ख़ुशी है! उस तेज़ रोशनी को शीघ्र ही बुझा देनेवाले युद्ध का उन्हें तनिक भी पूर्वाभास नहीं। उन्हें इसका भी अहसास नहीं था कि उनके जीवन के दिन बड़े गिने-चुने थे – पिता जी के लिए एक साल से कुछ ज़्यादा और मां के लिए छह साल।

...याद में बसा पहला शोक...

बाकू के गर्म अगस्त के एक दिन को एक क्रन्दन विदीर्ण कर जाता है। गैलरी के सारे दरवाज़े, सारी खिड़कियां खोल दी गयी हैं जिससे कि असीम रूप से बादलहीन आकाश को हम पर दया आ जाये और वह हमें हल्की-सी बयार का कोई झोंका ही भेज दे।

यह क्रन्दन हमारी पड़ोसन का था जो गैलरी के एकदम आखिर में रहती थी और एकमात्र टेलिफ़ोन की स्वामिनी थी।

वह क्रन्दन मेरे लिए था। मैं पूरी तरह कांप उठा। जन्म से लंगड़ी वह पड़ोसन जो आज आठ-आठ वयस्क बेटों की मां है, मेरी ओर लंगड़ाती बढ़ आयी। उसके सफ़ेद होंठों पर मैंने पढ़ लिया: "वह मर गयी!"

मेरी मां की जीवन-यात्रा समाप्त हो चुकी थी। आज मैं जितनी उम्र का हूं, वह उस समय इससे ज़्यादा जवान थी यानी उस उम्र में थी जब जीवन अभी शुरू ही होता है, ऐसा प्रतीत होता कि अभी तो सब कुछ भविष्य के गर्त में ही है।

...मेरी पहली कायरता। ओह, मुझे आज भी पूरी तरह याद है!

मेरी मौसी जिसकी आंखें रोते-रोते सूज गयी थीं और आवाज़ कुछ-कुछ अजीब व गहरी हो गयी थी, मुझसे बोली: "सीधे अस्पताल चले आओ! तुम्हारी मां तुम्हें देखना चाहती है।"

मैं जानता था, मां को वार्ड से हटाकर हॉल के एक पार्टीशन-दार केबिन में ले जाया गया था जिससे कि दूसरे मरीज़ उसे मरते न देख सकें।

मौसी ने कहा: "वह मर रही है, वह तुमसे विदा लेना चाहती है।"

लेकिन मैं नहीं गया। मैं भयभीत था।

मैं मरते हुए आदमी को देखने से भयभीत था।

मैं नहीं जाऊंगा!

मैं पत्थर की तरह अपनी जगह अड़ा ख़ामोश था।

मुझे वह अपने पंजों में जकड़ लेनेवाली दिख रही थी। वह मौत जो मेरी मां के आस-पास चक्कर लगा रही थी।

कहीं वह मुझे दबोच ले तो (कौन मुझे दबोच लेगी? मौत? मेरी मां? भय के कारण दोनों ही मेरे लिए एक हो गयी थीं) और आदेश दे: "तू भी आ जा!"

लेकिन मैं यह नहीं चाहता!

मैं भयभीत हूं।

विमूढ़कारी, ऐन्द्रिक भय।

संज्ञाहीनता।

...मेरी पहली चिन्ताएं... वे एक साल तक रहीं, मेरी पहली चिन्ताएं।

काम से घर लौटते समय हमारी सड़क की सीधी चढ़ाई चढ़ना

भी मां के लिए मुश्किल हो गया था। अंधेरा घिर आया था। युद्ध के कारण बत्तियां गुल थीं। सड़क पर कोई हमला कर सकता था या तो अपमानित कर सकता था। लेकिन मुख्य बात थी उसके दिल की बीमारी। मां की बग़ल में चलते समय मैंने उसके दिल की धड़कनें सुनी थीं और उसकी स्थिति भी भांप ली थी – मुझे लग रहा था कि दिल पूरे सीने में फैलकर बड़ा हो गया था, भरपूर जगह व हवा के लिए लालायित, थका-हारा।

मां प्रसूतिगृह से बाहर आती थी जहां वह काम करती थी। वह मुझे दरवाज़े पर ही मिल जाती थी। फ़ौरन ही झुककर वह मेरा हाथ थाम लेती और हम प्रसूतिगृह की दोमंज़िली इमारत के उद्यानों के सामने से धीरे-धीरे आगे बढ़ने लगते। और संकरे बेसिन मार्ग पर स्थित ट्राम स्टॉप तक हमें आयोडिन की गन्ध मिलती रहती।

ट्राम से हम बस दो ही स्टॉप जा सकते थे। हम शोरगुल, भीड़-भाड़ और धूल भरे बाज़ारनी मार्ग पर ट्राम से उतरते और काफ़ी देर तक, मां के लिए तो वे दुखदायी लम्बे क्षण होते थे, ऊपर को चढ़ती सड़क पर चलते रहते। उसे तब स्ताराया पोच्तोवाया मार्ग कहा जाता था। हम अंधेरी खिड़कियोंवाले एकमंज़िले मकान के पास से, लगभग दीवारों से सटते हुए आगे बढ़ते रहते क्योंकि पैदल मार्ग बड़ा ही संकरा था। बहुत खुश होते हुए हम कसुम – इज़माइलोव मार्ग को पार करते और एक बड़े-से, पुराने फ़ैशन के मकान के सामने रुक जाते। अपने नीले पड़े होंठों से माँ कुछ कहना चाहती थी लेकिन कह न सकती, सांस लेने में असुविधा के कारण वह खड़ी हो जाती – सिर लटकाये, पत्थर की दीवार को थामे। मैं उससे हटकर एक ओर खड़ा हो जाता जिससे कि हवा उस तक आराम से पहुंच सके, जिससे कि उसके बीमार दिल को अपनी उपस्थिति से बोझिल न करूं। हम लगभग अपनी मंज़िल पर पहुंच जाते थे। आखिरी चरण सिर्फ़ एक ब्लाक तय करना बाक़ी रह जाता था। वह अपना सिर ऊपर उठाती और मैं भांप लेता कि वह खुद से कह रही थी कि बाक़ी रास्ता तय करने के लिए उस में काफ़ी दम-खम है, वह अपने दिल को सान्त्वना दे रही थी, उसे उस वक्त की याद दिला रही थी जब वह उसके क़ाबू में था और यह

मामूली-सी चढ़ाई पूरी करना उसके लिए बड़ा आसान था, इसमें दिल को कोई ताक़त लगाने की ज़रूरत भी न थी।

एक बार फिर हम धीरे-धीरे आगे बढ़ चलते और मैं जानबूझकर छोटे-छोटे डग भरता था ; उस एक साल में मैंने धीमे से धीमे चलने की कला में पूरी महारत हासिल कर ली थी। अच्छा हो कि मां सोचे, मैं नहीं, वह खुद जल्दी कर रही है।

हम एक और मार्ग पार करते थे – पोलुखिन मार्ग। वहां, वह रही अर्द्धवृत्ताकार बालकनीवाली हमारी इमारत, हमारा लोहे का बड़ा-सा फाटक – बाकू में न जाने कितना लोहा है! फाटक से सीढ़ियों तक के रास्ते से मैं पूरी तरह परिचित हूं – बीच में पड़नेवाली हर एक-एक चीज़ से ; अगर ठीक से बन्द न किया जाये तो टोंटी से बहकर पानी कहां जमा हो सकता है, मैं जानता हूं ; मैं जानता हूं कि कहां क़दम लम्बे और कहां छोटे रखे जायें जिससे कि बालकनी के नीचे एकदम खिड़की के पास बाहर को निकले मोरी के गोल ढक्कन से टकराकर लड़खड़ाने से बचा जाये ... रास्ते के इस हिस्से को मैं आंखें बन्द करके तय कर सकता हूं।

और यह रहीं रेलिंगें जो छूने पर हिल उठती हैं। उन्हें थाम कर मां एक बार फिर चुपचाप खड़ी हो जाती है जिससे कि सांस बटोर कर आखिर तीस सीढ़ियां तय कर सके।

घर पहुंचकर मां तेज़ी से अपने हाल पर क़ाबू पा लेती थी। घर घर है। हृदय को राहत पहुँचाने के लिए वह अपने प्रिय कोच पर लेट जाती है जिससे हृदय अपनी जगह लौट जाये और सीने को फाड़कर बाहर निकलने की कोशिश न करे।

... मेरा पहला क्रोध ...

मुझे वह अब भी कभी-कभी महसूस होता है। वह आदमी भी अब तक ज़िंदा है, जिस पर मुझे क्रोध आया था – मां के चाचा अब्दुल।

उम्र के साथ वह सूखा ढांचा भर रह गये हैं और सूखी खांसी उनके ढांचे को हिलाती रहती है। मुझे वृद्ध के लिए दुख है – कितने कमज़ोर व बीमार हैं। वह अस्सी पार कर चुके हैं। मेरी मां के चाचा कभी-कभार ही शहर आते हैं। वह बाक़ू के परिसर में, एक भूतपूर्व

जागीर के एक मकान में रहते हैं। जागीर में कभी आधा गांव था। बाग़ में एक विशालकाय शहतूत का पेड़ है। वह डेढ़ सौ साल पुराना और शायद उस इलाक़े का सबसे बड़ा पेड़ है। काले शहतूत बड़े-बड़े, रसीले और बड़ी मक्खियों की तरह रोयेंदार होते हैं।

हम एक-दूसरे से सौजन्य के साथ इधर-उधर की बातें, अगली मुलाक़ात तक की बातें करते हैं; मुलाकात जितने कम समय की हो उतना बेहतर और हमारी मुलाक़ात जितनी कम हो उतनी ही अधिक शान्ति रहेगी, और मेरा दिल लहकने लगता है ग़ुस्से से नहीं बल्कि दुख से और मानव प्रकृति की दुर्बलताओं से।

ग्रीष्म के आते ही बाकू अतिशय गर्म होने लगा। उसी साल लड़ाई ख़त्म हुई थी और मां को पहली छुट्टियां दी गयी थीं। लेकिन बीमार दिल को लेकर कोई जाये तो कहां ?

हम अब्दुल की ख़िदमत में जा पहुंचे।

नहीं, नहीं, दूसरी मंज़िलवाले कमरे पर हमारी कोई नज़र न थी। पैसे दिये बिना हम अंगूर नहीं खायेंगे। हमें सिर्फ़ वह कमरा चाहिए जो कुएं के निकट है। वह एकान्त में है, वहां कोई नहीं रहता। वहां घर के काम आनेवाले छोटे-मोटे साज़-सामान पड़े हैं जो आसानी से हटाकर खलिहान में रखे जा सकते हैं: एक कुदाल है, सब्बल है, आरी है, एक पीपा है – बस।

तेवर चढ़ाये चाचा बीवी की ओर देखते हैं जो अपने से बातचीत करनेवालों की ओर चेहरे पर ऐसी अभिव्यक्ति लाते हुए देखती है मानो उसके सामने कोई नीबू खा रहे हो।

चाचा व उनकी बीवी बात मानने से इनकार न कर दें, इस डर से मां पैसों के बारे में बातचीत शुरू कर देती है हालांकि पैसे... और चाचा कहते हैं कि उन्होंने यह कमरा एक "धार्मिक" आदमी को देने का वायदा कर रखा है जो इमाम गुस्सेइन की ज़ियारत करने कभी केर्बेला गया था; इस यात्रा के बारे में, इमाम गुस्सेइन के बाप इमाम अली के बारे में और कमरे की पेशगी के बारे में कहानी बड़ी लम्बी है... पेशगी की रक़म तीन अंकों में थी! "कोई ज़्यादा रक़म नहीं," चाचा कहते हैं, "लेकिन हम उसे ख़र्च कर चुके हैं..."

और मां वह रक़म देने का वायदा कर लेती है।

अश्रुसिक्त, शोकातुर स्वर में चाचा की बीवी बताती हैं कि उन्हें केवल पेशगी की ही चिन्ता नहीं; उन्होंने उस रक़म से एक माली को भाड़े पर रखने की उम्मीद भी बांध रखी थी क्योंकि जो अंगूर मां ख़रीदना चाहती थी, उसे पैदा भी तो करना होगा... मां इसके लिए भी पैसे देने का वायदा करती है। मैं अब्दुल की ओर भयावह घृणा से देखता हूं और उम्मीद करता हूं कि वह मेरी नज़र भांप लेगा। लेकिन मैं बोलता कुछ भी नहीं। अपने से बड़ों की बातचीत में दख़ल देना उचित नहीं। वह मेरी ओर देखते भी नहीं।

कमरे के किराये के लिए मां ने अपना झालरदार रेशमी शॉल बेच दिया – पिताजी से मां को मिलनेवाला यह पहला उपहार था। मां ने दहेज में मिली मोतियों की एक माला भी बेच दी।

उस साल गर्मियों में जो उसके जीवन की आख़िरी ग्रीष्म ऋतु थी, मां का स्वास्थ्य अच्छा रहा। एक बार तो वह दीवार के बाहर निकले पत्थरों को पकड़ते हुए, सावधानी से दूरी माप कर क़दम रखते हुए बालकनी की रेलिंगों पर चढ़कर दूसरी मंज़िल तक जा पहुंची। बालकनी में पहुंचकर वह ठीक से सीधी खड़ी हुई और ललाट से बालों को पीछे खिसकाकर काफ़ी देर तक समुद्र पर अपनी नज़रें टिकाये रही। फिर उसने मेरी ओर शान्त, लगभग निरुद्देश्य दृष्टि से देखा।

कुछ ही दिनों में दूसरा दौरा पड़ा; हम शहर लौट आये और वह अस्पताल में दाखिल हो गयी...

वहां जा बसने से पहले मैंने अब्दुल को पैसे दे दिये थे। उनका घर क़िले में है, बाकू के सबसे संकरे मार्गों में से एक पर। वे अपने मकान से जाड़ा बिताने आज भी शहर आते हैं; हमेशा की तरह वही अस्सी साल का बूढ़ा और उसकी बीवी। उनके चेहरे पर ऐसी तिक्त अभिव्यक्ति उस समय भी होती है जब वे सबसे मीठे मुरब्बे, अंजीर के मुरब्बे के बारे में बातें करते हैं।

...मुझे सबसे पहली बार पिता ने अपमानित किया... मेरा गला सूज गया था। कुछ निगलने में भी दर्द होता था। अपमान इतना बड़ा था कि नज़रअन्दाज़ नहीं किया जा सकता।

हम सड़क पर चले जा रहे थे, मेरी मां, मेरी पड़ोसन और मैं।

अचानक मां पीली पड़कर रुक गयी। प्रादेशिक कार्यकर्त्री हमारी पड़ोसन अपनी तेज़ आवाज़ के लिए मशहूर थी। उस दिन मैं महसूस करता था कि सारी सड़क में उसकी आवाज़ सुनाई दी होगी जब उसने कहा था: "मूरख कहीं की! उस जैसी पुंश्चली के लिए ख़ुद को परेशान करने की क्या ज़रूरत है! तुम्हारी हालत बड़ी ख़राब लगती है!"

जैसे उसकी बात सुनाई ही न दी हो, मां सीधे आगे की ओर देखती रही।

पड़ोसन का दिल उतना ही कहकर भरा नहीं था। "अगर तुम चाहती हो तो मैं पीछे से जाकर उसे एक लात जमा आऊं। जमा आऊं? तुम बस हां कह दो।"

मां ने चुपचाप हाथ से सीना दबा लिया। उसी बदनसीब दिन से मां का दिल जवाब देने लगा...

पिता रात को उस दिन घर नहीं आये। इधर कुछ समय से वह घर देर से आने लगे थे और छोटी-छोटी बातों पर ख़फ़ा हो जाते थे। किसी भी चीज़ से वे सन्तुष्ट नहीं हो पाते थे। किसी ने चुपके से बताया था कि उन्हें किसी सुनहरीबालोंवाली सुन्दरी के साथ देखा गया है फिर हमें उसका पता बता दिया गया।

एकदम भिनसार मां घर से निकल पड़ी। उसने बिना दस्तक दिये दरवाज़ा खोल दिया।

बिस्तरे के नीचे लटकते पैरों में पिता बूट डाल रहे थे। सुन्दरी नाश्ते की मेज़ के पास खड़ी थी... पहली बार मां के दिल को धक्का लगा।

...हमारे आगे-आगे चली जा रही यह वही सुन्दरी थी। वह चल रही थी और मैं कल्पना करता था कि हमारी पड़ोसन कैसे चुपके से जाकर उसे लात मारती है।

मुझे ऐसा लगता था जैसे मैं अपनी आंखों से पिता जी को बूट पहनते देख रहा हूं। और मेरे गले में पीड़ा थी। मैं अच्छी तरह निगल सकूं, इसके लिए सूजन का दूर होना ज़रूरी था। लेकिन आंसुओं के बिना सूजन जा कैसे सकती है?

यह मेरा पहला अपमान था। अब यह जा चुका है। सिर्फ़ शोक बचा हुआ है क्योंकि शोले बुझ चुके हैं, लहकते कोयले कब के बुझ चुके हैं...

...नहीं, नहीं! यह क्रूरता है। उसे भुलाया भी नहीं जा सकता। मुझसे यह क्रूरता कैसे दिखायी गयी? उसकी याद न करूं, क्या?

"मैं अपनी क्रूरता के बारे में बताये बिना कैसे रह सकता हूं?"

"तो फिर बताओ!"

मैं नहीं जानता, सुदूर अतीत के उस दिन मेरे मुंह से वे शब्द कैसे फूट पड़े थे। आज भी वे शब्द मेरे हृदय में चुभते हैं।

घर लौटते समय रास्ते में मां ने रोटी का एक टुकड़ा खा लिया था। वही काली रोटी जो हमें लड़ाई के समय मिलती थी। जब मुझे रोटी का एक टुकड़ा ग़ायब दिखाई दिया, मैं ज़ोरों से चिल्ला पड़ा: "तुमने रास्ते में रोटी खा ली। पहले रोटी बांटनी चाहिए थी!"

मां ने मेरी ओर देखा, उसकी आंखों में ख़ौफ़ भरा था। हमारे कमरे में एक ऐसी ख़ामोशी छा गयी जो मुझे भयभीत करने लगी। मेरे शब्द मां के लिए बहुत भारी साबित हुए थे। वह शान्ति से बोली: "अगर हम रोटी बांटने लगे तो मेरा दिल धड़कना बन्द कर देगा।"

"मैं भी ऐसा नहीं चाहता," मैं बुदबुदाया। लेकिन इसके बावजूद मां ने उस दिन रोटी को दो हिस्सों में बांट दिया और अपने हिस्से का भी आधा मुझे दे दिया। मैंने उसके टुकड़े को छूआ तक नहीं।

"बहुत ख़ूब!"

"मैंने रोटी उसे लौटा दी... अपने मृत पिता की क़सम देकर मैंने उसे रोटी का वह टुकड़ा खाने को मजबूर कर दिया।"

"लेकिन शब्द तो मुंह से निकल चुके थे।"

"उसने मुझे माफ़ कर दिया।"

"लेकिन मैं अपने को माफ़ नहीं कर पाता!"

...बस यही सब है मेरा बचपन। मेरे वयस्क जीवन की पहली बात क्या थी? बहुत-सी। लेकिन इन सब का अपना राग-रंग है। फिर भी...

मैं अपनी पहली ईर्ष्या के बारे में बताऊंगा। बार-बार यह मेरे मन में नये ढंग से पैदा होती है।

मैं अपने बेटे से ईर्ष्या करता हूं। उसकी मां है, कंचन-सी गूंजती आवाज़वाली नौजवान, सुगठित।

मेरी मां की तरह। लेकिन मेरी नहीं!..

अनार रज़ायेव

(जन्म १९३८)

अज़रबैजानी लेखकों की युद्धोत्तर पीढ़ी के सर्वाधिक प्रतिभाशाली प्रतिनिधियों में एक। अपनी हृदयग्राही, विशिष्टतापूर्ण कहानियों तथा लघु उपन्यासों के कारण इन्हें शीघ्र ही राष्ट्रीय मान्यता प्राप्त हो गयी।

इनकी शैली समृद्ध एवं अनाग्रही है। अनार गीत्यात्मक, रोमाण्टिक लाक्षणिक्ताओं तथा यथार्थ-वादी विषयवस्तुओं को साथ-साथ गुम्फित करते हैं।

सर्वाधिक विविधतापूर्ण व्यवसायों में काम करनेवाले लोगों की अनुभूतियां, उनके विचार, उनके दृष्टिकोण अनार को सबसे अधिक प्रेरित करते हैं। अपनी सूक्ष्मदर्शी आंखों के कारण ही अनार रज़ायेव जीवन के जटिल चित्रण में सफल रहते हैं। इस चयनिका में संकलित उनकी कहानी "साल की आखिरी रात" लेखक के कृतित्व की विशिष्टता प्रकट करती है। अनार एक जागरूक आलोचक, वृत्तकार तथा पटकथा लेखक हैं।

अनार रज़ायेव

साल की आख़िरी रात

साल की आख़िरी शाम के लगभग नौ बजे थे, गामिदा-ख़ाला रसोई में व्यस्त थीं। तोफ़िक टेलीफ़ोन व रसोई के बीच बार-बार दौड़ रहा था और मां को नये-नये समाचार बता रहा था।

"मां, सेइरान भी आ रहा है!"

"कौन-सा सेइरान?"

"तुम्हें याद नहीं? तुम्हें तो वह बड़ा अच्छा लगता था। तुम कहती थीं, वह हमेशा एकदम साफ़-सुथरा रहता है। तुम मेरा मतलब समझीं?"

"अ-अच्छा! वह लड़का। बहुत अच्छा।"

तोफ़िक़ उतावलेपन से नाच रहा था; आधी रात में वयस्कों की सचमुच की नये साल की पार्टी मनाने का मौक़ा चौदह साल में पहली दफ़ा मिले तो कौन लड़का नहीं उतावला होगा? स्कूल के उसके सारे दोस्त आ रहे थे। तीन महीने पहले से नये साल पर इकट्ठे मिलने की बात चल रही थी।

"मेरे यहां आओ," तोफ़िक ने सलाह दी। "मां के अलावा वहां कोई न होगा और मां हमेशा जल्दी सो जाती है।"

"और तुम्हारे बड़े भाई-बहन?"

"अरे, वे कहीं न कहीं बाहर चले जाते हैं।"

तोफ़िक़ ने बड़े राज़ की बात मां से बतायी: पार्टी में लड़कियां भी आयेंगी, मां-बांप से इजाज़त ले चुकी हैं।

"और वासिफ़ की बहन भी शायद आ सकती है। हमारी क्लास में तो नहीं पढ़ती लेकिन अपने भाई के साथ आ सकती है। क्यों, आ सकती है न?"

"ज़रूर आ सकती है, स्वागत है," मुस्कान छुपाते हुए मां बोली।

"खाने-पीने की चीज़ें कम तो नहीं पड़ेंगी?" तोफ़िक़ ने चिन्ता प्रकट की।

"नहीं, बहुत हैं, ज़रूरत से ज़्यादा। दर्जन भर लोग और खा सकते हैं। तुम चिन्ता न करो, कोई भूखा नहीं रहेगा।"

तोफ़िक़ दौड़कर टेलीफ़ोन के पास आ गया, कभी इसको, कभी उसको फ़ोन किया, किसी दूसरे से काफ़ी देर तक गरमागरम बहस करता रहा। फिर किसी ने फ़ोन किया और ढेर-सी बातें होती रहीं। सब को एक जगह जुटाना सचमुच कठिन काम था। कोई जल्दी आना चाहता था, कोई देर से, कोई बहुत दूर रहता था, चौथे का पता नहीं मालूम था और पांचवें ने आने का विचार ही टाल दिया था। लेकिन लड़कियों ने सबसे ज़्यादा मामला बिगाड़ा था।

"ओह, लानत है, मां, फ़रानगीज़ कह रही है कि वह नहीं आ पायेगी।"

"क्यों?"

"कह रही है कि वह सोचती थी, यहां सिर्फ़ हम ही लोग होंगे लेकिन अब बड़े भाई-बहन की मौजूदगी में उसे शर्म आती है।"

"तो इसमें हम लोग क्या कर सकते हैं, बेटे?" लाचारी से गामिदा-ख़ाला ने दोनों हाथ फैला दिये।

तोफ़िक़ उस कमरे के दरवाज़े की ओर आंखें तरेरकर देखे जा रहा था जिसमें दिल्यारा और रुस्तम बैठे थे और उठने का नाम ही नहीं ले रहे थे।

"कहां तो घर पर कभी रुकते ही नहीं थे और आज ही परिवार के प्रति सारा प्रेम उमड़ आया है," गुस्से भरे उपहास के साथ तोफ़िक़ बड़बड़ाया।

"हम उन्हें खदेड़ बाहर तो नहीं कर सकते," मां शान्तिपूर्वक बोली।

तोफ़िक़ रसोई से झपटकर बाहर निकला और दुबारा टेलीफ़ोन उठा लिया।

"ऐ, पूरी शाम टेलीफ़ोन को हाथ में उठाये मत रहो," दरवाज़ा खोलकर दिल्यारा ने आवाज़ दी। "हो सकता है, कोई हमें फ़ोन करना चाहे।"

नये साल के मौक़े पर दिल्यारा का घर में रहना सचमुच एक पहेली बना था। वर्षों से कभी ऐसा नहीं हुआ था। और रुस्तम? पिता जी के मरने के बाद से उसे नये साल के मौक़े पर कभी घर पर नहीं देखा गया था।

हां, जब गज़नफ़ार ज़िन्दा था तब सचमुच उनके घर में नया साल मनाया जाता था। पूरा घर लोगों के हंसी-ठहाकों से गूंज उठता था... उसकी मौत के बाद कुछ वर्षों से इस घर में नया साल बड़े शान्त ढंग से आता था। गुल्यारा और रुस्तम अपने-अपने मित्रों की महफ़िलों में जाने लगे थे और गामिदा-ख़ाला, दिल्यारा व तोफ़िक़ जल्दी ही सोने चले जाते थे। फिर दिल्यारा ने भी बाहर जाना शुरू किया। और अब शायद तोफ़िक़ की बारी थी।

बहरहाल, इस समय पूरा परिवार घर पर ही था। लेकिन शायद नहीं। गज़नफ़ार नहीं था। और गुल्यारा भी नहीं थी, वह अपने पति के साथ श्वसुर के यहां जा रही थी। उन्हें एक साथ एक जगह इकट्ठा करना कभी सम्भव प्रतीत नहीं हुआ। हमेशा कोई न कोई ग़ायब रहता।

दीवार घड़ी ने दस बजने की सूचना दी। तोफ़िक़ टेलीफ़ोन पर अपनी कूटनीतिक वार्ताएं समाप्त करके रसोई में लौट आया और बेचैनी से पांवों पर भार बदलते खड़ा हो गया।

"तोफ़िक़, तुम मेहमानों को नहीं बुला पाये?" गामिदा-ख़ाला ने पूछा।

"नहीं, बात है—मेरा मतलब..." तोफ़िक़ अटकता प्रतीत हुआ; फिर वह साभास बोल उठा, "जानती हो, मां, रऊफ़ चाहता है कि हम उसके यहां जायें। उसके मां-बाप कहीं जा रहे हैं... यानी हमारे अलावा वहां और कोई नहीं होगा।"

"बहुत अच्छी बात है, बेटे," बेटे के बाल पर प्रेम से हाथ फेरते हुए गामिदा-ख़ाला बोलीं। "अगर तुम सबने यहीं फ़ैसला किया है तो फिर रऊफ़ के यहां ही चले जाओ, इसमें हर्ज क्या है?"

तोफ़िक़ की आंखें चमक उठीं। यानी मां बुरा नहीं मानेगी!

"सिर्फ़ यह बता दो कि वहां तुम लोग खाओगे क्या?"

"ओह, हम कुछ न कुछ सोच लेंगे," तोफ़िक ने विहसते हुए कहा। "डिब्बाबन्द खाना होगा या और कुछ..."

"डिब्बाबन्द, सच में!" गामिदा-ख़ाला झल्लाकर बोलीं। "अपने साथ थोड़ा पुलाव ले जाओ।"

"ओह, नहीं मां, नहीं। हमें इसकी ज़रूरत नहीं। सच में। और अगर मैं काँख के नीचे पोटली दबाये वहां पहुंचा तो सब मुझ पर हंस पड़ेंगे।"

गामिदा-ख़ाला अस्पष्ट ढंग से मुस्करायीं।

"ठीक है, जाओ फिर।"

ठीक भी है, उन्हें पुलाव की ज़रूरत क्या थी? डिब्बे खोलेंगे और आज़ाद महसूस करेंगे। यहां उन्हें खाने को शानदार पुलाव मिलता लेकिन वे ख़ुद को बंधा महसूस करते। पुलाव और डिब्बे। अतीत और भविष्य, बुढ़ापा और जवानी.... गामिदा-ख़ाला यही सब सोच रही थीं।

तोफ़िक़ मां को प्यार से बांहों में भरने के बाद घर से बाहर निकल गया।

रुस्तम अपने कमरे में सोया था। कम से कम उसने अपना यही इरादा ज़ाहिर किया था: "मैं सोने जा रहा हूं, मुझे जगाना मत।" गामिदा-ख़ाला को उसके बारे में सब कुछ मालूम था। रुस्तम का अपनी गर्ल-फ्रेण्ड से झगड़ा हो गया था, दोनों में हफ़्ते भर से बातचीत बन्द थी।

दिल्यारा बेचैनी से डोलती फिर रही थी, कुर्सी से मेज़ के पास चली आयी, पुरानी पत्रिकाओं के पन्ने उलटती रही, टेलीविजन चला दिया लेकिन एक आंख लगातार टेलीफ़ोन पर लगाये रही। लेकिन टेलीफ़ोन ख़ामोश था।

गामिदा-ख़ाला रसोई बनाने में लगी थीं।

दरवाज़े की घण्टी बजती है। गामिदा-ख़ाला ने जाकर दरवाज़ा

खोला। वागिफ़ को गोद में लिये गुल्यारा पति के साथ अन्दर चली आयी।

"वाह, स्वागत है।" गामिदा-ख़ाला ख़ुशी से बोल उठीं। "कमरे में चली आओ, मैं पल भर में आती हूं।"

काश, वे लोग पल भर पहले आ जाते तो सारे के सारे बच्चे इकट्ठे यहां जमा हो जाते, वह सोच रही थी। भले ही तोफ़िक़ बाद में चला जाता...

हाथ धोकर गामिदा-ख़ाला जल्दी से बेटी के पास चली आयीं।

"मुझे तो उम्मीद ही नहीं थी... तुम कैसे आ पहुंची... यह न सोचना कि तुम्हें देखकर मैं ख़ुश नहीं।"

"हम तुम्हें नये साल के लिए मुबारकबाद देने आये हैं," गुल्यारा बोली।

फिर दरवाज़े की घण्टी बज उठी। दिल्यारा की सहेली लैला बेदम हुई हड़बड़ाती अन्दर आ गयी।

"ओह, दिल्यारा, हाय, बोला भी नहीं जा रहा!"

"पल भर बैठकर आराम कर लो, जब दम आये तो फिर बातें करना," गामिदा-ख़ाला बोलीं। "क्या कोई बात हो गयी है?"

"नहीं, कुछ ख़ास नहीं," लैला ने सांस छोड़ी। "बस पूरे रास्ते दौड़ी चली आ रही हूं। डायरेक्टर ने कहा, 'चाहे जैसे भी हो तुम्हें दिल्यारा को ढूंढ़ लाना है, उसके बिना हम कंसर्ट नहीं दिखा सकते!' बस मैं दौड़ पड़ी..."

पल भर के लिए दिल्यारा का चेहरा खिल उठा लेकिन उसने उदासीनता का भाव बनाये रखा।

"अरे, सच में? नहीं, शुक्रिया! तो अचानक दिल्यारा की ज़रूरत पड़ गयी। शुरू से ही मुझे कार्यक्रम में शामिल करना चाहिए था। लेकिन अब... मेरे ख़्याल से कोई गच्चा दे गया उन लोगों को, इसीलिए जगह भरने को मेरी ज़रूरत पड़ गयी है।"

"नहीं, बात बिलकुल ऐसी नहीं, इमानदारी से कह रही हूं!" लैला ज़ोरों से बोल उठी। "डायरेक्टर को मालूम ही नहीं था कि तुम्हें कार्यक्रम में शामिल नहीं किया गया है। जब से उसे मालूम हुआ है, खलबली मचाये हैं।"

तो दिल्यारा इसी कारण घर पर थी!

"जाओ, कपड़े बदलो और जल्दी करो," गामिदा-ख़ाला ने कहा। "अब बेकार तड़ंगने का समय नहीं। तुम्हें बुलाने के लिए ही इसे ख़ास तौर से भेजा है–साथ चली जाओ।"

दिल्यारा ने सिर हिला दिया–नहीं, किसी भी तरह नहीं जायेगी लेकिन गामिदा-ख़ाला बेटी को जानती थीं और उसे समझने में उन्होंने कोई ग़लती नहीं की थी। कुछ ही मिनटों के बाद दोनों लड़कियां शोर के साथ अलविदा कहती दौड़कर चलती बनीं।

गामिदा-ख़ाला रसोई की ओर चल पड़ीं। गुल्यारा उनके पीछे-पीछे चली आयी।

"देखो मां, हमें सुलेमान के एक दोस्त ने आमन्त्रित किया है। लेकिन वागिफ़ साथ में है। क्या तुम्हारे पास उसे छोड़ दूं?"

"क्यों नहीं, ज़रूर, उसे यहीं रहने दो, बेटी।"

गुल्यारा ने वागिफ़ को जल्दी से बिस्तरे पर लिटा दिया।

"हम अब चलेंगे, मां। सच कहूं तो मुझे वे लोग एकदम पसन्द नहीं। मुझे तुम्हारे साथ रहना ज़्यादा अच्छा लगता लेकिन–जानती हो, मैं नहीं चाहती कि उन्हें बुरा लगे। इधर आओ मां, मैं तुम्हें चूमना चाहती हूं.... नये साल की तुम्हें शुभकामनाएं।"

"मुबारक हो, गामिदा-ख़ाला," सुलेमान ने कहा।

"शुक्रिया बच्चो। अलविदा। शुभकामनाएं।"

दरवाज़ा बन्द हो गया। गामिदा-ख़ाला रसोई में लौट आयीं और बार-बार होंठों में "शुभकामनाएं, शुभकामनाएं" बोलती और पन्द्रह लोगों के लिए पुलाव बनाने में लगी रहीं। एकाएक उन्हें याद आया: रुस्तम! बेटे के कमरे में जाकर उन्होंने आवाज़ दी।

"रुस्तम! रुस्तम!"

"क्या है?"

"उठो, क्या सोते साल गुज़ारोगे!"

"ओह मां, मुझे अकेला छोड़ दो, कृपया!"

"अब सुनो, जैसा मैं कहती हूं, करो। इसी पल उठो!"

"क्या बात है, मां? मुझे सोने दो।"

"उठो, मुझे तुम्हारी ज़रूरत है। इधर आओ।"

"क्यों, क्या बात है?"

"इधर आओ, मेरी मदद करो।"

अनिच्छापूर्वक रुस्तम बिस्तरे से उठ गया। गामिदा-ख़ाला उसे हाथ से पकड़कर ड्योढ़ी में खींच लायीं।

"टेलीफ़ोन उठाओ और फ़ोन करो।"

"किस के यहां?"

"तुम अच्छी तरह जानते हो!"

"मैं नहीं करूंगा!"

"नहीं, तुम ज़रूर करोगे! तुम हो या कोई और, मेरे बच्चों ने मुझसे कभी बहस नहीं की है। और अगर आज तुमने मेरा कहा नहीं माना तो मैं जीवन भर इसे याद रखूंगी!"

"लेकिन मां..."

"फ़ोन करो! अब और बातचीत नहीं।"

"लेकिन..."

"अगर तुम नहीं चाहते कि मैं बुरा मानूं तो फ़ोन करो। करो तो!"

"ठीक है, करता हूं... लेकिन सिर्फ़ तुम्हें ख़ुश करने के लिए।"

गामिदा-ख़ाला बेडरूम में चली गयी जहां नीन्द में सूं-सूं करता वागिफ़ सो रहा था। उन्हें टेलीफ़ोन के नम्बर घुमाने और रुस्तम की धीमी आवाज़ सुनाई दी।

"हां... मैं हूं।"

पल भर को सर्द ख़ामोशी फिर आवाज़: "सुन ही रही हो।"

फिर ख़ामोशी। व्यंग्यभरी आवाज़: "नहीं, सच में?"

उसने ज़रूर कोई चुभती बात कही होगी, गामिदा-ख़ाला ने सोचा।

"और मैं भी। तुम सौ प्रतिशत पक्का समझो," कान फाड़ती आवाज़ में रुस्तम ने कहा।

नहीं, उन्हें ऐसा बर्ताव आपस में क्यों करना चाहिए? दोनों एक-दूसरे से प्यार करते हैं, गामिदा-ख़ाला दुख से सोच रही थीं।

एकाएक रुस्तम की आवाज़ धीमी होती-होती बुदबुदाहट में बदल गयी। गामिदा-ख़ाला को शब्द समझ में नहीं आ रहे थे लेकिन व्यंग्य व सर्द लहजा जा चुका था। फिर रुस्तम ने दुबारा ज़ोर-ज़ोर से बातें

शुरू कर दीं लेकिन अब गामिदा-ख़ाला जानती थीं, यह उनके सहृदय, स्नेहमय बेटे की आवाज़ थी। वह हंसा और फिर ख़ामोशी छा गयी। लेकिन यह पहली जैसी सर्द ख़ामोशी न थी, इसमें गरमाहट थी, ज़िन्दादिली थी।

उसने जंभाई ली थी, यह जंभाई बड़े आराम की थी, प्रशान्त। फिर उसने सवाल पूछा।

"लेकिन मैं तुम्हारे घर आकर क्या करूंगा?"

यानी वह उसे अपने घर बुलाना चाहती है...

"मैं नहीं आ सकता। जानती हो, मैंने मम्मी से कह रखा है, आज रात घर पर ही रहूंगा।"

गामिदा-ख़ाला उठकर उससे जाने के लिए हां करने को कहना चाहती थीं लेकिन जहां की तहां बैठी रहीं।

"ओह, मुझे नहीं मालूम – सच में। वहां कौन-कौन होगा?"

कुछ कहने की ज़रूरत नहीं। वह ज़रूर जायेगा।

"नहीं, जो भी हो, मेरी वहां जाने की कोई इच्छा नहीं। अगर तुम होतीं और सिर्फ़ तुम्हारा परिवार होता..."

या शायद नहीं जायेगा?

"सच कह रहा हूं, मैं बात नहीं बना रहा हूं। मैं उन्हें सच में पसन्द नहीं करता।"

यानी वह नहीं जायेगा।

"क्या तुम सच में चाहती हो कि मैं आऊं?"

लगता है, जायेगा।

"नहीं, अच्छा होगा कल सुबह में।"

यानी नहीं जा रहा है।

"ओह, ठीक है, ठीक है। अब दुबारा वह सब मत शुरू करो। शायद मैं आ ही जाऊं।"

जायेगा।

"क्या? इस समय कितने बजे हैं? ग्यारह बजकर बीस। अभी आऊंगा!"

जायेगा।

टेलीफ़ोन रखकर वह मां के पास चला आया।

"मां, तुम... देखती हो..."

रुस्तम व तोफ़िक में सात साल का फ़र्क़ है लेकिन जब वे झेंपते हैं तो एक ही तरह। गज़नफ़ार का असर है। जब वह घबड़ाता या परेशान होता था तो उसकी भी छोटी अंगुली हरदम फड़कने लगती थी।

"जाओ बेटे, जाओ। और उससे मेरा प्यार कहना मत भूलना।"

कोट डालते हुए रुस्तम ने पूछा: "हमारे घर के बच्चे सब कहां गये?"

"दिल्यारा स्कूल गयी। उसे कंसर्ट में जाना है। तोफ़िक़ अपने दोस्तों के साथ नये साल की पार्टी में गया है।"

"तोफ़िक और पार्टी! हम काफ़ी आगे बढ़ रहे हैं..."

"क्यों नहीं? लड़का अब बड़ा हो गया है।"

"और तुम एकदम अकेली रहोगी?"

"नहीं, बिलकुल नहीं! देखो, वह रहा वागिफ़ मेरे साथ!" रुस्तम मुस्करा उठा।

"अच्छा ब्वॉय फ़्रैण्ड है, अं?" उसकी मुस्कान फीकी पड़ गयी। "अगर मुझे मालूम होता कि तुम अकेली रहोगी..."

"अकेली क्यों? उस युवती के साथ मेरी ख़ूब निभेगी। हम बातें करेंगे।"

"कौन-सी युवती?" रुस्तम ने हैरानी से पूछा।

"वही, टेलीविजनवाली युवती," गामिदा-ख़ाला ने कहा। रुस्तम हंस पड़ा। "इसके अलावा," गामिदा-ख़ाला आगे बोलीं," तुम तो जानते ही हो कि मैं जल्दी सो जाती हूं। थोड़ी देर यहां बैठूंगी फिर... लौटकर घण्टी ज़ोर से बजाना नहीं तो मुझे सुनाई ही नहीं देगी।"

"हां, मुझे मालूम है, मम्मी। तुम नये साल की रात में भी ज़्यादा देर तक बैठना पसन्द नहीं करती हो।"

निस्सन्देह, रुस्तम भूल गया था कि जब पिता जी ज़िन्दा थे, वे लोग सवेरे तक जागते रहते थे।

वह मां को अलविदा कहकर चला गया।

बारह व्यक्तियों के लिए मेज़ लगायी गयी थी। ख़ाली-ख़ाली कमरे में यह सब बड़ा अजीब लग रहा था। लेकिन इससे भी ज़्यादा अजीब बात थी कि गामिदा-ख़ाला ने एक बड़ी-सी थाली में पुलाव

भरकर मेज़ पर रख दिया और होंठों ही होंठों में बार-बार कहना शुरू किया:

"तुम यहां बैठो, और रागिम व नजीफ़ा उस छोर पर, और तुम, उस्ता, यहां... तैमूर, यहां आकर अपनी बीवी की बग़ल में बैठो और तुम बच्चो, थोड़ा उधर खिसक जाओ। सुल्तान, यह रही तुम्हारी जगह, नये साल के लिए टोस्ट की ज़िम्मेदारी तुम्हारी..."

गामिदा-ख़ाला गुपचुप हंस पड़ीं। "ज़रूर मैं पगला गयी हूं।" वह बाहर बॉलकनी में जाकर खड़ी हो गयीं। ख़ामोशी, सूनापन। क्या इस समय बाहर सड़क पर भी कोई दिखाई दे सकता है? अभी वह इसके बारे में ठीक से सोच भी नहीं पायी थीं कि उन्हें दो आदमी दिखाई दे गये। वे दूकान से बाहर निकले थे। उनके हाथों में पार्सल भरे थे। वे जल्दी-जल्दी ठहाके लगाते कहीं चलते बने। गामिदा-ख़ाला लौटकर कमरे में चली आयीं। उन्होंने टेलीविजन चला दिया। पर्दे पर एक लड़की दिखाई दी।

टेलीविजन के क़रीब एक कुर्सी खींचकर गामिदा-ख़ाला बैठ गयीं।

"आओ प्यारी, हम दोनों बातचीत करें। तुम ज़रूर इन सारे प्रसारणों से थक गयी होगी? हर कोई नया साल मना रहा है और तुम यहां हो!"

"जाते साल की सर्वाधिक महत्वपूर्ण सांस्कृतिक उपलब्धियों में एक थी तरुण संगीतरचनाकार युसिफ़ोव की बैले रचना," पर्देवाली लड़की ने कहा।

गामिदा-ख़ाला तरुण संगीतरचनाकार युसिफ़ोव के बारे में सोचने लगीं। वह तरुण संगीतरचनाकार अपने मित्रों के साथ हंसी-खुशी मना रहा है और तुम्हारी बातों को सुन भी नहीं रहा है। मेरे ख़्याल से इस समय शायद ही बहुत से लोग टेलीविजन देख रहे होंगे। और फिर वह उस लड़की से बोलीं, "तुम भी प्यारी, घर चली जाओ। हमारी सांस्कृतिक उपलब्धियों के बारे में कल बताना। वे रात में कहीं ग़ायब नहीं हो जायेंगी।"

"हमारे चित्रकारों ने भी कला की अनेक अनुपम कृतियां बनायीं," लड़की ने आगे कहा।

"बारह बजने में बीस मिनट बाक़ी हैं। अगर टैक्सी ले लोगी

तो ठीक समय पर पहुंच जाओगी। लोग वहां तुम्हारी राह देख रहे हैं... ज़रूर कोई तुम्हारी राह देखता होगा। तुम जवान हो, सुन्दर हो। ज़रूर तुम्हारा कोई ब्वॉय फ़्रेण्ड होगा। बेचारा अकेला बोर हो रहा होगा। मैं ठीक कह रही हूं, प्यारी।"

"गड़ेरियों को समर्पित फ़ाज़िलोव की कृति अत्यन्त मौलिक तथा स्वाभाविक है..."

"ठीक , ठीक है। उसे अत्यन्त मौलिक और स्वाभाविक होने दो लेकिन तुम जल्दी करो। वह नौजवान तुम्हें देखकर कितना खिल उठेगा। तुम्हारे बाल चूम लेगा। तुम्हारे बाल सचमुच बड़े ख़ूबसूरत हैं। भले ही इस समय पूरा का पूरा बाकू तुम्हें देख रहा हो, तुम उसके साथ ज़्यादा ख़ुशी महसूस करोगी। ठीक है कि नहीं?"

"नयी फ़िल्मों में..."

"मैं समझती हूं, बेटी। तुम्हारा काम ही ऐसा है। तुम छोड़कर जा नहीं सकतीं। लेकिन यह बड़े दुख की बात है कि आज की शाम..."

आज की शाम और कौन अकेला हो सकता है। गामिदा-ख़ाला ने मन ही मन में सवाल किया। फिर ख़ुद ही उन्हें याद आ गया: सूचना देनेवाली टेलीफ़ोन ऑपरेटर।

गामिदा-ख़ाला ने जाकर ०६ पर फ़ोन किया। ज़ोरदार पिप-पिप की आवाज़ आयी। व्यस्त थी लाइन। उन्होंने दुबारा फ़ोन किया। एक महिला की आवाज़ सुनाई दी: "सूचना आफ़िस।"

"नमस्ते, बिटिया।"

"कौन-सा नम्बर?"

"मैंने कहा नमस्ते। नया साल मुबारक हो।"

"शुक्रिया!"

"क्या तुम अकेली हो? तुम्हें बड़ी बोरियत महसूस हो रही होगी?"

"आप कौन बोल रही हैं?"

"एक औरत।"

"अरी वाह, राया! मैं तुम्हारी आवाज़ ही नहीं पहचान सकी। क्या सब ठीक-ठाक है? तुम किसके साथ हो?"

"नहीं, यह राया नहीं। तुम मुझे नही जानतीं।"

"फिर तुम्हें चाहिए क्या?"

"कुछ भी नहीं। मैं तुम्हें शुभकामनाएं देना चाहती थी और पूछना चाहती थी कि आज रात में तुम्हें कैसा महसूस हो रहा है।"

"शुक्रिया," ऑपरेटर रुखाई से बोली," मेहरबानी करके लाइन व्यस्त न रखिये। नया साल अभी शुरू नहीं हुआ और आप लगता है... पहले ही..."

गामिदा-ख़ाला ने हंसकर टेलीफ़ोन का चोंगा रख दिया।

टीवी के पर्दे से लड़की जा चुकी थी। टीवी का कार्यक्रम समाप्त हो चुका था। बाकू के समय के अनुसार नया साल आ चुका था। पर्दे पर से लड़की के ग़ायब हो जाने के कारण गामिदा-ख़ाला को थोड़ी उदासीनता महसूस हुई। लेकिन थोड़ी देर बाद ही रुस्तम ने फ़ोन करके शुभकामनाएं दीं, फिर उसके बाद तोफ़िक ने। फिर गुल्यारा ने भी फ़ोन किया और लड़के के बारे में पूछा। सिर्फ़ दिल्यारा ने फ़ोन नहीं किया, शायद स्कूल में टेलीफ़ोन तक पहुंचना मुश्किल ही था।

गामिदा-ख़ाला ने रेडियो चला दिया लेकिन हल्का संगीत उनके मिज़ाज के माफ़िक न था। उन्हें गायक बियुलबियुल के गीत बहुत पसन्द थे और उनके घर में उसके गानों के अच्छे-ख़ासे टेप थे। गामिदा-ख़ाला ने टेप-रिकॉर्डर चला दिया।

आदमी जीवन के आख़िरी सिरे पर पहुंचकर सिर्फ़ मशीनों के साथ अकेला क्यों रह जाता है?.. लेकिन उन्होंने यह उदासीनतापूर्ण विचार दिमाग़ से बाहर निकाल दिया। नहीं, यह मेरी भूल है। मैं सिर्फ़ मशीनों के साथ अकेली नहीं। मेरे बड़े शान्दार बच्चे हैं। और वे सब के सब मुझसे प्यार करते हैं... एकाएक एक अजीब विचार में वह जकड़ गयीं। उन्हें गज़नफ़ार की आवाज़ सुनने की ख़्वाहिश हो आयी। उन्होंने यह विचार मन से निकाल देने की कोशिश की लेकिन असफल रहीं। बात यह थी कि गज़नफ़ार ने एक बार अपनी आवाज़ टेप की थी। उसकी मृत्यु के बाद कोई भी उसे सुनने की हिम्मत नहीं जुटा पाया था। इस समय उस आवाज़ को सुनने की उनकी इच्छा अत्यन्त बलवती हो उठी।

अपने को रोक पाने में असमर्थ गामिदा-ख़ाला ने उठकर वह अनमोल टेप बाहर निकालकर चला दिया।

ठहाके, हंसी-कल्लोल; उसे अपनी व बच्चों की आवाज़ें सुनाई दीं। फिर अचानक ख़ामोशी छा गयी और गज़नफ़ार की मखमली आवाज़ सुनाई दी।

"सुनो, गामिदा...."

उनकी सांस रुक गयी, झुरझुरी-सी हो आयी। ऐसा प्रतीत होता था मानो गज़नफ़ार दूसरी दुनिया से उनसे बातचीत कर रहा हो।

"न मैं कवि हूं, न दार्शनिक। मैं एक मामूली मज़दूर हूं। यह ज़रूर है कि मैंने कुछ हद तक नाम कमा लिया है। अगर पांच आदमी इकट्ठे होंगे तो उनमें से एक कम से कम मुझे ज़रूर जानता होगा। लेकिन इसके बावजूद मैं एक मामूली आदमी हूं और अपनी अक़्लमन्दी का बखान करने या दर्शन झाड़ने का मेरा कोई इरादा नहीं। लेकिन मैं जीवन को थोड़ा-बहुत जानता हूं। कहूं तो मैं इसे भीतर-बाहर से देख चुका हूं और मैं तुम्हें एक बात बताना चाहता हूं... ऐसा दिन आयेगा जब मैं यहां मौजूद नहीं रहूंगा..."

गामिदा की ज़बर्दस्त एतराज़ भरी आवाज़ें सुनाई दीं।

"बस करो! भगवान के लिए चुप रहो! मैं तुम्हारे बिना एक दिन भी ज़िन्दा नहीं रहना चाहती!"

उस समय यह शब्द कितने स्वाभाविक थे, वे एक सहज, अविवादास्पद सच्चाई को प्रकट करते थे।

गज़नफ़ार का ठहाका सुनाई दिया।

"ठीक है, ठीक है, श्रीमतीजी, चालीस साल – या पचास साल के बाद... लेकिन वह दिन आयेगा जब मैं चल बसूंगा..."

"गज़नफ़ार!"

"अब बीच में टोको मत! मुझे अपना शानदार भाषण ख़त्म करने दो!" गज़नफ़ार दुबारा ठहाका लगाकर हंस पड़ा। "तब मैं तुम्हारे पास अपना एकमात्र ख़ज़ाना छोड़ जाऊंगा – यानी बच्चों को। हां, अगर मेरी मौत पहले नहीं होती तो मैं उन्हें ख़ुद पाल-पोसकर बड़ा करूंगा। लेकिन अगर मैं मर गया तो यह काम तुम करोगी। ज़रूरी नहीं कि वे एकदम डॉक्टर, इंजीनियर या वैज्ञानिक ही बनें। जो वे चाहें, उन्हें बनने दो। मुख्य बात यह है कि वे अच्छे आदमी, ईमानदार आदमी बनें।"

"और तब गामिदा, एक दिन ऐसा आयेगा जब वे घोंसले के पंछी की तरह बड़े होकर उड़ जायेंगे। लेकिन तुम यह मत सोचना कि तुमने उन्हें गंवा दिया है, खो दिया है। याद रखना, वे चाहे जहां भी होंगे, जैसे भी माहौल में होंगे, जैसे भी परिवार में होंगे, वे अपने साथ-साथ कुछ मेरा, कुछ तुम्हारा ले जायेंगे, ठीक उसी तरह जैसे हमने अपने मां-बाप से कुछ न कुछ ग्रहण कर लिया था।

"तुम कहोगी, आख़िर गज़नफ़ार ने दर्शन झाड़ना शुरू ही कर दिया? लेकिन यही सच्चाई है, जीवन में कभी कुछ न ख़त्म होता है, न नष्ट, कोई आदमी कभी भी मरता नहीं। कोई एक आदमी जो कुछ शुरू करता है, दूसरे उसे ही जारी रखते हैं। अच्छाई है और बुराई पीढ़ी-दर-पीढ़ी हासिल होती रहती है। गामिदा, हम दोनों ने हमेशा नेक जीवन बिताया है, अपनी रोटी अपने हाथों से मेहनत करके खायी है। हमारे दोनों के जीवन में जो कुछ भला व नेक है, बच्चों को अपने-अपने नये जीवन में ग्रहण करने दो, अपने साथ ले जाने दो..."

यहीं टेप समाप्त हो गया... इतनी ही बातें रिकॉर्ड की गयी थीं... टेप के साथ ही गज़नफ़ार का भी अवसान होता था। निस्सन्देह, वह टेप दुबारा सुन सकती थी लेकिन गामिदा-ख़ाला चाहे उसे जितनी बार भी सुनें, गजनफ़ार आगे कुछ भी नहीं बोलेगा। उन्हें इसके लिए दुख नहीं था। उन्होंने मेज़ की ओर देखा लेकिन उसे उसी तरह रहने दिया। वागिफ़ की बग़ल में लेटकर उन्होंने उसके काले-काले बालों को धीमे-धीमे थपथपाते हुए अपने होंठ उसके गर्म ललाट पर रख दिये।

एल्चिन

(जन्म १९४३)

एल्चिन की पहली कहानी १९५९ में छपी थी जब वह स्कूल में ही पढ़ते थे। उनकी कहानियों का पहला संग्रह १९६६ में छपा। उनकी अनेक कहानियां अखिल-सोवियत तथा जनतन्त्रीय पत्र-पत्रिकाओं में छप चुकी हैं, दो लघु उपन्यास अलग-अलग प्रकाशित हुए हैं।

एल्चिन हमारे समकालीनों के बारे में लिखते हैं। वह अपने पात्रों के आन्तरिक जगत में गहरी दिलचस्पी रखते हैं, सूक्ष्मदर्शी हैं और सामाजिक तथा नैतिक समस्याओं के प्रति ध्यान देते हैं।

एल्चिन आलोचना के प्रति भी गहन जागरुकता रखते हैं। उन्होंने समकालीन एवं क्लासिकी साहित्य के सर्वथा भिन्न-भिन्न पहलुओं के बारे में लेख व पुस्तकें लिखी हैं।

एल्चिन

टेलीग्राम

मेरे ख़्याल से उसे ख़ुश करने के लिए मैं बहुत दिलचस्प और मज़ाक़िया बातें कह रहा था लेकिन नतीजा वही टाँय-टाँय फिस। आख़िर मैंने पूछा: "आज तुम कुछ बोलोगी भी या यूं ही ख़ामोश रहोगी?"

नीली आंखों से मेरी ओर देखकर वह कोमलता से मुस्करायी लेकिन मैं परेशान हो उठा क्योंकि उसके चेहरे पर तो मुस्कान बिखरी थी लेकिन उसका दिल रो रहा था।

"आख़िर बात क्या है?" कोहनी के ऊपर से उसकी बांह थामकर और उसका चेहरा अपनी ओर करके मैंने पूछा।

जवाब में मेट्रो कार का लाउडस्पीकर बोल उठा कि अगला स्टेशन मास्को विश्वविद्यालय का है।

"अच्छा किया कि स्टेशन का नाम बोल दिया, नहीं तो हम अपना स्टॉप चूक जाते," मैंने कहा।

लेकिन इसके बावजूद वह अभी तक अपलक आगे की ओर देखे जा रही थी। मैंने तो बस यूं ही स्टॉप चूकने की बात कहकर उसे छेड़ने की कोशिश की थी। दरअसल, स्टॉप हमसे कभी

भी नहीं चूकता क्योंकि इसी रूट से हम पिछले तीन सालों से लगातार जाते-आते रहे हैं। हम से मेरा मतलब है – नौजवान पति जो एक होनहार युवा वैज्ञानिक है (यानी मैं) और उसकी नौजवान बीवी जो कि खुद एक और होनहार विद्वान है। उसे नीली आंखों के नाम से भी बुलाया जाता है। जब स्नातक छात्रों के रूप में हमारा दिन खत्म होता, हम विश्वविद्यालय के छात्रावास की शयनशाला के अपने कमरे में लौट जाते हैं। इस कमरे में मैं बतौर अविवाहित सिर्फ़ दो महीने ही रहा था।

नीली आंखें और मैं, हम दोनों स्नातक छात्रों के रूप में मास्को आये थे। कुल मिलाकर दो महीनों की जान-पहचान के बाद एक खुशगवार दिन हमने विवाह के बन्धनों में बंधने का फ़ैसला कर लिया।

"तुम्हें खुश करने के लिए मैं क्या कर सकता हूं?"

वह मुस्करायी।

"तुम कनतारिया को जानते हो?"

"कौन?"

"कनतारिया।"

"मुझे लगता है, नाम याद नहीं आ रहा।"

"वह राइखस्टाग पर हमारा झण्डा फहरानेवाले लड़कों में एक था।"

कल का दिन विजय दिवस था – ९ मई। मैंने मन की आंखों से उस नौजवान सैनिक की तस्वीर देखी जो हमारे कमरे में टंगी है और उससे कहा: "त्योहार मुबारक हो!" जवाब में वह मुस्करा उठा, उसकी मुस्कान अद्‌भुत तथा स्नेहपूर्ण थी।

"ज़रूर, बेशक। सोवियत संघ का वीर।"

"वह रही ट्राम। जल्दी करो!"

ट्राम द्मित्री उल्यानोव मार्ग पर स्थित छात्र शयनशाला के पास रुकती थी। अब हम हमेशा की तरह इससे नीचे उतरेंगे, इमारत में घुसेंगे, लिफ़्ट से ऊपर जायेंगे और धरती के सबसे अधिक आरामदेह कमरे में जा पहुंचेंगे। मैंने उसकी ओर देखा।

"मैं जानता हूं तुम क्या सोच रही हो। तुम अभी-अभी अपने आप से कह रही थीं: 'राइखस्टाग पर हमारा झण्डा फहराने के लिए

कनतारिया ने अपनी जान की बाजी लगा दी और मेरा शानदार, मुच्छड़ पति उसका नाम तक याद नहीं रखता।' क्यों, मैं ठीक कह रहा हूं न?"

"कुछ-कुछ।"

मैंने दुबारा उसकी ओर देखा और दुबारा मन ही मन में उस नौजवान सैनिक से कहा: "शुक्रिया। कम से कम वह कुछ बोली तो।"

वह नौजवान सैनिक उसका पिता था। "था" क्योंकि वह नौजवान सैनिक अब ज़िन्दा नहीं है। नहीं, वह न तो बुढ़ाया, न मरा था बल्कि जब वह एकदम जवान था एक गोली का शिकार बना था।

यह घटना १९४४ में हुई थी। पिता वह मृत्यु के बाद बना था। यानी वह मरा पहले और बाप बाद में बना। सीसे का एक छोटा-सा टुकड़ा उसके सीने को वेध गया था। कुछ समय बाद उसके एक नीली आंखोंवाली लड़की पैदा हुई। जीवन के पहले दिन से ही इस नीली आंखोंवाली बच्ची का बाप न था। नीली आंखोंवाली लड़की बड़ी से बड़ी होती गयी और मास्को की एक निहायत मामूली-सी रात में यह बात उजागर हो गयी कि वह इतने समय तक सिर्फ़ मेरे लिए ही बड़ी होती रही थी, ठीक इसी तरह जैसे मैं अब तक उसी के लिए बड़ा होता रहा था, जीवन भर उसी से मिलने की प्रतीक्षा करता रहा था।

मेरा जीवन। यह बात खुद आदमी पर ही बहुत अधिक निर्भर करती है कि उसका जीवन सार्थक होगा या नहीं। उस साधु की यह बात कितनी सच है जिसने कहा था कि किसी आदमी के जीवन का मानदण्ड उसके जीवित रहने के दिनों में नहीं बल्कि उन दिनों में है जो महत्वपूर्ण हैं, जो याद किये जा सकते हैं। हर चीज़ सापेक्षिक होती है, आदमी की आयु भी। उदाहरण के लिए, मैं बहुत चाह के भी नहीं महसूस कर पाता हूं कि नौजवान सैनिक मेरा श्वसुर है। सब से पहले इस लिए कि हम दोनों की आयु अब उससे ज़्यादा है। जिस समय की तस्वीर है, उस समय वह तेईस साल का था और हम दोनों की आयु उस से ज़्यादा है। एक दिन हम सत्तर साल के हो जायेंगे जबकि वह हमेशा-हमेशा तेइस साल का ही रहेगा।

हमारी शादी के तीन साल बीत चुके हैं। मुझे लगता है, मैं उसके बारे में सब कुछ जानता हूं: उसकी आदतें, उसकी पसन्द-

नापसन्द, उसकी कमज़ोरियां। लेकिन अक्सर बड़े अप्रत्याशित ढंग से मैं यह महसूस करके चकित हो उठता हूं कि मैं उसे नहीं जानता। कभी-कभी उसका मूड बड़ी तेज़ी से बदलता है और बिना किसी प्रकट आवेश के। दरअसल, हमेशा इसका कोई न कोई कारण होता है, जैसा कि बाद में मालूम पड़ता है, बात यह है कि मुझे इसका पता लगा लेना मुश्किल होता है। कोई दूसरा आदमी जिसकी ओर कभी ध्यान भी नहीं देता, जीवन का वैसा ही मामूली से मामूली संयोग भी उसे अचानक ख़ुश, कहना चाहिए, अति उल्लसित कर सकता था या कभी-कभी इतना दुखी कि जैसे कोई बड़ी भयानक बात हो गयी हो। मैंने अक्सर देखा है कि मेरी अर्द्धांगिनी सिर्फ़ अपने या मेरे बारे में ही चिन्ता करके सन्तुष्ट नहीं होती। उसे सारी दुनिया की चिन्ता रहती है। इस समय ट्राम की खिड़की से झांकती वह ऐसा दिखा रही है मानो उसकी दृष्टि इमारतों का अवलोकन करने में लगी है लेकिन मैं जानता हूं, वह उस नौजवान सैनिक के बारे में सोच रही है और मन की आंखों से सिवा उसके कुछ भी नहीं देख रही है। वह सोच रही है कि नौजवान सौनिक अकेला नहीं था, उसके साथ हज़ारों-हज़ार ऐसे नौजवान सैनिक थे जो कभी वृद्धावस्था तक नहीं पहुंच पायेंगे और उन सब के लिए उसका दिल कसकता रहता है क्योंकि उसका दिल ही ऐसा है।

९ मई का दिन सबसे पहले विजय दिवस है, जब लड़ाई ख़त्म हुई थी। ९ मई का दिन हमारे पिताओं, हमारे पितामहों की शक्ति तथा न्यायप्रियता का साक्षी-दिवस है। साथ ही ९ मई का दिन एक स्मरणीय दिन भी है।

नीली आंखों ने मेरी ओर देखा। मैंने उसके चेहरे पर पल भर के लिए भय की परछाईं देखी। मैंने महसूस कर लिया, उसे डर था कि कहीं मैं भी सैनिक न बन जाऊं और फिर कभी वृद्धावस्था तक न पहुंच पाऊं।

दागेस्तान का भावी विशिष्ट भौतिक विज्ञानी हाजी मुराद लिफ़्ट में हमारे साथ हो लिया। उसके हाथों में शैम्पेन की दो बोतलें थीं जिन्हें वह कल खोलेगा। वह चौथी मंज़िल पर उतर गया। मैंने बड़ी गहरी सांस ली क्योंकि गन्ध लुभावनी थी। चौथी मंज़िल पर रहनेवाले

उज़्बेक छात्र आज फिर ख़ुशबूदार पुलाव बना रहे थे। मैंने फिर कई बार गहरी सांसें लीं और कहा: "अगर भगवान चाहता है कि मैं उस पर विश्वास करूं, अपना अस्तित्व सिद्ध करने के लिए यही सबसे अच्छा अवसर है। कल्पना करो: हम घर पहुंचते हैं और देखते हैं कि मेज़ पर गरमागरम दुइशबारी* की दो तश्तरियां रखी है। साथ में दस नान भी हैं और यह सब बीका चाची ने अपने कुशल हाथों से बनाकर रखा हो।" आख़िर वह हँस ही पड़ी। "अगर कभी तुम कुछ सोचते भी हो तो सिर्फ़ खाने के बारे में!"

बीका मेरी सास हैं जिन्हें मैं बीका चाची कहकर बुलाता हूं। अपनी मां का नाम सुनकर नीली आंखें हमेशा उल्लसित हो उठती है। इसीलिए मैं उनका नाम लेने से नहीं चूकता था।

बीका चाची सिर्फ़ तीन महीनों के लिए विवाहिता रही थीं।

वह सिर्फ़ तीन महीनों तक विवाहिता रही थीं और अगले बीस से ज़्यादा सालों तक अपनी बच्ची के लिए मां भी और बाप भी रहीं।

जब हम कमरे में पहुंचे, यह बात स्पष्ट हो गयी कि भगवान मुझे जीवन भर नास्तिक ही बनाये रखना चाहता था क्योंकि हमेशा की तरह मेज़ पर गरमागरम दुइशबारी की जगह किताबों का ढेर ही मौजूद था।

दीवार पर उसी जगह नौजवान सैनिक की तस्वीर टंगी थी। वह हमारी ओर देखकर मुस्करा रहा था। नीली आंखें अपलक उस सैनिक की ओर और मैं उसकी ओर देख रहा था। उस समय वे दोनों जुड़वे से प्रतीत हो रहे थे।

"जानते हो, मुझे कभी-कभी लगता है कि यह मेरा भाई है," वह कोमल स्वर में बोली।

कई बार ऐसा हुआ जो मैं सोचता हूं, वही बात वह बोल देती है।

वह आगे बोली: "मेरा छोटा भाई। मुझे महसूस होता है जैसे मैं उसकी रक्षा करना चाहती हूं, मुझे उसके प्रति चिन्ता होती है। और कभी-कभी ऐसा लगता है मानो मैं उसका हाथ थामे इकट्ठे मां से मिलने जा रही हूं। जैसे कि वह उसकी भी मां हो।"

---

*दुइशबारी – अज़रबैजान का राष्ट्रीय खाना।

मैं खिड़की के पास चला गया। सड़क के पार बहुत-सी खिड़कियां अंधेरी थीं। उन घरों में रहनेवाले लोग सो चुके थे। सिर्फ़ एक-दो-तीन-छ-सात – सात खिड़कियों में उजाला था। वहां लोग अभी तक जाग रहे थे। वे बड़ी मामूली खिड़कियां थीं। मैं सोच रहा था कि उन खिड़कियों के पीछे न जाने नौजवान सैनिकों की कितनी बेटियां अब उनकी बहनें बन गयी होंगी और न जाने कितने बेटे भाई बन गये होंगे। ऐसी खिड़कियां मास्को में है, बाकू में हैं और बहुत-सी दूसरी जगहों पर हैं।

वह मेरे पास चली आयी। "आज शाम को हमारे यहां कंसर्ट हुआ," उसने कहा, वह संगीत विद्यालय की पोस्ट-ग्रेजुएट छात्रा जो है। "मैं औरों की तरह हाल में बैठी थी। एकाएक बड़ी बेचैनी-सी महसूस हुई। मैं भयभीत हो गयी थी। जानते हो क्यों?"

"हां।"

वह चौंकती-सी प्रतीत हुई।

"क्या तुम सोच रही हो कि मैंने तुम्हारे विचार कैसे जान लिये? क्योंकि वही विचार कभी-कभी मेरे मन में भी उठते हैं। ठीक उसी तरह जैसे दर्शकों के बीच बैठे दूसरे लोगों के मन में भी। लेकिन उन सब को विश्वास है।"

"किस चीज़ में?"

"उन सब को विश्वास है कि अगर कभी ऐसा हुआ भी तो ज़रूर ही एक दिन विजय दिवस भी आयेगा।"

"मानव जीवन की आहुतियां देकर?"

"देखो, विजय दिवस कोई नया साल का त्योहार तो है नहीं। लेकिन भविष्य में हम लोगों के लिए निश्चित ही एक विजय दिवस हुआ करेगा नहीं तो जीवन अन्धकारमय हो जायेगा। हर चीज़ अपना मतलब खो बैठेगी। वियतनामियों के लिए भी भविष्य में एक विजय दिवस होगा। अरबों के लिए भी यानी उन सबके लिए होगा जिनका उद्देश्य न्यायसंगत है।" मैंने नौजवान सैनिक की तस्वीर की ओर देखा। "देखते हो, हम कभी-कभी ऐसी बातें भी किया करते हैं।"

"रुको, मैं अभी आता हूं," मैंने पत्नी से कहा। चौथी मंज़िल पर उतरकर मैंने हाजी मुराद के दरवाज़े पर दस्तक दी।

"कौन है यह मरदूद? मैं सो रहा हूं!" कुछ देर बाद हाजी मुराद दरवाज़ा खोलकर तन्द्रिल आंखों से देखता खड़ा था।

"सुनो, हम सभी जानते हैं कि तुम दागेस्तान के एक सबसे प्रसिद्ध भौतिक विज्ञानी बनोगे! स्वयं रसूल गम्ज़ातोव तुम्हारे नाम पर महा-काव्य लिखेंगे! और हम सभी जानते हैं कि तुम्हारे पास शैम्पेन की दो बोतलें हैं। तुम्हें एक बोतल मुझ को देनी पड़ेगी।"

"क्या?"

मुझे मेज़ पर रखी दो बोतलें दिखाई दे रही थीं। झपटकर एक बोतल उठाकर मैं वहां से नौ-दो ग्यारह हो गया। जब मैं कमरे में लौटा, नीली आंखें बिस्तरे पर बैठी थी। मुझे देखते ही वह सब कुछ समझ गयी।

"बेचारा हाजी मुराद।"

"वह मरेगा नहीं। कल हम उसे दो बोतलें ख़रीद देंगे लेकिन इस समय ..." दो गिलास लाकर मैं उसकी बगल में बैठ गया। पिस्तौल के धमाके-सी ज़ोरदार आवाज़ हमारे छोटे-से कमरे में गूंज गयी।

"अगर यह नौजवान सैनिक नहीं होता तो तुम भी नहीं होती और तब मेरा जीवन उदास व बेमतलब होता। अगर यह नौजवान सैनिक नहीं होता तो कल विजय दिवस नहीं मनाया जाता। आओ हम इस सैनिक के नाम और सभी नौजवान सैनिकों के नाम पीयें! आओ, हम इस बात के लिए पीयें कि हमारे कमरे में जो आवाज़ अभी गूंजी थी, इसके अलावा कोई भी धमाका कभी न हो!"

दूसरे दिन डाकघर जाकर मैंने यह टेलीग्राम भेज दिया:

"कनतारिया, जॉर्जियाई जनतन्त्र। सभी वीरों को विजय दिवस पर बधाइयां। धन्यवाद और सुख की कामना है।"

हालांकि टेलीग्राम पर कोई भी निश्चित पता अंकित नहीं था, लड़की ने उसे ले लिया।

मकसूद इब्रागिमबेकोव

(जन्म १९३५)

अज़रबैजान के एक सर्वाधिक प्रतिभाशाली लेखक इब्रागिमबेकोव का जन्म बाकू में हुआ था। उन्होंने निर्माण इंजीनियर की शिक्षा पायी थी और लिखना १९६० में शुरू किया था। १९६४ में उन्होंने मास्को में सिने-लेखन की उच्च शिक्षा पूरी की।

मकसूद इब्रागिमबेकोव के लघुउपन्यासों तथा कहानियों की विषयवस्तु हैं अज़रबैजान के लोगों का जीवन, उनकी नैतिक समस्याएं तथा पारिवारिक सम्बन्ध। वह पूरे सोवियत संघ में सुविख्यात हैं। "बाग़ में एक पुरसुकून जगह," "वसन्त का एक अल्पावकाश" और "एक अपरिचित गीत" सहित उनकी कहानियों के संग्रह केन्द्रीय प्रकाशन गृहों ने प्रकाशित किये हैं। उनके सिने-लेखनों के आधार पर कई फ़िल्में बन चुकी हैं। उनके नाटक "एक मध्यकल्पीय गाथा" का प्रस्तुतीकरण मास्को के माली थिएटर द्वारा हुआ है।

मकसूद इब्रागिमबेकोव

बाग़ में एक पुरसुकून जगह

"साफ़ करो!" नवागन्तुक को कुर्सी पर बैठाते हुए अगासफ़-अगा* दबंग आवाज़ में ज़ोरों से बोले। "अपने" नाई की तवज्जह पाने के लिए इस अविचल ग्राहक ने पूरे दो घण्टे तक प्रतीक्षा की थी। "मुझे गत शुक्रवार को ही तुम्हारे आने की आशा थी," अगासफ़-अगा ने कहा (वह अपने अविचल ग्राहकों को "तुम" कहकर ही बुलाते थे)। "मैं मन ही मन में सोच रहा था, बात क्या है? वह है कहां?"

"मैं काम से किरोवाबाद गया था।"

"किरोवाबाद में खाने को बड़ा अच्छा ख़ाश** मिलता है, एकदम लज़ीज़," अगासफ़-अगा ने स्वप्निल भाव से कहा। "पीला-पीला, चर्बीदार और पारदर्शी – मेमने की आंत भी काटकर डालते हैं। पूरे अज़रबैजान में सिर्फ़ किरोवाबाद में ही ख़ाश बनाना आता है... दर्द हो रहा है? अब

---

* अगा – साहब, श्रीमान।

** ख़ाश – काफ़ी गोश्त डालकर बनाया गया अज़रबैजानी ढंग का शोरबा। – सं०

बाकू में खाने लायक़ तो कुछ मिलता ही नहीं। कुछ समय पहले मैंने स्टेशन के पासवाले कैफ़े में खाने के लिए ख़ाश मंगवाया था। ख़ाश तो खाने को मिल गया लेकिन मैंने मैनेजर से कहा : 'तुम्हें शर्म आनी चाहिए! यह भी ख़ाश है, क्या?' इसलिए मैं उस पर थूककर चला आया ..."

"ख़ाश घर पर बनाना चाहिए," ग्राहक बोला।

"लहसुन की गन्ध से ही मेरी बीवी के सिर में दर्द शुरू हो जाता है," अगासफ़-अगा ने दुख प्रकट किया। "बड़ी संवेदनशील है... शैम्पू कर दूं?"

अगासफ़-अगा ने ग्राहक का सिर शॉवर के नीचे कर दिया। शैम्पू लगाने की तैयारी में उन्होंने बोतल को अच्छी तरह हिलाकर थोड़ा-सा तरल शैम्पू हथैली में ढालकर बड़े उल्लसित भाव से सूंघा।

नायलॉन का ब्रश सिर के झाग में घूमता रहा। नाई ने कई बार घने बाल में झाग किया। वह अपने ग्राहकों के बाल हमेशा बड़ी लगन के साथ धोता था और धोते-धोते सन्तोषपूर्वक आह-ऊह करता जाता था।

"सेंक दूं! उस्तुरा!" एक बार फिर ग्राहक के कॉलर में तौलिया फंसाते हुए अगासफ़-अगा बोले। झुककर वह ग्राहक के चेहरे को निहारने लगे। "अइ-अइ-प्य्या!" अगासफ़-अगा ने कहा। "यहां पर तो बड़ा लाल हो गया है?.. तुम्हारी त्वचा बड़ी मुलायम और अच्छी है। दस हज़ार में एक आदमी की त्वचा ऐसी होती है लेकिन तुम अपनी त्वचा बिगाड़ देते हो ... शायद तुम बिजली का शेवर काम में लाते हो। अब यही फ़ैशन हो गया है लेकिन तुम देख लेना दो-तीन सालों में लोग फिर पुराने ढंग से ही दाढ़ी बनाने लगेंगे। दर्द तो नहीं हो रहा है? मैं जानता हूं, इससे दर्द नहीं होता है। मैं बस यूं ही पूछ रहा था ... कल मैं अख़बार पढ़ रहा था ... फिर केनेडी के बारे में लिखना शुरू कर दिया है। इतना समय बीत गया, फिर भी केनेडी के बारे में लिख रहे हैं ... क्या तुम्हारे ख़्याल से उन पत्रकारों को हर बार पैसे मिलते होंगे? अं? वे लिखें न लिखें मैं तो जानता हूं कि उसकी हत्या किस ने की। क्या ख़्याल है तुम्हारा? उसकी हत्या जनसन ने की थी?"

"मैं तुम्हें बता सकता हूं," झाग से भरे होंठों को सावधानी से हिलाते हुए ग्राहक ने जवाब दिया, "लेकिन मुझे डर है, कहीं उसे जेल में न डाल दिया जाये।"

"किस को? उसे कभी गिरफ़्तार नहीं किया जायेगा, वह तो अब राष्ट्रपति है ..." अगासफ़-अगा ने तौलिये से उस्तरा पोंछा और दाढ़ी बनाते-बनाते थोड़ी देर रुककर आराम किया। "जानते हो, मैं पहले कहां रहता था? मैं पहले चेत्व्योर्ताया पैरालेल्नाया में रहता था। मोन्तिना में मुझे बाद में मकान मिला। तो मैं कह रहा था, वहां मेरे पड़ोस में दाऊद नामक एक आदमी रहता था। उसे पकड़कर तीन बार जेल में डाला गया। उसके रिश्तेदार इकट्ठे हुए और जबर्दस्ती पकड़कर मसजिद में ले गये। वहां हाथ में कुरान देकर उससे क़सम खिलायी कि वह खोटे काम करना बन्द कर देगा। दाऊद ने क़सम खा ली। और सच में वह बदल गया। एक छोटी-सी दुकान खोलकर वह मोची का काम करने लगा ... तुम्हारी कनपटी की कलम कैसी रखूं? सीधी या कोणिक? तुम चाहे जो कहो, सीधी क़लम तुम्हें बड़ी अच्छी लगती है। सीधी रखूं या कोणिक? हां ... सुबह से रात तक दाऊद जूतों की मरम्मत करता रहता। सब ख़ुश ... तभी एक दिन मैं काम से घर लौटते समय वहीं पर रुका। "दाऊद को गिरफ़्तार कर लिया गया है," किसी ने बताया। क्या? गिरफ़्तार कर लिया?! किस लिए? उसने किसी को चाकू मार दिया था। मुकद्दमा चला। पता चला कि किसी ग्राहक ने उसकी दुकान में आकर झगड़ा कर लिया था। दाऊद का कहना था कि ग्राहक ने जान बूझकर झगड़ा किया था और ग्राहक का कहना था कि संयोगवश झगड़ा हो गया था। फ़ैसले में दाऊद को तीन साल जेल की सज़ा मिली ... समझते हो, आज या कल दाऊद जैसा आदमी ज़रूर कुछ करके रहेगा ... अब वह जेल से छूटकर लौट आया है और जूते मरम्मत करता है लेकिन देर या सवेर वह ज़रूर कुछ कर गुज़रेगा। दाऊद जैसे आदमी से अच्छे की आशा नहीं की जा सकती ..." अगासफ़-अगा ने कणित्र से यू-डी-कोलोन की पतली धार ग्राहक के चिकने चेहरे पर छिड़क दी। "मैं तुम्हें पावडर इस्तेमाल में लाने की सलाह नहीं दूंगा। त्वचा को थोड़ी खुली ही रहने दो।" और बिना देखे उन्होंने पैसे अपने अन्दरूनी कपड़े की जेब में ठूंस लिये।

"ज़रा जल्दी-जल्दी दर्शन दिया करो। मुझे तुम्हें देखकर बड़ी ख़ुशी होती है।"

दरवाज़े के पास पांच या छः आदमी लाइन लगाकर बैठे थे। वे तौलिया हिलाकर दूसरे नाइयों द्वारा किये जा रहे संकेतों व "अगला ग्राहक!" की पुकारों पर कोई ध्यान नहीं दे रहे थे। वह लाइन अगासफ़-अगा के स्थायी तथा धैर्यपूर्वक प्रतीक्षारत ग्राहकों की थी।

"अब पांच या छह मिनट की छुट्टी रहेगी," लाइन की ओर देखते हुए अगासफ़-अगा ने उल्लासपूर्वक घोषणा की। यह कहकर वह लाल मख़मली पर्देवाले दरवाज़े के पीछे ग़ायब हो गये और साथ के कमरे में चले आये। यहां एक कुर्सी पर बैठकर उन्होंने पैर उठाकर एक ऊंची-सी तख़्ती पर रख लिये। वह तख़्ती कील के सहारे इसी काम के लिए ठोकी गयी थी। दो या दो से ज़्यादा घण्टों तक काम करने के बाद उनके पैरों की नसें सूज जाती थीं। सूजे पैरों की नसों से ख़ून को धड़ में लौटता महसूस करते हुए वह चुपचाप आनन्दपूर्वक निःश्वास छोड़ते रहे। उस समय वह आंखें मुश्किल से खोलकर नाराज़ हो उठे जब उनकी बग़लवाली कुर्सी पर काम करनेवाला नाई कमरे में घुस आया। वह एक नौजवान नाई था जो अभी कुछ ही दिनों पहले सेना से लौटा था। वह उसी इमारत में रहता था जिसमें अगासफ़-अगा रहते थे और इसी कारण वह उस नौजवान को काम सिखाना व इस पेशे के गुर समझाना अपना कर्त्तव्य समझते थे।

"आज तुम मुझे तनिक रास नहीं आये, ग़ज़नफ़ार," अपना सिर उसकी ओर मोड़े बिना अगासफ़-अगा ने प्रभावशाली स्वर में कहा। "जब तुम उस डॉक्टर की दाढ़ी बना रहे थे, मेरा हृदय विदीर्ण हो उठा था... तुमने ध्यान ही नहीं दिया कि उसकी दाढ़ी बड़ी कड़ी है। ध्यान दिया था? तुम्हें उसकी दाढ़ी पर एक बार साबुन लगाकर सेंकाई कर देना, फिर साबुन लगाकर दाढ़ी बनाना शुरू करना चाहिए था... जानते हो, जब तुम उसकी दाढ़ी बना रहे थे तो कैसी आवाज़ आ रही थी? जैसी रेती को लोहे पर रगड़ते समय होती है। तुम्हारे ख़्याल से यह ठीक है, क्या? तुम्हारे लिए वह क्या है? जानलेवा दुश्मन? या वह तुम्हें खोटे सिक्के देता है?"

"वह तो चुप था," झेंपते हुए ग़ज़नफ़ार ने जवाब दिया। "उसने तो नहीं कहा कि उस्तरा उसे तंग कर रहा है..."

"वह कहेगा भी नहीं," अगासफ़-अगा ने उसकी बात काट दी।

"वह क्यों कुछ कहने लगा? अगली बार वह दूसरे नाई के यहां चला जायेगा। वह तुम्हारे पास नहीं आयेगा। और जब मैं तुम्हारी उम्र का था तभी मेरे स्थायी ग्राहक बन चुके थे। तुम्हें भी इसी समय से इसके लिए प्रयत्नशील होना चाहिए।"

"आपकी बात और है," ग़ज़नफ़ार ने कहा। "आप में प्रतिभा है। बाकू का हरेक नाई यह जानता है। भगवान से मिली प्रतिभा है आप में।"

"नाई में सिर्फ़ एक ही प्रतिभा होनी चाहिए," मक्खनबाज़ी से प्रभावित अगासफ़-अगा ने बेहद नाराज़गी ज़ाहिर करनेवाले स्वर में कहा। "मेहनत व तवज्जह। अगर तुम्हें याद रहे कि किस ग्राहक को कौन-सा यू-डी-कोलोन ख़ुश करता है और दाढ़ी बनाने के बाद उसे गर्म या ठण्डी सेंकाई पसन्द है तो वह ग्राहक सिर्फ़ तुम्हारी कुर्सी पर बैठने के लिए दो-दो घण्टे तक इन्तज़ार करने को तैयार रहेगा। मुख्य बात यह है कि ग्राहक को महसूस न हो कि तुम उसे जल्दी से निबटा देना चाहते हो। यह बेइज़्ज़ती है। फिर तुम्हें उससे बातचीत करनी चाहिए, पूछना चाहिए कि उस्तरे से उसे पीड़ा तो नहीं हो रही है... और तुम मुझे बता रहे हो, 'मैंने उसकी दाढ़ी बनायी, उसने कुछ भी नहीं कहा।' शायद वह सकुचा गया हो..."

फिर दरवाज़े के पास सम्मानपूर्वक खड़े ग़ज़नफ़ार के क़रीब से गुज़रकर अगासफ़-अगा कमरे में चले आये जहां कुर्सी पर बैठा एक बीटलों-सी शक्ल-सूरतवाला नौजवान उनकी प्रतीक्षा में था।

"सिर्फ़ पीछे से थोड़ी छंटाई कर दो," उसने अगासफ़-अगा से कहा, "और दाढ़ी भी बनवानी है।"

"और मूंछें?"

"ठीक है," मन में अटकती किसी बात पर क़ाबू पाते हुए उस नौजवान ने कहा, "होंठ पर लटकती मूंछों को आगे से थोड़ी-थोड़ी काट दो..."

अगासफ़-अगा ने सिर हिला दिया और बड़े दिखावे के साथ काम शुरू किया। अगासफ़-अगा के दो बार हाथ फेरते ही लड़के के चेहरे पर सन्तोष के भाव आ गये और वह बड़े आराम से कुर्सी पर पसर गया।

काम ख़त्म होने के बाद अगासफ़-अगा और गज़नफ़ार आम तौर से नाई की दुकान से इकट्ठे ही घर रवाना होते थे। अच्छे मौसम में वे पैदल ही मेट्रो स्टेशन तक जाते थे। अगासफ़-अगा ने पहली व आख़िरी दफ़ा गज़नफ़ार को बता दिया था कि पैदल चलने से बहुमूत्र जैसी नाखुशगवार बीमारी से बचा जा सकता है।

"कल मैंने खाते-पीते, समृद्ध लोगों को दोराहे पर पैदल चलते देखा। क्या तुम सोचते हो उनके पास अपनी गाड़ियां नहीं? उनके पास अपनी गाड़ियां भी हैं, दफ़्तर की गाड़ियां भी हैं। फिर तुम्हारे ख़्याल से वे शाम को पैदल क्यों चल रहे थे? क्योंकि वे जीना चाहते हैं। वे नहीं चाहते कि उन्हें बहुमूत्र की बीमारी हो या ऐसी कोई प्राणघातक बीमारी हो। बात समझने लायक है। ऐसे लोगों के पास सब कुछ है – पैसे हैं, मकान है, कार है लेकिन वे सेहतमन्द नहीं हैं।"

सम्मानपूर्वक उनकी बात सुनते हुए गज़नफ़ार ने सहमति में सिर हिला दिया। अगासफ़-अगा के प्रति उसके दिल में अत्यन्त श्रद्धाभाव था।

वे दोनों स्टेशन के पासवाले एक छोटे-से कैफ़े के सामने रुके। अगासफ़-अगा की राय थी कि चतुर आदमी को घर पहुंचने से पहले ही हमेशा खा-पी लेना चाहिए। "किसे मालूम कि घर पर कैसी परिस्थिति से सामना करना पड़ेगा," अगासफ़-अगा ने कहा। "अगर बीवी ने अच्छा खाना बनाया होगा तो मैं शाश्लिक के बाद भी खा लूंगा। लेकिन अगर उसने शौहर के लिए कुछ भी न बनाया हो तो?" गज़नफ़ार जानता था कि अगासफ़-अगा को घर पर खाना न मिलने की ही सम्भावना ज़्यादा थी।

दोनों कैफ़े के नीचेवाले कमरे में जा पहुंचे। काउण्टर के पीछे से आये बेयरे ने दोनों से सम्मानपूर्वक हाथ मिलाया।

"मैं आपको शाश्लिक खाने का सुझाव नहीं दूंगा," उसने धीमे से अगासफ़-अगा से कहा। "गोश्त थोड़ा कड़ा है। आज खिन्कल* ज़्यादा अच्छा बना है..."

---

* खिन्कल – एक स्थानीय भोजन। सं०

"दो खिन्कल," अगासफ़-अगा ने कहा। "दो खिन्कल अभी ले आओ और दो गरम करके तैयार रखो। जब हम कहेंगे, ले आना। और मीना भर वोदका।"

दोनों ने स्वादिष्ट खिन्कल का एक-एक पोर्शन खाया और भर-भर दो गिलास वोदका पी। वोदका की कड़वाहट उन्होंने बीयर से दूर की। अगासफ़-अगा का दावा था कि अगर वोदका या कोन्याक के बाद पानी या बीयर पीया जाये तो अन्ननली का कैंसर नहीं होता है। अगासफ़-अगा को थोड़ी बहुत डॉक्टरी जानकारी भी थी।

"मैं डॉक्टर बनना बहुत चाहता था," उन्होंने गज़नफ़ार को बताया। "लेकिन बाद में मैंने महसूस किया कि मैं एक दक्ष नाई हूं। समझ रहे हो," नशे में आये अगासफ़-अगा बोले। "मेरा पेशा बड़ा शानदार है। मैं दक्ष नाई अगासफ़-अगा हूं। मुझे हर कोई जानता है और मैं स्वयं अपना सम्मान करता हूं। बाक़ी लोगों पर मैं कोई ध्यान नहीं देता।"

गज़नफ़ार जानता था कि "बाक़ी" से अगासफ़-अगा का मतलब अपनी बीवी से है जिससे वह बहुत डरा करते थे।

गज़नफ़ार ने पैसे देने की कोशिश की लेकिन अगासफ़-अगा ने उसकी ओर धमकाती निगाहों से देखकर बेयरे से कहा: "तुम्हें कितनी बार बताना पड़ेगा कि जब यह लड़का मेरे साथ हो, इससे पैसे नहीं लेना चाहिए। उन्होंने बेयरे के हाथों में पैसे थमा दिये। फिर भोजन व वोदका से आनन्दातिरेक महसूस करते हुए वह बाहर की ओर चल पड़े। बेयरे ने सम्मानपूर्वक उन्हें सहारा दे रखा था।

इमारत के अहाते में पहुंचकर अगासफ़-अगा ने गज़नफ़ार को अपने कमरे में चलने के लिए आमन्त्रित किया। जब वह इनकार करने लगा अगासफ़-अगा ने ग़ुस्से से गुर्राकर कहा कि उसे अपने से बड़ों की बात माननी चाहिए और गज़नफ़ार नरम पड़कर उनके पीछे-पीछे तीसरी मंज़िल पर चल पड़ा।

तीन कमरोंवाले एक बड़े-से मकान में अगासफ़-अगा अपनी बीवी व दो बच्चों – सामिद व फ़ासिल के साथ रहते थे। मकान भली-भांति व क़ीमती फ़र्नीचरों से सुसज्जित था। अगासफ़-अगा ने ख़ुद फ़र्नीचर चुन-चुनकर ख़रीदे थे।

चाबी से अगासफ़-अगा ने दरवाज़ा खोला। वे भोजनवाले कमरे में चले आये। मेज़ साफ़ नहीं की गयी थी। साफ़ पता लग रहा था कि अभी-अभी पांच-छह लोगों ने इस पर खाना खाया था। किताबों-वाली आलमारी के पास जाकर अगासफ़-अगा ने अपना नार्दी* निकाल लिया।

"आओ, देखें, तुम कैसा खेलते हो," उन्होंने ग़ज़नफ़ार से कहा।

जब तक वह गोटियों को तख़्ती पर लगाता रहा, अगासफ़-अगा रसोई में जा पहुंचे।

"हमारे लिए चाय ले आओ," उन्होंने अपनी बीवी से कहा। "क्या मेहमान आये थे?"

"स्कूल के सहकर्मी आये थे," बीवी ने जवाब दिया। "क्या तुम फिर नार्दी खेलने बैठ रहे हो? बेकार का खेल!"

ग़ज़नफ़ार जानता था कि अगासफ़-अगा की बीवी तभी मेहमानों को आमन्त्रित करती थी जब वह घर पर नहीं होते थे। दरअसल वह उनकी मौजूदगी में परेशानी महसूस करती थी। उसने शिक्षक प्रशिक्षण संस्थान से पत्राचार पाठ्यक्रम पास कर लिया था। जब वह पत्राचार पाठयक्रम की पढ़ाई में लगी थी, अगासफ़-अगा घर का काम-काज एक लड़की से भाड़े पर करवाते और वह खुद बच्चों को लेकर पास के बग़ीचे में हर शाम को घूमने चले जाते थे। परीक्षा पास करने के तुरंत बाद वह बहुत ही बदल गयी थी। उसका लहजा ही बदल गया था; जब वह अपने पति से बात करती होती तब यह खास तौर से ज़ाहिर होता था। वह अंग्रेज़ी पढ़ाती थी। ग़ज़नफ़ार को यह बात आश्चर्यजनक लगती थी क्योंकि वह जबकि रूसी व अज़रबैजानी ग़लत बोलती थी तो फिर अंग्रेजी कैसे सही बोल सकती थी। अगासफ़-अगा के स्थायी ग्राहकों में से एक ने उसके लिए शहर के केंद्र के एक स्कूल में काम का बन्दोबस्त कर दिया था।

ग़ज़नफ़ार व अगासफ़-अगा चुपचाप नार्दी खेल रहे थे। अगासफ़-अगा घर पर आम तौर से चुपचाप ही रहते थे। उनकी बीवी दो

---

* नार्दी – मध्य पूर्वीय देशों का एक लोकप्रिय खेल जो शतरंज जैसी तख़्ती पर पांसों से खेला जाता है। – सं०

गिलासों में चाय ले आयी और खरखराती आवाज़ के साथ उन्हें मेज़ पर रखकर चली गयी। अगासफ़-अगा ने उसकी ओर घूरकर देखा लेकिन इस पर बिलकुल ही ध्यान दिये बिना उनकी बीवी दूसरे कमरे में जाकर फ़ोन करने लगी।

"तुमने ठीक ही कहा," वह चोंगे में बोली, "बेशक, यह सील की खाल नहीं, रोयां दूसरा है, मेरे ख़्याल में यह घोड़ी की खाल है..."

"हमारी चाय के लिए चीनी कौन लायेगा?" आहत भरी स्वर में अगासफ़-अगा चिल्लाकर बोले। "मैं अभी-अभी काम से लौटा हूं!"

"क्या तुम्हें सुनाई नहीं देता कि फ़ोन पर बात कर रही हूं?" भोजनवाले कमरे की ओर नज़र डालते हुए उनकी बीवी ने कहा। "चीनी चाहिए तो खुद ले लो। मैं कोई ज़रख़रीद नौकरानी नहीं!"

अगासफ़-अगा ने पूरी शक्ति से मेज़ पर घूंसा पटक दिया।

तख़्ती व गोटियां उछलकर लकड़ी के फ़र्श पर लुढ़क पड़ीं।

"यह किसका घर है?" ग़ुस्से से आग-बबूला होते हुए अगासफ़-अगा चीखे। "तुम्हें मुझसे इस तरह बात करने की हिम्मत कैसे हुई? मैं क्या चोर हूं, हत्यारा हूं? मैं पूछ रहा हूं, तुम मुझसे इस तरह क्यों बात कर रही हो?"

ग़ज़नफ़ार उठकर दबे पैरों पर कमरे से बाहर चला आया। पहली मंज़िल से उतरते समय उसे सुनाई दिया: "मैं तुमसे हज़ार बार कह चुकी हूं। उस नाई को हमारे घर में क़दम रखने की कोई ज़रूरत नहीं। उसे यहां मत लाया करो!"

"यह तुम्हारा नहीं, मेरा घर है! जिसे चाहूंगा, लाऊंगा।"

यह एक अजीबोग़रीब रोज़-रोज़ होनेवाला झगड़ा था और जैसे शुरू हुआ था, उसी तरह एकाएक बन्द भी हो गया। अगासफ़-अगा सोने के कमरे में गये और पाजामा पहनकर आराम से बिस्तरे पर लेट गये। वहां लेटे-लेटे वह सूजी नसों में खून की टपक महसूस करते रहे और यह उन्हें बड़ा ही आनन्ददायी लगा। जाने-पहचाने ढंग से व तेज़ी से उनके विचार प्रवाहित होने लगे। वह अपनी बीवी के बारे में सोच रहे थे और उनकी समझ में नहीं आ रहा था कि वह किस बात पर नाराज़ है। "जैसे कि मैं इस इमारत में सबसे ज़्यादा नहीं कमाता। मैं उसे सब कुछ देता हूं। गर्मियों में किसलोवोद्स्क जाना

चाहती हो? तो जाओ। तीन महीने क्या चार महीने के लिए जाओ। अपनी सहकर्मियों को बुलाना चाहती हो? बुला लो। चाहो तो हर दिन बुलाओ। उसके पास सब कुछ है। और उसे क्या चाहिए? आदमी का क्या काम है? अपनी आजीविका कमाना। इस इमारत में मुझसे ज़्यादा कोई नहीं कमाता! असल में सारी परेशानी की जड़ में उसका परिवार है – परलोक सिधारी उसकी मां भी डायन थी। यही तो सारी दिक़्क़त है।"

इस ख़्याल से अगासफ़-अगा को मानसिक शान्ति महसूस हुई। दायीं करवट लेकर अगासफ़-अगा सोने ही वाले थे कि उन्हें सामिद के हाथ का स्पर्श महसूस हुआ।

"क्या बात है, बेटे?" अगासफ़-अगा ने पूछा। उन्हें अपने बच्चों से बेहद प्यार था और उन्हें देखते ही उनका एकदम बिगड़ा मूड भी ठीक हो जाता था।

"पापा," सामिद ने कहा, "मुझे कुछ पैसे चाहिए।"

"कितने?" अगासफ़-अगा ने पूछा।

"सच कहूं तो पांच रूबल," सामिद बोला। "लेकिन अगर आप तीन भी दे देंगे तो मेरा काम चल जायेगा।"

"तीन क्यों?" बाप को हैरानी हुई। "मैं तुम्हें पांच दूंगा।" जेब में हाथ डालकर उन्होंने पांच का नोट निकालकर बेटे को थमा दिया। "तुम्हें किस लिए चाहिए?"

"यूं ही," सामिद बोला। "दरअसल हम एक सचमुच का फ़ुटबाल ख़रीदना चाहते हैं।"

"और तुम आज क्यों इतना मुंह फुलाये हो?" पास में ही चुपचाप खड़े आठ वर्षीय फ़ाज़िल से अगासफ़-अगा ने कहा। "यह रहा एक रूबल तुम्हारे लिए। चाहो तो आइसक्रीम ख़रीद कर खा लो।"

"स्कूल के क्या समाचार हैं?" सोने के लिए लेटते हुए अगासफ़-अगा ने सामिद से पूछा।

"ठीक ही है!" सामिद ने उल्लसित होकर जवाब दिया।

"मां कह रही थी कि किसी चीज़ में तुम्हें 'दो' मिला है... विषय... मुझे नाम नहीं याद आ रहा है... त्रिको... या...

"त्रिकोणमिति," बेटा हंसकर बोला। "सब ठीक है, इसमें चिन्ता की कोई बात नहीं, पापा।"

अगासफ़-अगा इस हिदायती बातचीत को ख़त्म करके, दोनों लड़कों को चूमने के बाद सोने ही जा रहे थे कि बीवी कमरे में आ पहुंची।

"हम आज रात में सिनेमा देखने जा रहे हैं," उसने पति को बताया।

"किस शो में?" अगासफ़-अगा ने सांस रोककर पूछा।

"दस बजेवाले शो में।"

"तब तो अभी समय है," अगासफ़-अगा को प्रसन्नता हुई। "मैं एक घण्टा सो लूंगा फिर हम चलेंगे। शुक्र है कि हॉल पास में ही है।"

"नहीं, नहीं!" बीवी बीच में ही बोल उठी। "काफ़ी दूर है हम 'अज़रबैजान' में जायेंगे। बस तुम अब उठ जाओ, दाढ़ी बनाकर तैयार हो जाओ।"

"ज़रा सोचो," अगासफ़-अगा गिड़गिड़ाये। "मैं थका हूं, मेरे पैरों में दर्द है। क्या हम छुट्टी के दिन सिनेमा नहीं जा सकते?"

"मैं भी औरों की तरह देखना चाहती हूं – पहले दिन।"

"मैं सिनेमा देखने नहीं जाऊंगा!" अगासफ़-अगा चिल्ला पड़े। "मैं इसी मकान में मर जाऊंगा और तुम्हें मेरी परवाह तक नहीं होगी।"

"बहुत हुआ!" कमरे में घुसते हुए सामिद ने कहा। "मैं यह सब सुन-सुनकर आजिज़ आ गया हूं। बन्द कीजिए। पड़ोसी आप पर हंस रहे हैं..."

"देखते हो?" अगासफ़-अगा की बीवी ने बेटे से शिकायत की। "क़ुसूर मेरा है। मैं इस आदमी को ज़बर्दस्ती सिनेमा ले जाना चाहती हूं! यह मेरा ही क़ुसूर है कि तुम्हारे पिता नाई की दुकान में काम करते हैं। मेरा ही क़ुसूर है!"

सामिद निराशा से हाथ झटककर चला गया।

अगासफ़-अगा ने अपना सबसे बढ़िया सूट पहना, नयी भूरी बरसाती पहनी। पारखी आंखों से उन्हें जांचते हुए बीवी ने जूते बदलने के लिए कहा फिर उनसे कफ़लिंग बदलवाये। आख़िर सन्तुष्ट हुई। कपड़ों की आलमारी से अपना कोट निकालकर उसने पति को पकड़े रहने के लिए दे दिया। इधर कुछ समय से वह जब भी घर से बाहर जाती थी, हर बार पति को कोट पहनने में मदद करने के लिए कहने लगी थी।

उन्हें अच्छी सीटें मिली थीं – वीथी की दसवीं क़तार में। अगासफ़-अगा भी ख़ुश थे। बड़े सन्तोष से उन्होंने बीवी को देखा। उसने बहुत बढ़िया कपड़े पहन रखे थे – कानों में हीरे के झुमके थे, सुचिक्कण हाथों में हीरे-जड़ित कंगन थे, अंगुलियों में अंगुठियां थीं। वे नक़ली नहीं, असली हीरे थे। और असली होना भी चाहिए। अगासफ़-अगा बीवी को क़ीमती चीज़ें देना पसन्द करते थे और उनकी कमाई भी इतनी थी कि वे हर साल दे सकते थे।

"निस्सन्देह, इस सिनेमा हॉल पर आकर हमने अच्छा ही किया। यहां ध्वनि बड़ी अच्छी है और दर्शक भी हमेशा अच्छे लोग होते हैं," अपनी सीटों की ओर बढ़ते हुए एक जोड़े की ओर इशारा करते हुए अगासफ़-अगा ने कहा।

"वह विज्ञान अकादमी का उपाध्यक्ष है," उन्होंने बीवी के कान में बुदबुदाकर कहा।

उपाध्यक्ष ने उनके पास से जाते हुए अगासफ़-अगा का शालीनतापूर्वक अभिवादन किया।

"वह जनरल मामेरोव है," अपने एक अन्य परिचित से हाथ मिलाते हुए अगासफ़-अगा ने कहा। पता चला कि वहां उनके अनेक परिचित थे और सबने उनका गर्मजोशी से अभिवादन किया।

"इन सब लोगों को तुम कहां से जानते हो?" बीवी ने पूछा।

"मैं इन सब को जानता हूं। सब मेरा आदर करते हैं।"

बीवी ने तिरस्कारपूर्वक अपने कन्धे उचका दिये।

फ़िल्म के शुरू होते ही अगासफ़-अगा ने बीवी का कोट लेकर अपने हाथों में रख लिया जिससे कि वह आराम से फ़िल्म देख सके। फिर साथ में लाये दो आइसक्रीमों को दांतों से चबा-चबाकर खाना शुरू कर दिया। वे अत्यन्त आनन्दमग्न थे, उनके पैरों में पीड़ा भी न थी, फ़िल्म दिलचस्प थी और आइसक्रीम उनके मुंह को शीतलता पहुंचा रहा था।

उनके पीछे बैठे कुछ लोग ठहाका लगाकर हंस पड़े।

"दांत चलाना बन्द करो!" बीवी उनसे बुदबुदाकर बोली।

अगासफ़-अगा ने चबा-चबाकर खाना तो बन्द कर दिया था लेकिन अब उनसे फ़िल्म नहीं देखी जा रही थी।

जब वे घर लौटे, बच्चे सो चुके थे। अगासफ़-अगा उनके सोने के कमरे में चले गये। सांस रोके वह बच्चों को देखते रहे और हमेशा की तरह बच्चों को देखकर उनमें कोमलता की लहर-सी दौड़ गयी। छोटे ने बिस्तर की चादरें पैर से मारकर नीचे गिरा दी थीं। अगासफ़-अगा ने चादरें ओढ़ाकर दोनों को चूम लिया। फिर वह कमरे से बाहर आ गये। चूंकि नीन्द नहीं आ रही थी इसलिए अगासफ़-अगा बरसाती पहनकर बाहर सड़क पर चले आये।

अपनी इमारत के सामनेवाले चौक में अगासफ़-अगा चिरपरिचित जगह पर जा बैठे। बीवी से झगड़ा होने के बाद वह आम तौर से यहीं आकर बैठ जाते थे। पासवाली बेंच पर एक नौजवान जोड़ा बैठा-बैठा चूमा-चाटी कर रहा था; उन्हें इस बात में कोई दिलचस्पी न थी कि पास में बैठे अगासफ़-अगा पर इस चूमा-चाटी का क्या असर होगा। बड़ी झिझक महसूस करते हुए अगासफ़-अगा लड़की के नंगे घुटनों व कूल्हों से नज़रें बचाने की कोशिश कर रहे थे। लड़की का फ़्राक छोटा-सा था और अगासफ़-अगा का मन हुआ कि जाकर लड़के से कहें: "सुनो, तुम्हारी प्रेमिका का फ़्राक बहुत छोटा है।" लेकिन शायद वह बुरा मान जायेगा और यह सोचकर उन्होंने इरादा बदल दिया।

"अभी तो चूमा-चाटी कर रहे हैं," अचानक मन में पैदा हुई कड़वाहट के साथ अगासफ़-अगा ने सोचा। "देखूंगा, विवाह के बाद क्या होता है, चौक में बैठकर दोनों चूमा-चाटी करते हैं या नहीं। मैं भी लड़कियों के चुम्बन लिया करता था," और अगासफ़-अगा अपनी बीवी के बारे में सोचकर बहुत दुखी हो उठे।

इसी समय गज़नफ़ार उनकी बग़ल में आकर बैठ गया। अगासफ़-अगा उसे देखकर प्रसन्न हो उठे।

"नीन्द नहीं आयी?" गज़नफ़ार ने पूछा।

"उसकी बात का बुरा मत मानो," अगासफ़-अगा बोले। "वह बुरी नहीं, सिर्फ़ गर्म मिज़ाज है।"

"मैंने बुरा नहीं माना है," गज़नफ़ार ने कहा। "मुझे आपके लिए खेद है। माफ़ कीजिए लेकिन आप इतने दक्ष नाई हैं कि सारा शहर आपको जानता है। सभी आपका आदर करते हैं। यूं तो आप

नेकदिल भी हैं लेकिन इस मकान में रहनेवाले सभी लोगों में आपका जीवन सबसे ख़राब है। वह आपका आदर नहीं करती है, दूसरों के सामने आप पर चीख़ती-चिल्लाती है। ज़रा सोचिये – उसने संस्थान की परीक्षा पास की। आपके पैसों से। आपके बिना उसकी हैसियत ही क्या है!"

गज़नफ़ार की हिमाक़त से अगासफ़-अगा पल भर के लिए हक्का-बक्का रह गये।

"सुनो, यह मत भूलो कि तुम किससे बात कर रहे हो... क़सम खाकर कहता हूं, अगर मैं तुम्हें अपने बेटे की तरह नहीं मानता तो कभी इस बात के लिए माफ़ न करता... अभी तुम नौजवान हो, तुम्हारी समझ में यह बात नहीं आती। बीवी का मतलब कुछ भी नहीं होता है। जीवन में सबसे महत्वपूर्ण हैं बच्चे। मेरे दो बेटे हैं... वे बड़े होकर मेरे मित्र बन जायेंगे। वे सारी बातें समझने के लायक़ बन जायेंगे, वे मुझसे स्नेह करेंगे और हर बात में सलाह लेंगे। अभी वे मेरी अपेक्षा मां के अधिक निकट हैं। यह स्वाभाविक ही है। वह उनका लालन-पालन करती है। लेकिन जब वे बड़े हो जायेंगे ... समझे?"

गज़नफ़ार ने अविश्वासपूर्वक कन्धे उचका दिये।

"तुम मेरा विश्वास करो... मैं सब कुछ उन्हीं लोगों की ख़ातिर सह रहा हूं..."

"ज़िन्दगी तो रुकी नहीं रहेगी..." गज़नफ़ार बोला।

"ज़िन्दगी अभी भी बाक़ी है... ओह, हां। देर हो चुकी है। चलो, घर चलें। कल हमें जल्दी उठना है।"

पल भर के लिए चूमा-चाटी बन्द करके पासवाली बेंच पर बैठा जोड़ा दोनों दोस्तों को जाते देखते रहा।

हमेशा की तरह अगासफ़-अगा सुबह में घर के बाक़ी लोगों से पहले जाग गये। चुपचाप रसोई में जाकर उन्होंने नियमपूर्वक व्यायाम किया। बड़े बेटे के दो पौण्डवाले बारबेलों से भी थोड़ी कसरत की। फिर डबलरोटी के कुछ टुकड़ों को सेंककर उन्होंने कड़ी असली लंका की चाय तैयार की। बैठकर अच्छी तरह नाश्ता किया। कपड़े पहन चुके अगासफ़-अगा सोनेवाले कमरे में जा पहुंचे। उनकी बीवी अभी-अभी जागी थी।

"तुम्हें मालूम है, आज सामिद का सोलहवां जन्म-दिन है?"

"अय-यय-अय," अगासफ़-अगा बोले और बच्चों के सोने के कमरे में चले आये। "मुबारक हो! तुम सुखी और बुद्धिमान बनो जिससे कि तुम्हें देखकर मुझे खुशी हो। क्या तुम्हारे साथी आयेंगे?"

सामिद ने सिर हिला दिया।

"बहुत अच्छे। अच्छे आदमी के हमेशा काफ़ी सारे साथी होते हैं। हमारे घर में सबका स्वागत है।"

अहाते में जब सीढ़ियों से उतरकर अगासफ़-अगा पहुंचे, वह बहुत प्रसन्न थे। गज़नफ़ार बाहर खड़ा उनकी प्रतीक्षा कर रहा था।

चलते-चलते अगासफ़-अगा ने हर्षातिरेकपूर्वक कहा: "लगता है तुम्हें जीवन का कोई ज्ञान नहीं... सुनो, इससे क्या फ़र्क पड़ता है कि मेरी बीवी मेरा आदर करती है या नहीं... मैं अपने शानदार बच्चों के अलावा किसी की रत्ती भर भी परवाह नहीं करता हूं... बच्चे जो मेरे भावी मित्र हैं। यह बात मुख्य है। क्या तुम्हारी बीवी तुम्हारा आदर करती है?"

"हां," गज़नफ़ार बोला। "और वह मेरा आदर जीवन भर करती रहेगी। मैं उसके लिए दुनिया में सबसे महत्वपूर्ण आदमी हूं..."

तरस खाते हुए अगासफ़-अगा ने उसकी ओर घूरकर देखा और हंसते हुए कहा: "बच्चे हो! एकदम बच्चे!"

दोपहर की छुट्टी के समय अगासफ़-अगा कैफ़े में खाना खाने नहीं गये। अपनी छुट्टी का इस्तेमाल उन्होंने शैम्पेन की छह बोतलें ख़रीदने में किया। गज़नफ़ार का घर से लाया गया खाना उन दोनों के लिए काफ़ी साबित हुआ। कर्मचारियों के लिए निर्धारित कमरे में बैठकर दोनों ने स्वाद ले-लेकर डोल्मा* खाया और साथ में मत्सोनी** पी। मत्सोनी की बोतल गज़नफ़ार ने एक छोटे-से सूटकेस से निकाली थी।

"क्या तुम्हारी बीवी हर दिन ऐसा खाना बनाती है?" अगासफ़-अगा ने पूछा।

---

* डोल्मा – गोश्त व चावल को अंगूर के पत्तों में भरकर बनाते हैं। सं०

** मत्सोनी – चटनी।

गर्व के साथ गज़नफ़ार ने सिर हिला दिया।

"खाना अच्छा बनाती है," अगासफ़-अगा बोले। "ध्यान रखो, नहीं तो मोटे हो जाओगे। हां, तो अब काम का समय हो गया। शुक्रिया।"

अगासफ़-अगा लगभग हर ग्राहक से बता रहे थे कि आज उनके बड़े लड़के का सोलहवां जन्म-दिन है, पूरी क्लास जन्म-दिन मनाने आयेगी और यह कि पहले तो शराब ख़रीदने की उनकी इच्छा न थी लेकिन फिर सोचा कि एक-एक गिलास शैम्पेन पीने में क्या हर्ज है। ग्राहकों ने उन्हें बधाई दी और कहा कि एक-एक गिलास शैम्पेन पीने से कोई नुक़सान नहीं होगा।

"उसकी क्लास में अच्छे बच्चे है, अच्छे-अच्छे परिवारों के। सब के सब आज हमारे घर आ रहे हैं," नाई की दुकान में सब किसी को अगासफ़-अगा ने बता दिया।

रेडियो पर ज़ेइनब ख़ानलारोवा का एक कंसर्ट एलान किया गया। बातचीत थम गयी। कंसर्ट के समय नाईखाने में बातचीत आम तौर पर बन्द की जाती थी।

"आह कितना अच्छा गाती है!" अगासफ़-अगा ने आह भरी। जब वह तेसनिफ़* गा रही थी तो उनकी आंखें तक उमड़ आयीं। अगासफ़-अगा प्रकृति से भावुक आदमी थे। "कौन जानता है, उसकी शादी हुई है या नहीं?" उन्होंने पूछा।

नाईखाने में किसी को मालूम न था।

"उसकी शादी हुई है या नहीं, इससे आपको क्या?" एक ग्राहक ने पूछा।

"मैं उसके लिए अच्छे बच्चों की दुआ करना चाहता हूं। वह लोगों को गीत सुनाकर सुख पहुंचाती है। उसे भी सुखी होना चाहिए।"

इसके साथ ही कला के बारे में बातचीत ख़त्म हो गयी। घड़ी की ओर देखकर अगासफ़-अगा अपना काम जल्दी-जल्दी निबटाने लगे। वह बेसब्री से गज़नफ़ार की प्रतीक्षा कर रहे थे। एक मोटे कर्नल की दाढ़ी बनाकर वह भी बाहर आ गया।

---

* तेसनिफ़ – लोक गीत।

बाकू में वसन्त के शीघ्रागमन का संकेत मिलने लगा था। झुटपुटा हो आया था। शाम की हवा में बबूल की उड़ती बू व्याप्त थी। शैम्पेन की बोतलोंवाला झोला गज़नफ़ार को पकड़ाकर अगासफ़-अगा आनन्दपूर्वक हवा सूंघते धीमे-धीमे चल रहे थे।

"आदमी को ज़्यादा कुछ नहीं चाहिए," उन्होंने गज़नफ़ार से कहा। "अगर घर पर सब लोग स्वस्थ हों तो बाक़ी चीज़ें उतनी अहम नहीं। देखो, वसन्त फिर यहां आ गया है। पता नहीं और कितने वसन्त आयेंगे।"

अहाते में पहुंचकर गज़नफ़ार ने अगासफ़-अगा को बेटे के जन्मदिन पर बधाई दी।

"शुक्रिया," अगासफ़-अगा ने कहा। "भगवान करे कि हम तुम्हारे बेटे की सेहत का जाम पीयें। अब तुम्हें भी बाप बनना ही चाहिए।"

चाबी से दरवाज़ा खोलकर अगासफ़-अगा घर के अन्दर जा पहुंचे। मेहमानों के स्वागत के लिए खानेवाले कमरे को साफ़-सुथरा करके हर चीज़ ठीक ढंग से सजा दी गयी थी। रसोई में सामिद चीनी फेंट रहा था। बीवी अंगीठी के पास काम में व्यस्त थी।

"मैं क्यों तुम्हारे पिता से कहने लगी? तुम ख़ुद बड़े हो चुके हो। ख़ुद कहो। इसमें कोई ग़लत बात नहीं।"

"बात क्या है?" अगासफ़-अगा ने पूछा।

"कुछ भी नहीं," बीवी बोली।

अगासफ़-अगा ने रसोई में खाना खाया। पुलाव बड़ा अच्छा बना था। उनकी बीवी ने बेटे के जन्म-दिन पर ख़ास तौर से बनाया था। बड़े अच्छे ढंग से बनाया गया; चावल का एक-एक दाना अलग-अलग था; पुलाव चर्बी से तो तर था ही, ऊपर से पीली-पीली हल्दी भी, छिड़की गयी थी। आधा गिलास कोन्याक ढालकर अगासफ़-अगा ने बेटे व परिवार की ख़ुशी के लिए पी।

"मेहमानों के आने तक मैं सो रहता हूं," उन्होंने तय किया। जब वह कमरे में पहुंचे तो देखा कि वहां से बिस्तर नदारद थे।

"बच्चे यहां डांस करेंगे। बिस्तरे हमने बच्चों के कमरे में रख दिये हैं," बीवी बोली। "सुनो, सामिद तुमसे कुछ कहना चाहता है लेकिन झेंपता है..."

"झेंपता क्यों है?" अगासफ़-अगा ने कहा। "हमें एक दूसरे को कोई भी बात बताने में लजाना नहीं चाहिए। बेटे, तुम क्या कहना चाहते हो?"

"पापा, बात यह है, कि मैंने पूरी क्लास को बुला लिया है – आप ही ने कहा था न... लड़कों को भी, लड़कियों को भी... लेकिन उन्हें आपके सामने शर्म आती है। क्या आप बारह बजे तक कहीं जा नहीं सकते... आप बुरा न मानें..."

"इसमें बुरा मानने की कोई बात ही नहीं," मां बोली। "मैं भी सब को खिलाकर रसोई में या पड़ोसियों के यहां चली जाऊंगी... सब यही करते हैं... इसमें बुरा मानने की कोई बात नहीं..."

"आप लोग मुझे क्या सिखाना चाहते हैं?" अगासफ़-अगा बोले। "मैं खुद समझता हूं। मैं तुम्हारे मेहमानों के लिए परेशानी का कारण नहीं बनूंगा। तुम्हारी अपनी पसन्द-नापसन्द हैं, मेरी अपनी। और फिर मैं घूमने के लिए तो जाना ही चाहता था..."

इमारत के सामनेवाला बग़ीचा नियॅन बत्तियों से रोशन था। वसन्त की खुशगवार बयार चल रही थी, यह वसन्त की वही बयार थी जो कवियों को कविताएं लिखने को बाध्य कर देती है चाहे अच्छी हो या बुरी। अगासफ़-अगा अपनी चिरपरिचित जगह पर जा बैठे। वहां बैठकर बच्चों को खेलते देखना आनन्ददायी था। थोड़ी देर बाद बच्चे चले गये और जवान जोड़े आने लगे। वे आम तौर से चूमा-चाटी में ही लगे रहते थे। सिर्फ़ वही बेंच खाली थी जहां पर अगासफ़-अगा बैठे थे। किसी भी आदमी ने इस भारी-भरकम, सूजे चेहरे व उदासीन भाव-मुद्रावाले घरेलू जैसे व्यक्ति की ओर कोई ध्यान नहीं दिया... या शायद बात अगासफ़-अगा के रंग-रूप में नहीं थी... वसन्त में ज़्यादातर लोग अपने आप में ही मस्त रहते है...

फिर गज़नफ़ार आ पहुंचा। वह बोला कुछ भी नहीं, चुपचाप आकर अपने मित्र की बग़ल में बैठ गया। लेकिन अगर कोई ध्यान से देखता तो पाता कि दोनों आदमी एक-दूसरे का संग पाकर कितने आनन्दित हो उठे... लेकिन ज़रा आप ही बताइये, वसन्त की ऐसी शानदार शाम में किसको दूसरे की ओर देखने की ज़रूरत पड़ी है?

"मैं बहुत खुश हूं," अगासफ़-अगा बोले। "आज मेरे बेटे का सोलहवां जन्म-दिन है... भगवान करे कि तुम्हें भी यह खुशनसीबी हासिल हो... जानते हो, सागर तट पर पिरशागी में मेरी थोड़ी-सी ज़मीन है। कई वर्षों से मैं वहां पर एक मकान बनवाने का सपना देखता आया हूं। मैं क़सम खाकर कहता हूं, अगले कुछ वर्षों में बना डालूंगा। तुम आना और देखना... मेरे बेटे बड़े हो जायेंगे और हम साथ-साथ शिकार खेलेंगे, मछली पकड़ेंगे। हर रात मैं बेटों के साथ बैठकर जीवन व राजनीति के बारे में बातें किया करूंगा... तुम तो जानते ही हो, मुझे राजनीति के बारे में बातचीत कितनी पसन्द है... और हर रात हमारे यहां मेज़ पर मेहमानों की भीड़ जमेगी... और हम, हमारे बेटे सबसे मीठी-मीठी बातें करेंगे, सब के लिए रोटी का टुकड़ा होगा और सोने को मुलायम बिस्तरा..." अगासफ़-अगा बोलते ही बोलते गये। गज़नफ़ार सुन रहा था लेकिन कुछ टोक नहीं रहा था क्योंकि वह महसूस कर रहा था कि अगासफ़-अगा को अपनी बातों पर दृढ़ विश्वास है और किसी के विश्वास को तोड़ना नहीं चाहिए क्योंकि यह सचमुच का एक पाप है।

रुस्तम इब्रागिमबेकोव

(जन्म १९३९)

एक प्रतिभाशाली गद्यकार, सिनेलेखक तथा नाटककार हैं। इनका जन्म व लालन-पालन बाकू में हुआ। वह एक प्रशिक्षित बिजली मिस्तरी हैं। १९६७ में उन्होंने मास्को में सिने-लेखन का उच्च पाठ्यक्रम पूरा किया। इनके सिने-लेखन पर कई फ़िल्मों का निर्माण हुआ है। उनमें सर्वाधिक लोकप्रिय है – 'मरुभूमि का सफ़ेद सूरज'। रुस्तम इब्रागिमबेकोव के नाटकों – 'हरे द्वार के पीछेवाली औरत', 'शेर-सा दिखनेवाला आदमी', 'अपनी राह पर' – का पूरे सोवियत संघ में इन दिनों प्रस्तुतीकरण चल रहा है। 'विस्मृत अगस्त' शीर्षक संग्रह में संकलित उनके लघु उपन्यास ने 'उस दक्षिणी नगर में' उन्हें गद्यकार के रूप में राष्ट्रीय प्रसिद्धि दिलायी।

रुस्तम इब्रागिमबेकोव को मनोविज्ञान पर गहरा अधिकार है और उनकी दिलचस्पी हमारे युग की नैतिक समस्याओं में है।

रुस्तम इब्रागिमबेकोव

सागर तट पर एक बंगला

उसे सुबह आठ बजे मश्तागी पहुंचना था और भाड़े पर एक मज़दूर साथ लेकर उसे बिलगया में बन रहे बंगले पर पहुंचाना था।

"मैं यह काम क्यों करूं?" पतलून पहनते हुए वह सोच रहा था। "और फिर इसमें तुक ही क्या है?"

वह तीस साल का हो चुका था। आर्थिक प्रबन्ध की प्रणालियों में स्थायित्व के सिद्धान्त की कुछ पद्धतियों को क्रियान्वित करने की सम्भावनाओं के सम्बन्ध में उसे एक लेख सोमवार तक पूरा करना था। पिछले कुछ वर्षों में उसने अपने अविवाहितों के फ़्लैट में एक कील तक ठोकने की ज़हमत नहीं उठायी थी और इसलिए अब मश्तागी जाकर मां के घर की छत डालने के लिए एक मज़दूर ढूंढ़ लाने की बात उसे बड़ी अन्यायपूर्ण लग रही थी।

मोटी, थुलथुली, क्षीण सांसोंवाली उसकी मां को इंजीनियर का डिप्लोमा मिला था और वह अशक्त होने के कारण पेंशन पा रही थी – उसके सीने में दर्द रहता था और पैरों में भी बीमारी ने घर कर रखा था। अचानक उसे "ज़मीन के एक टुकड़े" की ज़रूरत महसूस हुई थी जिसकी

जुताई-बुवाई वह ख़ुद करना चाहती थी। इससे पहले ज़मीन की लालसा उसमें कभी भी न थी ; किसी चुस्त व कामकाजी आदमी की तरह वह किसी भी संस्थान का आर्थिक दायित्व सम्भालने में समर्थ थी, किसी और काम के लिए उसके पास कभी वक़्त नहीं होता था।

लेकिन तभी अचानक ही एक दिन उसने अपना फ़ैसला सबको सुना दिया, वह अपनी ख़्वाहिश पूरी करने में इस तरह पिल पड़ी थी कि लगता था, यह ख़्वाहिश जीवन भर से उसके दिल में बसी रही थी। निस्सन्देह, इसका श्रेय उसे मिलना चाहिए कि जीवन के आरम्भ काल में वह अपना उत्साह बच्चों में पैदा करने में सफ़ल रही थी। उस समय वे सब इकट्ठे बाकू के चौथे पैरालेल सड़क के एक पुराने-से फ़्लैट में रहते थे। फ़्लैट पुराना लेकिन काफ़ी अच्छा था। इसकी एक खिड़की से पास-पड़ोस का किर छतवाला मकान दिखाई देता था। उसमें एक दरारदार लकड़ी की बॉलकनी थी। एक मुलबैक पियानो था और लम्बे कॉरीडोर जितना ही लम्बा विश्व मानचित्र वहां टंगा रहता था। तब वह २७ साल का था और उसका बड़ा भाई – जो एक प्रसिद्ध यूरोलाजिस्ट बन चुका था – ३० साल का था।

मां विक्षुब्ध तथा कृत-संकल्प घर लौटी थी। विश्व मानचित्र के नीचे लकड़ी के एक बक्से पर बैठकर दम लिये बिना वह गांव में बंगला बनाने का अपना फ़ैसला सुनाने लगी। बीच-बीच में उठती तेज़ खांसी उसके बोलने में बाधा डाल रही थी।

उसके बाद कई हफ़्तों तक जब वह अभी ऐसे ख़रीद-फ़रोख़्त के लिए ज़िम्मेदार ट्रस्ट के ज़रिये अप्शेरोन प्रायद्वीप में ज़मीन का टुकड़ा पाने के लिए कोशिश ही कर रही थी, उनके रोज़मर्रे के पारिवारिक वार्तालाप में "बरामदा व अंगूर की बग़ियावाले छोटे से आरामदेह बंगले" की चर्चा लगभग स्थायी-सी हो गयी। अपने-अपने काम पर जाने से पहले सुबह में और शाम को भोजन के बाद परिवार में सागर-तटवाले घर के बारे में ही सब अपनी-अपनी बातें कहते। मां घर के निर्माण के बारे में एक-एक बात विस्तार से बताती, घर के अहाते में एक कुआं होगा जिसमें मोटर लगायी जायेगी, चूज़ों के लिए मुर्गी-खांना बनाया जायेगा। आपस में घर के लिए शुरू से आखिर तक की डिज़ाइन तैयार की जाती और हम सपने देखते कि गर्मी के एक तेज

उमसते दिन हम वहां पहुंचेंगे और एक-एक मुर्गी खाकर जल्दी-जल्दी समुद्र के क़िनारे दौड़ पड़ेंगे।

लेकिन जब गर्मी आ गयी, यह स्पष्ट हो गया कि गांव में बंगले का निर्माण उनके परिवार के लिए मात्र थोथी कल्पना ही थी। परिवार के लोगों ने अपनी शक्ति का अनुमान बहुत बढ़-चढ़कर लगाया था : इसके अलावा कि बंगला बनाने की उनकी जानकारी बहुत थोड़ी थी, यह भी सिद्ध हो गया कि मां के अलावा इस काम पर समय लगानेवाला भी कोई न था। सब के सब अपने-अपने कामों में ही फंसकर रह जाते थे। इस योजना से सबसे पहले अपना पल्ला बड़े भाई ने झाड़ लिया था। यह तब हुआ जब अधिकांश पत्थर व सीमेण्ट ज़मीन के टुकड़े तक पहुंचाया जा चुका था।

ज़मीन से लगभग ३०० मीटर की दूरी पर पत्थर ढोनेवाली दूसरी ट्रक बालू में फंस गयी। जलती धूप में कई घण्टों की कोशिशों के बाद ट्रक किसी तरह निकाली जा सकी। फिर बिना आराम किये जिससे कि रात होने से पहले काम निबटा लिया जाये, सब के सब पत्थरों के टुकड़े निर्माण-स्थली तक ढोते रहे। चूंकि अधिक उठा ले जाना असम्भव था, इसलिए हर आदमी पत्थर के दो-दो टुकड़े ढो रहा था। पैरों को झुलसाती बालू में रख-रखकर पसीने से तरबतर हम पत्थर ढो रहे थे। क्षीण सांस तथा सीने में दर्द से पीड़ित मां भी काम करने से बाज़ नहीं आयी थी। उसके पास जितनी ताक़त थी, उसी के मुताबिक एक पत्थर उठाकर वह धीमी-धीमी चाल से निर्माण-स्थली की ओर चल पड़ती लेकिन क्या मजाल कि कोई उसे काम करने से मना कर सके। कभी-कभी तो वह थककर बालू में भहराकर बैठ जाती थी और ज़ोरों से हांफने लगती थी....

इसी दिन बड़े भाई ने घोषणा कर दी थी कि अपने शोध-प्रबन्ध में कई हफ़्तों तक व्यस्त रहने के कारण वह निर्माण-स्थली पर नहीं आ सकेंगे।

मां उस रात ख़ूब रोयी थी – वह कुछ दूर पर अपने पिता के साथ लेटा मां की कम्बल के कारण दबी-दबी सुबकियां सुनता रहा था लेकिन सुबह में कुछ बोले बिना पत्थर के दो टुकड़े उठाकर वह निर्माण-स्थली की ओर चल पड़ी थी...

और दूसरे दिन पास में ही रहनेवाले एक बूढ़े पत्थर का काम करनेवाले मिस्तरी को भाड़े पर रखकर उसने निर्माण शुरू करा दिया था। बूढ़े का १२ वर्षीय पोता गधे पर पानी व पत्थर ढो-ढोकर ला रहा था, सीमण्ट खुद मां मिलाती थी, मिस्तरी पत्थरों को जोड़-जोड़कर दीवार खड़ी कर रहा था और पेशे से दार्शनिक पिताजी उनके लिए खाना बना रहे थे। पिताजी इसके अलावा और किसी भी तरह निर्माण के काम में मदद कर पाने में असमर्थ थे – न तो तन से, न मन से वे इसके उपयुक्त थे।

कभी पैसों की कमी के कारण, कभी निर्माण सामग्रियों की कमी के कारण और उससे भी ज़्यादा खराब सड़क के कारण निर्माण का काम लगातार रुक-रुककर धीमी गति से आगे बढ़ता रहा: ज़मीन के टुकड़े के गिर्द एक बाड़ा डाल दिया गया, कुआं खोद दिया गया जिसमें दिन भर में कुछेक बाल्टियां पानी जमा हो जाता था और दीवारें खड़ी कर दी गयी थीं ...

और अब मंसूर को – दादाजी के सम्मान में उसे यही नाम दिया गया था – ८ बजे तक मश्तागी पहुंचना था और भाड़े पर एक मज़दूर लेकर छत डालने के लिए यहां वापस लौट आना था ...

पतलून पहनने के बाद मेज़ के पास जाकर उसने अपने कल के लिखे लेख का आख़िरी वाक्य पढ़ा। उसे वाक्य बड़ा ही नापसन्द आया। "यह काम मैं ही क्यों करूं?" अपने दिन के कार्यक्रम के बारे में सोचकर वह फिर दुखी हो उठा। सात बजनेवाला था। दाढ़ी बनाने के लिए सिर्फ़ दस मिनट बच रहे थे।

बाथरूम से हाथवाला आईना लाकर वह खिड़की के पास बैठ गया और शेवर का प्लग लगाते-लगाते उसने अनगिनत बार पहले की तरह ही आज भी क़सम खायी कि कल ज़रूर दीवारवाला शीशा ख़रीद लायेगा।

दाढ़ी बनाने के बाद मंसूर ने बड़े भाई को फ़ोन किया कि दो बजे तक वह उसकी प्रतीक्षा करे। बड़ा भाई, निस्सन्देह, उस समय तक सो रहा था।

"मैं मज़दूर को वहां पहुंचाकर फ़ौरन लौट आऊंगा। मैं इस सारे लाम-काफ़ से आजिज़ आ गया हूं ..." मंसूर ने अपने भाई से कहा

और ज़मीन पर चल रहे काम के बारे में बताया। भाई की इस बात से भी उसने सहमति जतायी कि मां अपने ख़राब स्वास्थ्य के कारण वहां अकेली नहीं रह पायेगी और पिताजी पर निर्भर करना बेकार ही था – एक बार वह शहर आ गये तो उन्हें दुबारा उस बंगले तक लौटा ले जाने में हफ़्ता भर से कम समय नहीं लगेगा।

"पूरी तरह से समय व ताक़त की बर्बादी है," भाई ने थोड़े में कहा। "उस बंगले के लिए इतनी अधिक मुसीबतें उठायी जा रही हैं और आख़िर में होगा यह कि वह वहां रह भी नहीं पायेगी ...

फ़ोन रखकर मंसूर सोचने लगा कि उसका भाई कितना ख़ुशक़िस्मत था; उसने हर चीज़ से पिण्ड छुड़ा लिया था। निर्माण-स्थली से उसके भाग खड़े होने के बावजूद मां की नाराज़गी थोड़े समय बाद ही बड़ी तेज़ी से ख़त्म हो गयी थी; वह कभी-कभी दिन ख़त्म होने के समय पांच मिनट के लिए वहां चला आता था और बेकार की छोटी-मोटी चीज़ें उपहार में देकर, मां की चुम्मी लेकर अपनी बेहिसाब व्यस्तता का रोना रो देता था, फिर शहर चला आता था। बेशक, उसे अपना पल्ला झाड़ लेना बड़ी अच्छी तरह आता था!

मंसूर ने मश्तागी की यात्रा बस से तय की। उसे मज़दूर ढूंढ़ने में कोई दिक़्क़त नहीं हुई।

धूप उसे एक ओर से जलाये डाल रही थी, सीधे कान में घुसी जा रही थी। मज़दूर उसकी बग़ल में लम्बे-लम्बे डग भरता, अनोखे ढंग से ऊपर-नीचे उछलता और रुक-रुककर जूते से बालू निकालता चल रहा था। धूल के कारण उसके जूते का रंग सफ़ेद हो गया था। रुककर मंसूर उसके साथ आने की प्रतीक्षा करने लगता। मज़दूर के छोटे-छोटे चौड़े पैरों की अंगुलियों के बड़े-बड़े नाख़ून मोटे व एकदम चौकोर-से थे और उनका रंग मंसूर के चश्मे के काले सींग के फ़्रेम से मिलता-जुलता था।

मंसूर को अपने काम-काज की चिन्ता थी। उसे हर हालत में दो बजे तक शहर लौट जाना था। उसका भाई कुछ दोस्तों के साथ सत्तार-ज़ादे के घर जानेवाला था। सत्तारज़ादे काफ़ी समय से उसे अपनी नवीनतम कृति देने का वायदा करता आ रहा था। उसके भाई की पेंटिंग में कोई दिलचस्पी न थी और मंसूर उसके साथ पहुंचकर वहीं

पर सत्तारज़ादे को उसके वायदे के बारे में याद दिलाना चाहता था। नहीं तो वह ख़ुद अपना वायदा कभी याद नहीं करेगा और फिर इस कलाकार से एक कृति पाने का अवसर भी दुबारा हाथ आनेवाला न था...

जब वे दोनों पहुंचे, मां अंगूर की बग़िया की चारों ओर से खुदाई कर रही थी।

"अच्छा, तो आ गये," पारखी नज़रों से मज़दूर का जायज़ा लेते हुए वह कुछ रुखे स्वर में बोली; ज़ाहिरी तौर पर वह फिर मूड में नहीं थी।

लकड़ी के बनाये सायबान में लेटे-लेटे पिताजी कोई किताब पढ़ रहे थे। अगर दूसरी किताब पास में न हो तो पिताजी में एक ही किताब को कई बार पढ़ने की क्षमता थी। छोटे कद-काठी के दुबले-पतले आदमी ने अपनी बीवी के सामने पूर्ण आत्मसमर्पण करके भुला दिया था कि उसका कभी कोई स्वतन्त्र अस्तित्व भी था लेकिन एक मामले में वह भी अनम्य रहे थे – उन्हें यहां काम करने के लिए मजबूर नहीं किया जा सकता था। उन्होंने अपने ज़िम्मे एकमात्र काम खाना बनाने व बर्तन धोने का लिया था।

सायबान के दो लोहे के पलंगों में से एक पर थका मंसूर गिरकर कराह उठा। यहां छाया में पहुंचकर ही उसे महसूस हुआ था कि धूप में मश्तागी से बिलगया तक की यात्रा ने उसे कितना थका दिया था।

मां मज़दूर के साथ छत पर चढ़ चुकी थी।

"पहले तुम इन्हें छाजो," मां ने अड़ियल ढंग से मजदूर को समझाया, मज़दूरों के साथ वह इसी तरह पेश आती थी। "फिर इसके ऊपर कोलतार लगा नमदा डालो। कील से इन्हें अच्छी तरह ठोक दो। ऊपर से सीमेण्ट लगा दो। समझ गये?"

"क्यों नहीं समझा? इस में समझने में क्या दिक़्क़त है? कोई मैं पहली बार थोड़े ही ऐसी छत डाल रहा हूं।"

"मुझे नहीं मालूम पहले तुमने किस तरह की छतें डाली हैं लेकिन यह छत अच्छी तरह डालनी है। बजरी की जगह बालू इस्तेमाल में लाने की कोशिश न करना। मैं ख़ुद हर चीज़ पर ध्यान रखूंगी।"

"बालू से आपका क्या मतलब है?" मज़दूर ने हैरानी से पूछा।

"मैं तुम लोगों को अच्छी तरह जानती हूँ," मां बोली और छत से नीचे उतरने लगी।

कोई भी मज़दूर उनके साथ एक दिन से ज़्यादा नहीं टिक पाता था। तीन हफ़्ते पहले जब मंसूर निर्माण-स्थली पर पहुंचा था तो शाम के समय उसने मोटे-ताज़े मज़दूर को जिसे वह मश्तागी से बुलाकर लाया था, हाथ आसमान की ओर उठाकर दुआ करते देखा था: "हे अल्लाह, मुझे इस औरत से बचाओ!"

"तो मैं अब चलता हूं," मंसूर बोला।

"कहां?" पिता ने हैरानी से पूछा।

सायबान की छत की छोटी-सी एक दरार से सूर्य की किरण उनकी गंजी खोपड़ी पर पड़ रही थी और इसके कारण उनकी खोपड़ी पालिशदार लग रही थी। दोनों ने घर की ओर देखा। मां कुछ तख़्तियां मज़दूर को पकड़ा रही थी और मज़दूर झुककर उन्हें ऊपर खींचकर अपनी बग़ल में रखता जा रहा था।

"बस इसी समय यहां से खिसक लेना चाहिए," मंसूर ने सोचा।

"वह उसेयन-बाला चला आ रहा है," पिता ने उससे कहा। दृष्टि कमज़ोर होने के बावजूद वह अच्छी तरह देख लेते थे। "अब फिर बकझक शुरू हो जायेगी।"

"क्यों?"

"हथौड़ा कहीं गुम हो गया है।"

आस-पास बन रहे बंगलों की पहरेदारी का काम उसेयन-बाला करता था।

"नमस्ते!" तार के बाड़े के पास पहुंचते हुए उसने ज़ोरों से कहा।

मां ने कोई जवाब नहीं दिया। पिताजी ने कुछ न सुनने का बहाना बनाये किताब में सिर झुकाये रखा।

"नमस्ते" मंसूर ने ज़ोरों से जवाब दिया।

कुछ देर तक बाड़े के पास खड़ा रहने के बाद उसेयन-बाला अन्दर आने के लिए निमन्त्रण की प्रतीक्षा किये बिना तारों के नीचे से रेंगकर अन्दर आ पहुंचा। घर के पास पहुंचकर उसने दुबारा नमस्ते कहा। इस बार पिता नमस्कार कहने को मजबूर हुए। माँ उसकी ओर देखने

की भी ज़हमत उठाये बिना चुपचाप तख्तियां ढो-ढोकर ऊपर पहुंचाने में लगी रही।

"आओ बैठो," मंसूर ने अपने पैर हटा लिए जिससे कि वह पलंग के किनारे बैठ सके।

किसी भी समय बकझक शुरू होने का अन्दाज़ा लगाते पिताजी किताब पर नज़रें टिकाये थे।

"कल रात मुझे एक बड़ा ही दिलचस्प सपना दिखाई दिया था," किसी भी क़िस्म के अन्देशा के बिना उसेयन-बाला ने कहा। "मैंने सपने में देखा कि मैं अकेला घर पर सोया हूं और कोई अचानक ही मुझे जगाने लगता है। जागने पर मैंने देखा, यह यमदूत था। वह मुझे कन्धा पकड़कर जगा रहा था। 'उठो' वह मुझसे बोला। 'काफ़ी सो चुके, उसेयन-बाला। अब तुम्हें मेरे साथ चलना है। दुनिया में तुम ज़रूरत से ज़्यादा रह चुके हो।' मेरा दिल तो डूब ही गया। मैंने सोचा, काम तमाम हो गया, अन्त आ चुका है, उसेयन-बाला। मेरी बांहों व टांगों को फालिज मार गया था। मैं मुर्दे की तरह पड़ा रहा। और तब एकाएक पता नहीं कहां से मुझ में ताक़त आ गयी और मैं ठीक उसके सामने ज़ोर-ज़ोर से चिल्लाने लगा। वह उछलकर सीधे दरवाज़े की ओर लपका और तीर की तरह सन्न से चला गया। वह इतना हड़बड़ा गया था कि उसका सिर चौखट से टकरा गया। ज़ोरों से धप की आवाज़ हुई थी!... और तब मेरी नीन्द खुल गयी..."

"और वह चुपचाप यहां आकर बैठ जाता है, फिर बेकार की बकवास शुरू कर देता है जैसे कोई बात ही न हुई हो," मां पिता से मुख़ातिब होकर बोल उठी।

"मां!" मंसूर मलामत से बोल उठा। "बहुत हुआ!"

लेकिन मां दो टूक हमला शुरू कर चुकी थी। रूसी बोलते-बोलते वह अज़रबैजानी बोलने लगी थी और उसेयन-बाला पर हथौड़ा व तख्तियां चुराने का आरोप लगा रही थी।

"अब सीधे खड़े होकर यहां से चलते बनो!" मां ने उससे चीख़कर कहा। "और हथौड़ा व तख्तियों को वापस करने से पहले मेरी नज़रों के सामने न आना।"

"आप मेरा अपमान कर रही हैं, दिल्यारा-ख़ानुम," उसेयन-

बाला ने विरोध प्रकट किया। "मैंने आपका हथौड़ा नहीं लिया है। मेरे बच्चे भूखों मरें अगर मुझे मालूम भी हो कि किसने लिया है।"

वह सच बोलता प्रतीत होता था। यहां तक कि मां को भी अपने आरोप की न्यायसंगतता पर सन्देह होने लगा था लेकिन वह बात वापस लेने को तैयार न थी और उठकर जाते दुखी उसेयन-बाला के पीछे-पीछे वह बोलती चली गयी मानो पहरेदार के बेईमानी को साबित करने के लिए तर्क पेश कर रही हो।

उसेयन-बाला के साथ हुई घटना के बाद वहां से चले जाने का मंसूर का इरादा और मज़बूत हो गया। मां अब एकदम असह्य प्रतीत होने लगी थी। लगभग साल भर से वह इस आदमी से दोस्ताना व्यवहार करती रही थी, उसके साथ बैठकर उसने चाय पी थी, अपने दुख बांटे थे, उसके बच्चों के लिए काम का इन्तज़ाम किया था और अब एक क्षुद्र हथौड़े के लिए इस सारे पर पानी फेरकर रख दिया था।

"मां, अपनी तबीयत ख़राब कर लोगी!" मां के पास दौड़कर आते हुए मंसूर चिल्ला पड़ा। उसने एक झटके के साथ उसे लगभग धकिया-सा दिया और एक बड़ी-सी तख्ती उठाकर मज़दूर को पकड़ा दी।

"मैं यह काम ख़ुद बख़ूबी कर लूंगी," मां हठ के साथ बोली और दूसरी तख्ती हाथों में उठाने लगी।

"तुम सोचती हो क्या कर रही हो? तुम जानबूझकर मेरा मूड बिगाड़ने की कोशिश कर रही हो," मंसूर बोला।

"क्या?" मां ने जवाब दिया। "मैं तुम्हें क्या कह रही हूं?"

ऊलजलूल की बातें सुनने के बाद स्वभाव से ही मन्द उसेयन-बाला एकदम ही जड़-सा हो गया था और ज़्यादा दूर नहीं जा पाया था। मंसूर को दौड़कर अपनी ओर आते देखकर वह सड़क से एक ओर हटने के लिए लगभग कई क़दम दौड़ पड़ा।

"मैं अपनी क़सम खाकर कहता हूं कि हथौड़ा मैं ने नहीं लिया है," उसके सामने निराशा से बांहें फैलाकर वह बोला।

मंसूर ने उसे यथासम्भव एक बार फिर से आश्वस्त कराया और मां के व्यवहार के लिए उससे क्षमा मांगी। उसने उसी पल शहर लौट जाने और फिर कभी इधर का मुंह न करने का फ़ैसला कर लिया।

एक बार फिर उसने दिमाग़ में उठते विचारों का जायज़ा लिया: बंगले के निर्माण के कारण मां निश्चय ही आपे से बाहर हो गयी थी; जिस दुराग्रह से वह इस काम में लगी थी, उसे देखकर और कुछ सोचा भी नहीं जा सकता था। और फिर मां को भली-भांति मालूम था कि न तो पिता जी, न बेटे – यानी एक भी आदमी उसके साथ यहां नहीं रह पायेगा और मां के लिए यहां अकेली रहना उनके स्वास्थ्य की दृष्टि से ख़तरनाक था। यह बात डॉक्टरों ने और उसके सारे परिचितों व परिवारवालों ने बार-बार कही थी। लेकिन इसके बावजूद वह निर्माण के काम में लगी थी। इस काम में वह अपनी क्षमता से अधिक उत्साह दिखा रही थी, कर्ज़ में डूब गयी थी फिर भी इस परेशान करनेवाले मकान को बनवाने में लगी थी। एक दिन यह मकान उन्हें ज़रूर ले डूबेगा। उसे भी अपना दिल कड़ा करके बड़े भाई की तरह रुख अख्तियार करना पड़ेगा – उस काम से अपना हाथ खींच लेना होगा जो उसकी मां को बर्बाद करके छोड़ेगा। लेकिन काश, वह अपने हाथ इस काम से खींच पाता!

पिता जी पढ़ने में लगे थे। मां बालू पर बैठकर हथौड़े से एक बड़े पत्थर को टुकड़े-टुकड़े करने की कोशिश कर रही थी। वह धूल से सनी थी। उनके चेहरे पर पसीने से भीगी धूल की तह गहरे मटमैले गोंद की तरह दिखाई देती अनेक रूप धारण कर रही थी।

मंसूर घर के अन्दर जा पहुंचा। मज़दूर तख्तियों से छत छा चुका था। दरारों को बन्द करते हुए उसने कहीं-कहीं पर कोलतार लिपटा नमदा भी लगा दिया था। मंसूर को अपनी पुरानी पतलूनें गैस स्टोव के पास कुछ चीज़ों के ढेर में पड़ी मिलीं। उसने उन्हें अख़बारों में लपेट लिया। पिता जी ने कमरे में झांककर देखा।

"क्या बात है?"

"मैं जा रहा हूं।"

"क्या तुम मां की मदद नहीं करोगे?"

"नहीं।"

पिताजी उदासीनता से मुस्कराये। मंसूर ने पतलूनोंवाले बण्डल को धागे से बांध दिया।

"क्या तुम्हें भूख नहीं लगी है?" पिता जी ने पूछा।

"नहीं। आपको मालूम है, मेरे स्लिपर कहां हैं?"

"बरामदे में।"

पिता जी स्लिपर ले आने चले गये। मंसूर खिड़की के पास आया। मां अभी तक पत्थर पर ज़ोर-ज़ोर से हथौड़ा पटक रही थी।

"क्या वह जा रहा है?" उसने पिताजी से पूछा।

"शहर में उसे ज़रूरी काम है," पिता जी ने समझाया।

वह कुछ भी नहीं बोली, सिर्फ़ पत्थर पर पहले से भी ज़्यादा ताक़त से हथौड़ा मारने लगी। पत्थर बालू में आधा गड़ा था। पत्थर के नीचे दूसरा पत्थर रख देने का उसे ख्याल ही नहीं आया था। या शायद उसकी दिलचस्पी पत्थर के टूटने, न टूटने में न थी। शायद उसे पत्थर पर प्रहार करने में ही आनन्दानुभूति हो रही थी। या शायद आनन्दानुभूति नहीं बल्कि ज़रूरत महसूस करती हो। वह ज़ोर-ज़ोर से सांस ले रही थी और कई बार प्रहार करने के बाद वह पीछे को झुक पड़ती थी ताकि सीने में ज़्यादा हवा पहुंचे। उसका थुलथुला शरीर लिबास के बाहर झूल रहा था। वह बार-बार मुंह बा रही थी। तीन साल पहले मंसूर ने पहली बार मां को लेटकर एक भारी पत्थर रेंगते हुए ले जाते देखा था। तब वह बहुत भयभीत हो उठा था: "क्या बात है, मां? तुम ज़मीन पर क्यों लेटी हो?" "इस तरह पत्थर घसीटकर ले जाना ज़्यादा आसान है," मां ने समझाया था। "इस तरह मेरे पैर नहीं दुखते हैं।" जीवन में पहली बार उसने अपनी दुर्बलता स्वीकार की थी। उस समय मंसूर लगभग रो उठा था। इस समय मां के प्रति उसकी सहानुभूति अधिक बलवती न थी। लेकिन इसके बावजूद अपनी दुर्बलता व बच्चों के प्रति नाराज़गी छुपाने की कोशिश में पत्थर पर हथौड़े से प्रहार करते देखना भी कम पीड़ादायक न था।

"मां," खिड़की के पास से मंसूर ने मां को आवाज़ दी। "तुम ग़लत ढंग से पत्थर तोड़ रही हो। तुम्हें उसके नीचे कोई दूसरा पत्थर रखना चाहिए।"

और इसके साथ ही उसने महसूस कर लिया कि अगर सत्तारज़ादे से तस्वीर हासिल करनी थी तो मां से यह बात नहीं बोलनी चाहिए थी।

"मैं उस तरह भी आज़मा चुकी हूं," वह थोड़ी देर तक चुप

रहने के बाद बोली मानो सोच रही थी कि जवाब दे या नहीं। "पत्थर नीचे से फिसल जाता है।"

घर से बाहर निकलकर मंसूर उसके पास चला आया। पत्थर पर हथौड़े से प्रहार तो वह बन्द कर चुकी थी लेकिन जानबूझकर ख़ामोश रहते हुए हथौड़े को हाथ में ही कसकर पकड़े थी। वह रुककर इन्तज़ार कर रही थी कि मंसूर क्या कहना चाहता है। "जो जी में आये तुम करो," उसकी समस्त भावमुद्रा यही कहती प्रतीत होती थी, "मैं बच्चों से हर तरह की उपेक्षा झेलने को तैयार हूं..." मंसूर भी ख़ामोश ही रहा। उसके दिमाग़ में फिर यह ख़्याल उठा कि अगर सचमुच यहां से चल देना है तो अभी, इसी पल मां को बता देना पड़ेगा, नहीं तो देर हो जायेगी।

"वहां ऊपर मज़दूर क्या कर रहा है?" उसने मां की ओर देखे बिना पूछा।

"मुझे भी नहीं मालूम," मां ने थके स्वर में थोड़े देर के बाद जवाब दिया, "अभी ऊपर जाकर देखूंगी..."

"मैंने नीचे से ही देख लिया। तख़्तियां तो उसने बड़े अच्छे ढंग से लगायी हैं।"

"मुख्य बात यह है कि वह बजरियों की जगह बालू काम में न लाये।"

"आह, तुम क्या कह रही है! वह वैसा आदमी नहीं लगता..."

मंसूर पत्थर के टुकड़े करने लगा और तब उसे पता चला कि कम से कम ५० टोकरियां ऐसी बजरी चाहिए थी। फिर सीमेण्ट में मिलाने के लिए उठा-उठाकर बालू ले गया और तब तक शाम हो चुकी थी और उसने सीमेण्ट-बालू के मिश्रण को छत पर पहुंचाना शुरू किया। बाल्टी में बेलचे से मिश्रण डाल-डालकर वह दीवार में लगी लकड़ी की सीढ़ी पर चढ़कर बाल्टी मज़दूर को थमाता जाता। मज़दूर छत पर बिछी बजरी के ऊपर मिश्रण से भरी बाल्टी उलटकर समतल बनाता जाता। मंसूर पल भर के लिए रुकता तो मां बाल्टी या बेलचा उठा लेती जिससे कि काम बिना रुके चलता रहे।

सूरज अभी भी काफ़ी ऊंचे था और उसकी जलती किरणें जान काढ़े ले रही थीं। किरणों से बचने के लिए मज़दूर ने अपनी कमीज़ सिर पर लपेट ली थी।

"यहां अप्शेरोन में धूप बड़ी ख़तरनाक साबित हो सकती है," बेलचा थामते हुए मज़दूर ने मंसूर को बताया। "इसमें आदमी पागल भी हो सकता है। गेरादिल के रहनेवाले एक आदमी ने जो घटना मुझे बतायी थी, मुझे याद आ रही है। उसके साथ यह घटना तब हुई थी जब वह एक खदान से ट्रक पर लाद-लादकर बालू ढो रहा था। झुलसाती धूप में वह ट्रक पर बालू लादकर एक दिन में २० या ३० खेप ले जाया करता था। इधर-उधर जाते समय वह कभी-कभी अपने घर भी हो आता था। तब वह अविवाहित था अपनी मां के साथ रहता था। एक दिन जब वह घर लौटा तो मां नहीं थी। दरवाज़े में ताला लगा था। सड़क पर एक किनारे ट्रक खड़ी करके वह बाड़े की छाया में बैठ गया। धूप सचमुच अचेतकारी थी। सब कहीं ख़ामोशी छायी थी... आस-पास में कोई भी न था — सड़क के पार सिर्फ़ पड़ोसी का टट्टू रस्सी से बंधा उसकी ओर देख रहा था। वह काफ़ी देर तक यूं ही बैठा रहा। फिर वह एकाएक उठ खड़ा हुआ और टट्टू को ट्रक के पीछे डालकर चल पड़ा। वह बिलकुल अपने होश में न था और अपनी इस हरक़त की उसे कोई ख़बर न थी। टट्टू का मालिक उसके पीछे-पीछे भागा लेकिन वह उड़नछू हो चुका था... वह टट्टू को लेकर सीधे मश्तागी के बाज़ार में जा पहुंचा। अच्छी-खासी रक़म लेकर उसने टट्टू को बेच दिया। आज तक वह अपनी इस हरक़त का कारण नहीं जान पाया... धूप उसके सिर में घुस गयी थी।"

शाम के समय जब सूरज समुद्र की ओर आधा से ज़्यादा उतर चुका था, एक बाल्टी का हैण्डल टूट गया। उस समय मंसूर छत पर काम कर रहा था और मज़दूर बाल्टी में हैण्डल लगा रहा था। तभी उसे थोड़ी देर के लिए आराम करने का मौक़ा मिला। छत के एकदम किनारे पर जहां नमदे के बेडौल कटे टुकड़े बाहर को निकले थे, अपना मुंह नीचे रखकर वह पेट के बल वहीं पर लेट गया। थकान के मारे उसका चेहरा जल रहा था और उसने चेहरे को पत्थर से लगा लिया था जो ठण्डा हो चुका था। दरअसल, यह कहना ज़्यादा सही होगा कि उसकी दुर्बल गर्दन सिर को अब और देर तक अपने ऊपर टिकाये रहने में असमर्थ हो गयी थी और उसका चेहरा पूरे बोझ से पत्थर से टिका हुआ था।

नीचे मज़दूर अभी तक बाल्टी का हैण्डल ठीक करने में लगा था। काम पर नज़र रखे मां उसकी बग़ल में ही बालू पर बैठी थी। छत के ऊपर से मंसूर को वह बहुत हद तक मृत दादी की तरह प्रतीत हो रही थी। मज़दूर को हैण्डल ठीक करने में दिक़्क़त हो रही थी और उसे ठीक करने में उसने काफ़ी समय लगाया। धीरे-धीरे थकान से उत्पन्न मंसूर की निश्चेष्टता जाती रही। मां की ओर देखते हुए उसे बहुत साल पहले का वह समय याद हो आया जब वे बिना छतवाले ठीक ऐसे ही मकान में दादी के साथ पिर्शागी में रहते थे। तब लड़ाई चल रही थी। मां हर दिन शहर से रात को आती थी और साथ में उन लोगों के लिए खाना भी लाती थी। जिस दिन वह किसी कारण-वश नहीं आ पाती थी, दादी डबल रोटी काटनेवाले चाकू में लगे रोटी के भुरकों को दोनों भाइयों में बांट देती थी...

दादी का देहान्त अभी हाल में हुआ था लेकिन स्मृति में वह उसी तरह आज भी बनी थी जैसी पिर्शागी के ग्रीष्म में वह लड़ाई के समय थी। मां अब बहुत हद तक उसी जैसी दिखने लगी थी। उस ज़माने में मां देखने में अच्छी थी। या शायद यह उसके मन की भावना रही हो जो मां के प्रति तब उसमें थी।

वह उन्हें किताबें पढ़-पढ़कर सुनाना पसन्द करती थी। अब मंसूर को महसूस होता था कि वह वास्तव में ज़्यादा पढ़ी-लिखी न थी। लेकिन उन्हें उस समय इसकी कोई जानकारी न थी। उसके पास कई मनपसन्द पुस्तकें थीं: "रॉब रॉय", "नन्हा यायावर", "ओलिवर ट्विस्ट" और "बड़े घर की छोटी मालकिन"।

...वे दूसरी मंज़िल पर अपने फ़्लैट की लम्बी बॉलकनी पर बैठ जाते थे। वहां से एक सीढ़ी नीचे की ओर जाती थी। चूंकि मां पथरीली सीढ़ी पर बैठना मना करती थी इस लिए बॉलकनी में रखे छोटे-से लकड़ी के बैठका पर वह अपने लिए बड़ी मुश्किल से जगह निकाल पाता था। ज़ीने से जुड़े लकड़ी के उस बैठका पर बैठकर वे लगातार घण्टों तक ग़रीब "ओलिवर ट्विस्ट" की कहानी सुनते रहते थे...

ज़रूर उसकी आंख लग गयी होगी क्योंकि जब उसने आंखें खोलीं, मां बग़ल में बैठी दिखाई दी। वह भी छत के किनारे बैठी थी।

"क्या बात है?" मां ने पूछा। "कहीं कुछ दुख रहा है?"

"नहीं," वह बोला, "बस आंख लग गयी थी।"

वह कुछ देर तक चुप रही और फिर उसकी ओर देखे बिना कुछ-कुछ अनतिदृढ़ स्वर में पूछा:

"सिर दुख रहा है?"

"थोड़ा-थोड़ा।"

वह परेशान हो उठी थी, "मैं तुम्हारे सिर में मालिश कर दूं?"

"कर दो," मंसूर बोला।

बड़ी चौकसी से उसने उसकी कनपटियों व ललाट पर थपथपाना शुरू कर दिया। उसकी अंगुलियों के सिरे का चमड़ा रूखा था। मंसूर आंखें बन्द किये लेटा रहा।

"मां, तुम्हें याद है, तुम किस तरह 'ओलिवर ट्विस्ट' पढ़कर मुझे सुनाया करती थी?" आंखें खोले बिना मंसूर ने पूछा।

"याद है।"

मंसूर सोचता लेटा रहा। निस्सन्देह, कुछ लोगों की तरह दृढ़ चरित्र का होना अच्छी बात है, वह सोच रहा था, लेकिन इसके साथ ही दयालु होना भी बुरी बात नहीं। कहावत भी है, जाकी रही भावना जैसी। और फिर यह अनिवार्य रूप से आवश्यक भी नहीं कि आदमी जो भी करे वह तर्कसम्मत या बुद्धिसम्मत ही हो और वह किसी ऐसे लक्ष्य की ओर ही सदैव निदेशित हो जिसे वह उचित मानता हो। ऐसी भी परिस्थितियां होती हैं जब आदमी को कोई ऐसा काम भी करना पड़ता है जो उसके लिए बहुत पहले ही बेमानी हो चुका होता है लेकिन इसके बावजूद इसलिए करना पड़ता है क्योंकि वह काम उन लोगों को पसन्द है जिनसे आप प्यार करते हैं और उस काम की निरर्थकता अभी तक उनके मन में घर नहीं बना पायी है। आपके दृष्टिकोण से वे ग़लतफ़हमी का शिकार हैं और उनकी पीड़ाएं बेतुकी हैं लेकिन अगर आप उनसे प्यार करते हैं तो उन्हें परित्यक्त करना असम्भव है और कोई उनसे प्यार किये बिना कैसे रह सकता है...

जब आदमी अपने घर की छत पर मां की गोद में सिर रखकर लेटा हो और अप्शेरोन का पीड़ादायी सूरज सागर में डूब चुका हो तो बड़े ही अद्भुत विचार मस्तिष्क में आते हैं।

सुलैमान रगीमोव

(जन्म १९००)

निपुण काव्य गद्यकार, विशिष्ट उपन्यासकार तथा सामाजिक कार्यकर्त्ता। अज़रबैजान के जन लेखक की संज्ञा से अभिहित।

इनका बचपन अभाव तथा अकिंचनता में बीता। सोवियत सत्ता के उदय के साथ ही रगीमोव ने नागरिक कार्यकलाप में अपनी सक्रिय भूमिका आरम्भ कर दी। अज़रबैजानी विश्वविद्यालय से स्नातक की परीक्षा में उत्तीर्ण हुए। रगीमोव ने १९३० में लिखना शुरू किया। इनके उपन्यासों 'शामो' तथा 'साचली' में, लघुउपन्यासों 'ऐनाली' तथा 'मेहमान' में और अनेकानेक कहानियों में स्वतन्त्रता एवं सुख के लिए अज़रबैजानी जनगण का संघर्ष, उनकी अतीतकालीन एवं वर्तमान जीवन-पद्धति और समाजवाद के निमार्ण की प्रक्रिया में उनकी ऐतिहासिक उपलब्धियां प्रतिबिम्बित हैं।

रगीमोव की अनेक कहानियों, लघुउपन्यासों तथा उपन्यासों में नैतिक प्रश्नों का समावेश किया गया है। "जीवन की कुंजी" शीर्षक कहानी में हमें एक ऐसे गांव के आधुनिक लड़के से परिचित कराया गया है जो शहर पहुंचकर बहुत-सी दिलचस्प, शिक्षाप्रद कारगुज़ारियों से दो-चार होता है।

सुलैमान रगीमोव

जीवन की कुंजी

यह ग्रीष्म का तपता एक और दिन था। आसमान से मानो लपटें उठ रही थीं। हर मकान में दरवाज़े-खिड़कियां खोल दी गयी थीं। और मैंने भी नाबेरेझनाया मार्ग पर स्थित विशालकाय बहुमंज़िली इमारत में अपने काम करने के कमरे की खिड़कियां व दरवाज़ा खोल रखा था। मैंने खिड़की से समुद्र की ओर देखा – वह इतना क़रीब लग रहा था कि हाथों से छू लें। उसकी पथरायी निश्चलता भयभीतकारी थी।

रेशम की हल्की कमीज़ बदन से अरुचिकर ढंग से चिपक गयी थी।

हालांकि सांस लेना अधिक से अधिक दूभर होता जा रहा था फिर भी मैं अपने काम में लगा था, अपने सामने पड़े काग़ज़ातों की जांच कर रहा था, पढ़ी बातों पर सोचने की कोशिश करते हुए हाशिये पर नोट लिखता जा रहा था और इसके साथ-साथ कुर्सी के पीछे टंगे तौलिये से बिना रुके चेहरे व गर्दन और सीने पर बह आती पसीने की धार को भी पोंछता जा रहा था।

एकाएक मुझे अस्पष्ट-सी सरसराहट सुनाई दी। "यह बयार तो नहीं?" मैं खिल उठा। लेकिन यह सिर्फ़ ख़्याल ही था। मैं दुबारा काग़ज़ातों पर

झुक गया कि तभी दूर आती वही अस्पष्ट आवाज़ फिर सुनाई दी। इस बार गर्दन उठाकर मैंने इर्दगिर्द नज़रें दौड़ायीं। लेकिन यह क्या था? कोई आदमी अपने छोटे से मुक्के से खुले दरवाज़े के मुलायम चमड़े पर दस्तक देने की कोशिश कर रहा था।

खुले दरवाज़े पर दस्तक देनेवाला कौन हो सकता है? "आ जा-ओ!" अपनी हंसी पर मुश्किल से क़ाबू पाते हुए मैंने जानबूझकर ज़ोरदार आवाज़ में कहा।

दहलीज़ पर एक पैर का भार दूसरे पर डालता एक छोटे क़द का युवक खड़ा था। उसके नीले रंग के घिसे सूटकोट के नीचे साटन की कमीज़ दिखाई दे रही थी। कमीज़ पैण्ट के अन्दर नहीं खोंसी गयी थी। उसके घने, गहरे काले बाल बेतरतीब लटों में गुंथे थे। उसे ध्यान से देखने के बाद मैं फ़ौरन जान गया कि लड़का शहरी जीवन से शायद ही परिचित था। मैंने कोमल स्वर में उससे पूछा कि वह कहां का रहनेवाला है। ज़ाहिरी तौर पर यह सोचकर कि मैं गांव का नाम नहीं पहचान पाऊंगा, उसने प्रादेशिक केन्द्र का नाम बताया।

"किस परिवार से?"

"मैं गरानफ़िल का बेटा हूं।"

"कौन-सी गरानफ़िल?" प्रादेशिक केन्द्र के निवासियों से मैं भली-भांति परिचित था, और तो और, मेरा बचपन भी वहीं बीता था, मैंने स्कूल की पढ़ाई वहीं की थी और फिर स्कूल में पढ़ाया भी था और अगर संयोगवश मैं गरानफ़िल को पहचानने में असफल भी रहा तो लड़के से दूसरे रिश्तेदारों, मित्रों और परिचितों के बारे में पूछूंगा। आख़िर ज़रूर ही पता चल जायेगा कि लड़का किस परिवार से सम्बन्धित है।

जिस गरानफ़िल का नाम लड़के ने लिया था, मैंने उसे ज़ेहन में लाने की कोशिश की। "तुम कह रहे हो गरानफ़िल," मैं उसकी ओर मुड़ा। "कौन है यह गरानफ़िल?"

छोटे क़द का युवक गुस्से से बोल उठा:

"आप की बहन गरानफ़िल।" फिर तत्क्षण ही वह अपने ही तेज़ स्वर के कारण सकपका उठा।

झोंक से उठकर मैंने उसे अपनी बांहों में भर लिया। बांहों में

बांधकर मैंने उसे चूम लिया, उसकी गहरी काली लटों को सहला दिया, पीठ व कन्धों को प्रसन्नता में भरकर थपथपा दिया।

फिर हम कुर्सियों पर बैठ गये और अचानक ही ख़ामोश हो गये। हे भगवान, दुनिया में सबसे ज़्यादा मैं अपनी बहन गरानफ़िल से प्यार करता था। मैं गरा* को भूल कैसे गया – हम उसे गरा कहकर बुलाते थे क्योंकि उसकी लटें गहरी काली थीं। एक बार घर में उसे मेरी लम्बी कमीज़ पहना दी गयी थी क्योंकि वह किसी लड़के की तरह दिखाई देती थी और ठीक तभी लाल दाढ़ियोंवाले दरवेश हमारे यहां आ पहुंचे और बारी-बारी से भावशून्य ढंग से दुआएं करने के बाद मेरे पिता जी से मुख़ातिब हुए (उस समय भी वे गरानफ़िल की ओर स्नेहपूर्वक देख रहे थे): "तेरे घुंघराले बालोंवाले बेटे पर अल्लाह की फ़ज़ल हो!"

और गरा के बालों को स्नेहपूर्वक सहलाते हुए दरवेश चले गये। गरा के लिए की गयी उनकी दुआ के शब्दों की नक़ल करते हुए हम जा रहे दरवेशों की पीठ पीछे ठहाका लगाकर हंस पड़े। दरवेशों के प्रति अति सम्मान भाव रखनेवाले पिताजी भी अपनी हंसी नहीं रोक पाये थे।

पिताजी सभी बच्चों में सबसे ज़्यादा गरानफ़िल को प्यार करते थे। जब तक वह बड़ी न हो गयी और उसकी शादी न हो गयी, पिता जी उसे गरा ही कहकर बुलाते थे।

मैं उसके बेटे को जिसकी सूरत गरानफ़िल से इतनी मिलती-जुलती हैं, कैसे नहीं पहचान सका?

मैं मन ही मन में ख़ुद को क़सूरवार महसूस करते हुए अपनी तीव्र भर्त्सना करने लगा। मैंने मन ही मन में दृढ़ निश्चय कर लिया कि पहला मौक़ा हाथ लगते ही अपने गांव जाऊंगा, सारे रिश्तेदारों से मिलूंगा और मेरे प्रति किसी समय मां से भी ज़्यादा रहम रखनेवाली अपनी बहन – अपनी चहेती बहन गरा के यहां जाऊंगा। मैंने बड़ी मुश्किल से ख़ुद पर क़ाबू पाया और मैं यह स्वीकार किये बिना नहीं रहूंगा कि मुझे इस बात से ख़ुशी भी थी कि हम दोनों यानी मामा

---

* गरा – काला। – सं०

14–362

व भांजा आंसुओं को रोकने में सफल रहे थे। और फिर इतने बड़े प्रतिष्ठान में बैठकर आंसू बहाना बुरा भी प्रतीत होता।

"हां, तो क्या ख़बरें हैं, जीवन किस तरह कट रहा है?" मैंने यथासम्भव सहज भाव में पूछा और सबसे पहले गरानफ़िल के बारे में, फिर बाक़ी रिश्तेदारों, गांव के लोगों, मित्रों तथा परायों के बारे में सवाल शुरू किये। इस तरह हमने अपने गांव के सभी निवासियों की बारी-बारी से चर्चा कर ली।

"तुम्हारे कितने भाई हैं?"

"हम छह हैं," मेरी ओर देखते हुए भांजा बोला।

"और मैं सिर्फ़ एक को जान पाया हूं," एक बार फिर ख़ुद पर नाराज़ होते हुए मैंने सोचा। लेकिन तभी यह याद करके मैं मुस्करा उठा कि किस तरह सावधानी से मेरे भांजे ने मुलायम चमड़ा लगे खुले दरवाज़े पर दस्तक दी थी और यह सोचते ही अचानक मुझे बड़ा अच्छा महसूस हुआ मानो मेरे दिल पर से कोई बोझ हट गया हो।

"अब मुझे यह बताओ कि तुमने खुले दरवाज़े पर दस्तक क्यों दी थी? तुम सीधे अन्दर चले आ सकते थे।" मैंने हाथ बढ़ाकर तौलिया उठा लिया और चेहरे पर बहती पसीने की धार को पोंछा।

"शुरू-शुरू में इजाज़त मांगना बेहतर होता है," सिर झुकाते हुए वह बोला। "बिना इजाज़त मांगे अन्दर आना ठीक नहीं।"

"और उस समय खुले दरवाज़े के पास बैठी रहनेवाली मेरी सेक्रेटरी कहां थी?"

"वह मुझे अन्दर ही नहीं आने दे रही थी।"

"वह कहां चली गयी थी?"

"वह पानी पीने गयी थी और किसी को भी अन्दर न आने देने का आदेश मुझे देकर गयी थी।"

"तुमने उसके आने तक प्रतीक्षा क्यों नहीं की?"

"मुझे डर था कि कहीं पानी पीकर लौटने के बाद भी वह मुझे अन्दर जाने की इजाज़त न दे तो..."

मेरा भांजा जो बड़े शहर से भयभीत होकर भागा नहीं था, जो इस विशाल इमारत में रास्ता तलाश कर अपने मामा तक पहुंचने में सफल रहा था, मुझे दिलचस्प लगने लगा था और ख़ास तौर

से मुझे उसकी आख़िरी बुद्धिमत्तापूर्ण बात बड़ी प्रभावित कर गया थी।

"तुम बाकू किस लिए आये हो?"

"मैं आगे पढ़ना चाहता हूं, मामा जी।"

"कौन-सी क्लास तक तुमने पढ़ाई कर ली है?"

"मैंने गांव के सात-साला स्कूल की पढ़ाई पूरी की है।"

"तुमने पड़ोस के गांव में जाकर दस-साला स्कूल में दाख़िला क्यों नहीं लिया?"

"सच कहूं तो हमारे परिवार में बच्चे बहुत से हैं और पिताजी बूढ़े हो गये हैं। मैं परिवार पर कोई बोझ बने बिना पढ़ना चाहता हूं।"

"हूं... तुम कहां दाख़िला लेना चाहते हो?"

"तकनीकी स्कूल में।"

"किस तरह के तकनीकी स्कूल में?"

"मैं तेल क्षेत्रों में काम करना चाहता हूं।"

मैं मानता हूं कि मेरी समझ में यह बात नहीं आयी कि गांव का लड़का जिसका पालन-पोषण छोटे-से गांव में हुआ था, कृषि संस्थान में जाने के बजाय तेल उद्योग में काम करनेवालों के स्कूल में क्यों दाखिला लेना चाहता था। मानो निशाना ले रहा होऊं, इस तरह आंखें सिकोड़कर मैं उसकी ओर झुक पड़ा:

"क्या तुम इम्तहान में पास हो सकोगे?"

"अगर मेरे ऐसे मामा हैं जो..."

"मामा। एक और मामा? तुमने अपने मामा को तो ढूंढ़ ही लिया है। तुम कहना क्या चाहते हो?"

"मेरा मतलब है ऐसा मामा जो उपयोगी हो, समझे?" मेरा भांजा शान्तिपूर्वक बोला।

बड़ी आतुरता से आंसू पोंछ लेनेवाले संकोची भांजे के मुंह से इतने अप्रत्याशित ढंग से सूझबूझ भरे वाक्चातुर्य को सुनकर मैं चकित हो उठा।

"ठीक है, मान लो, किसी तकनीकी स्कूल में तुम्हारे दाख़िले के लिए मैं पैरवी कर देता हूं। लेकिन फिर? तुम्हारी जगह पढ़ेगा कौन और इम्तहान पास करेगा कौन?"

"उसके बाद से मेरे मामा जी को कोई चिन्ता नहीं करनी पड़ेगी।"

"हूँ... बहुत खूब। लेकिन क्या तुम तकनीकी स्कूल में पढ़ाई का बोझ सम्भाल पाओगे? क्या तुम सोचते हो, मुश्किल तकनोलॉजी व जटिल मशीनों को काम में लाना सीख सकोगे?"

"यही तो मैं सीखना चाहता हूं," मेरे भांजे ने बड़ी शान से जवाब दिया। "मैंने तेलकर्मियों के तकनीकी स्कूल में और तकनीकी विभाग में दाखिला लेने का फ़ैसला किया है। मैं और कहीं पढ़ने नहीं जाऊंगा। चाहे वे मुझे बिना इम्तहान के ही दाखिला लेने के लिए क्यों न बुलायें। बाकू में रहकर पिछले कुछ दिनों में मैंने पाठ्यक्रम पर नज़र डाल ली है। मैं पढ़ सकूंगा।"

"तुम यहां कब आये?"

"आज ही के दिन एक हफ़्ता पहले।"

"और तुम इतने दिनों तक मेरे यहां आने की प्रतीक्षा करते रहे!.. क्या तुम अपने मामा से मिलने के लिए सीधे स्टेशन से नहीं आ सकते थे?"

"मुझे छात्रों की शयन-शाला में जगह मिल गयी थी।"

"क्या तुम्हें डर था कि मामा घर में रहने नहीं देंगे?"

"नहीं," धूप से संवलायी बांहों से पसीने को एक मुड़े-तुड़े रूमाल से पोंछते हुए मेरे भांजे ने कहा। "नहीं, बात यह नहीं थी। मुझे मालूम था कि आपके बच्चे गांव गये हुए हैं।"

"अच्छा है कि तुम्हें मालूम था।"

"हां, लेकिन मैं जानता हूं, वे हमारी ओर नहीं, दूसरी ओर गये हैं।"

"क्यों? तुम्हें कैसे मालूम? शायद वे तुम्हारे गांव की ओर ही गये हों।"

"नहीं। अगर ऐसा होता तो मेरे मामा जी को अपने बाक़ी पांच भांजों के बारे में मालूम होता।"

"लेकिन भांजे भी तो अपने मामा जी को नहीं जानते हैं।"

"अगर वे मामा जी को नहीं जानते तो इतने बड़े शहर में, ऐसी बड़ी इमारत में कैसे ढूंढ़ निकाल सकते थे?"

"शायद इम्तहानों के कारण..." भांजे की बोलती बन्द करने

की ग़रज़ से मैंने कहा। "शायद इम्तहानों के समय मामा जी काम आयें।"

"बिलकुल नहीं! मुझे इम्तहानों की क़तई चिन्ता नहीं। जहां तक इम्तहानों का सवाल है, मैं सिर्फ़ अपने आप पर भरोसा करता हूं।"

"लेकिन तुमने कहा था न कि अगर तुम्हारे उस तरह के मामा होते..."

"हां अगर उन्हें मालूम हो जाये कि... यानी मेरे... यानी कोई मेरी भी पैरवी कर रहा है तो कोई हर्ज नहीं। तब वह मेरी जगह पर किसी दूसरे को नहीं ला सकेंगे, किसी ऐसे आदमी को जिसके मामा हैं लेकिन यहां पर कुछ भी नहीं है।" और तर्जनी से उसने ललाट की ओर थपथपाकर इशारा किया।

मैं यह स्वीकार किये बिना नहीं रह सकता कि मेरा भांजा मुझे हर मिनट अपनी बातों से खुश किये जा रहा था। वह मुझसे विरोध प्रकट करने और बहस करने में भी भयभीत न था। मैंने मन ही मन में सोचा: "जिस गरा को हम लोग उसकी सूझ-बूझ व बुद्धिमत्ता के कारण इतना प्यार करते थे, उसके बेटे को ज़रूर ही इतना तेज़-तर्रार होना चाहिए।" मुझे अचानक प्रतीत हुआ मानो मैं गरा से बातचीत कर रहा था, लाल दाढ़ीवाले दरवेशों की हंसी उड़ाते साथ-साथ धमाचौकड़ी मचा रहा था।

हमारी बातचीत ज़्यादा से ज़्यादा सजीव होती गयी। मैंने अपने भांजे को एक बार फिर से आश्वस्त किया। उसकी मदद करना वाजिब था... मैं उसकी इतनी मदद ज़रूर करूंगा जिससे कि दूसरे मामा अपने भांजों को उस जगह पर न बैठा सकें जो मेरे भांजे के हक़ में जानी चाहिए थी।

लड़के के सांवले चेहरे पर हल्की-सी लालिमा आ गयी। कुर्सी के कोने पर शिष्टतापूर्वक बैठे अपने भांजे की ओर चुपके-चुपके नज़र डालते हुए मैं कमरे में चहलक़दमी करने लगा। अपने मामा पर उसने क्या उम्मीद बांध रखी थी... मैंने उसके पास जाकर उसके घुँघराले बालों को थपथपाकर धूप से संवलाया उसका ललाट चूम लिया...

कई दिन बीत गये। गर्मी पहले से ज़्यादा बढ़ गयी थी। मुझे सांस लेने में भी दिक़्क़त होने लगी थी। भाग्यवश मुझे काम से सूबों में जाना था। उस दिन शाम को जब झुटपुटा हो आया था, मैं गाड़ी लेकर रवाना हो गया। सुबह होते-होते मैं हिमाच्छादित पर्वतों की ढलान पर जा पहुंचा था। मैं इस इलाक़े में अपने भांजे के बारे में कुछ भी सोचे बिना हफ़्ते भर रहा जब कि मेरा भांजा बाकू की असह्य गर्मी में अपने इम्तहान में लगा था। लेकिन अब लौटने का समय आ गया था। मैं यह सुनकर प्रसन्न हो उठा कि बाकू में उत्तरी हवा बहनी शुरू हो गयी थी और न केवल शहर की गर्मी ख़त्म हो गयी थी बल्कि सूट या हल्के कोट पहनने लायक़ ठण्ड भी थी। लेकिन मेरे बाकू पहुंचते-पहुंचते उत्तरी हवा बहनी बन्द हो चुकी थी।

"अजीब बात है, एकदम अजीब," अत्यावश्यक प्राणदायी शीतलता से वंचित बाकू के नागरिक भुनभुना उठे थे जिन्हें हमेशा की तरह पीड़ादायी धूप की दया पर फिर से निर्भर करना पड़ रहा था। यह सुविदित है कि बाकू का मौसम उत्तरी हवा पर निर्भर करता है; जब यह हवा चलती है तो शरद और जब नहीं चलती है तो ग्रीष्म। लेकिन चाहे मन को जैसे भी समझाया जाये, बात बनती नहीं थी... काम के बाद मैं कभी-कभी कार लेकर समुद्र की ओर, बुज़ोवनी की ओर रवाना नहीं बल्कि भाग खड़ा होता था। लेकिन काम में बहुत अधिक व्यस्त रहने के कारण अक्सर इसका मौक़ा नहीं मिल पाता था और मैं घर जाकर ठण्डे पानी की धारा के नीचे बैठ जाता था...

काम में सिर से पांव तक फंस जाने के कारण मैं अपने भांजे और बच्चों को भी भुला बैठा था। उन लोगों के बारे में सोचने का समय ही नहीं मिल पाता था।

इस तरह एक महीना बीत गया। लेकिन तभी एक दिन मेरी सेक्रेटरी मेरे कमरे में आकर बोली: "आपका भांजा आपसे मिलना चाहता है।"

एकाएक मैं हतप्रभ-सा हो उठा। अपने भांजे के बारे में मैं एकदम भूल कैसे गया था? उससे मिलने के लिए मैं कुर्सी से उठकर आगे

बढ़ आया: "हां, तो क्या नया समाचार है? जीवन कैसे कट रहा है?" मैंने कहा और हालांकि मिलाने के लिए मैंने अपना हाथ आगे बढ़ा दिया था, ख़ुद को क़ुसूरवार समझकर मैंने आंखें नीचे झुका ली थीं।

"सब कुछ बिलकुल ठीक-ठाक है, मामा जी," वह बोला।

मैंने मन ही मन में अपनी मलामत की; अपने ही कामों में बेतरह मसरूफ़ होकर मैंने उसे क़िस्मत के भरोसे कैसे छोड़ दिया था? लौटने के बाद मैंने उसके बारे में कुछ पता भी नहीं किया था। अब शायद देर हो चुकी थी...

"हां, तो काम कैसा चल रहा है?"

"सब गड़बड़ हो गया है, मामा जी।"

"क्यों?"

"क्योंकि कारवाले वे सारे मामा तकनीकी स्कूल की छत पर अड्डा जमाये हैं।"

"क्या कह रहे हो तुम?"

"वे अटारी से अन्दर घुसकर दाखिले की नाम-सूची पर अपने भांजों के नाम लिख रहे हैं।"

"और तुम?"

"मेरा नाम सूची में नहीं है।"

मैं उस शिकारी की तरह कमरे में चक्कर लगाने लगा जिसने अपने शिकार को मांद से बाहर निकाल दिया हो या शायद ख़ुद शिकार की तरह जिसे शिकारी दिखाई दे गया था। अब मैं अपने भांजे से कहूंगा तो क्या? अपनी बहन से क्या कहूंगा? हालांकि कौन जाने, इस ख़बर से उसे बिलकुल ही कोई परेशानी न हो। शायद वह खुश ही हो कि उसका नन्हा ठिंगना घर लौट आया? लेकिन मुझे हर हालत में उसके भाई व लड़के के मामा की तरह आचरण करना चाहिए... भांजे ने मदद मांगी और मामा ने नहीं दी, यथासम्भव कुछ भी नहीं किया जिससे कि भांजा अपनी इच्छा के अनुसार तेलकर्मी बन सके।

"हां... हूं... शायद तुमने ख़ुद सब गड़बड़ कर दिया हो... शायद इम्तहान में फ़ेल हो गये हो।"

सिर उठाकर मैंने भांजे से नज़रें मिलायीं। हम आमने-सामने खड़े थे।

"नहीं," वह दृढ़ता से बोला। "एक भी इम्तहान में नहीं।"

"फिर हुआ क्या? तुम्हारा नाम सूची में क्यों नहीं है?"

"जैसे कि आप कुछ समझ ही नहीं पा रहे हैं। जिनके मामा हैं उनके नाम सूची में हैं, जिनके मामा नहीं, उनके नाम भी सूची में नहीं हैं।"

"ऐसा नहीं हो सकता।" मैंने अपनी सेक्रेटरी को बुलाकर तकनीकी स्कूल के डायरेक्टर का फोन नम्बर ढूंढ़ने के लिए कहा।

मैंने भांजे के सामने ही फ़ोन किया। चुपके से उसकी ओर नज़र डालने पर मैंने देखा कि वह उदास हो गया था। ऐसे तो उसका रंग ही सांवला था लेकिन् वह और भी ज़्यादा काला हो गया था। "ऐसा क्यों?" मैं सोच रहा था। "कहीं सचमुच फ़ेल तो नहीं हो गया या अपने मामा की उदासीनता के कारण तो ऐसी सूरत नहीं बना रखी है?"

मैंने तकनीकी स्कूल के डायरेक्टर को तीन बार फोन किया।

"सारे के सारे मामा फ़ोन करने में लगे हैं!" छत की ओर घूरते हुए वह बड़बड़ाया। उसका लहजा गांव के लड़के जैसा न था।

आख़िर लाइन मिल ही गयी। तकनीकी स्कूल के डायरेक्टर ने ही फ़ोन उठाया था। मैंने उसे अपना नाम बताया, मैंने उसके व उसके बच्चों के स्वास्थ्य के बारे में पूछा (हालांकि मुझे नहीं मालूम था कि उसके बच्चे हैं या नहीं) और वह गिला करने में लगा था कि काम बेइन्तहा हैं और फ़ोन हैं कि लगातार आ रहे हैं। यह एक संकेत था – बड़ा स्पष्ट-सा संकेत लेकिन मुझ पर कोई असर नहीं हुआ।

"मैं अपने भांजे के बारें में बात करना चाहता था।" और मैंने बड़े साफ़ लहजे में अपने भांजे का पूरा नाम उसे बताया और सूची को अधिक सावधानी से देखने के लिए कहा।

"अभी देखता हूं, अभी। सूची में अभी जांच करके बताता हूं... आपके भांजे को क्या परेशानी है?"

"मैं जानना चाहता हूं कि वह किस विषय में फ़ेल हुआ है। अब उसे क्या करना चाहिए? शायद उसे अगले साल फिर इम्तहान देने के लिए तैयारी करनी चाहिए?"

मैंने अपने भांजे की ओर देखा और उसने मेरी ओर। मुझे उसकी आंखों में गुस्सा दिखाई दिया। मुझसे ज्यादा उसका गुस्सा मेरी बहन पर था।

"यह रहा तुम्हारा हुक्काम भाई," उसकी आंखें कहती प्रतीत होती थीं। "यह रहे हमारे अनमोल मामा जिनकी दुहाई हम हमेशा बात-बात पर देते हैं।"

चोंगे को कान से लगाये मैं इन्तज़ार कर रहा था। आख़िर मानो अपने को किसी बड़े बोझ से मुक्त करते हुए डायरेक्टर बोला:

"सूची में आपके भांजे का नाम अंकित है। हर विषय में उसे ऊंचे अंक प्राप्त हुए हैं और उसे तकनोलॉजी विभाग में दाखिला मिल गया है।"

"लेकिन बोर्ड पर लगी सूची में उसका नाम क्यों नहीं है?"

"क्योंकि हमने तकनोलॉजी विभाग में दाखिला लेनेवालों के नामों की सूची बोर्ड पर नहीं टांगी है।"

"कृपया उसका नाम एक बार फिर से तो पढ़िये।"

उसने दुहरा दिया।

"यानी अस्लान-ज़ादे का नाम सूची में है?"

"हां, हां। अस्लान-ज़ादे। वह परीक्षाओं से असली अस्लान* की तरह गुज़रा है लेकिन शायद उसकी आंखों में कोई दोष है। ज़रूर ही सूची में विभागों के नाम देखकर उसकी आंखें चौंधिया गयी होंगी।"

मैंने अच्छी ख़बर के लिए डायरेक्टर का शुक्रिया अदा करने के बाद फ़ोन रख दिया। फिर भांजे की ओर मुख़ातिब होकर मैंने तेलकर्मियों के तकनीकी स्कूल में दाखिला मिल जाने के लिए उसे बधाई दी।

"यह आपके फ़ोन करने के बाद ही हुआ है," भांजे ने विचारपूर्ण मुद्रा में कहा। "मामा के फ़ोन की बदौलत ही दाखिला मिल सका है," वह आगे बोला। उसके चेहरे पर पता नहीं ख़ुशी थी या दुख था।

"नहीं बेटे, दाखिला तुम्हें सिर्फ़ अपनी और अपनी पढ़ाई की बदौलत मिला है।"

---

* अस्लान – शेर। – सं०

"बिलकुल नहीं," उसने अपना सिर हिला दिया। "मामा जी के फ़ोन के बिना वे मुझे कभी दाखिला नहीं देते। मुझे इसमें कोई सन्देह नहीं।"

काफ़ी देर तक वह मुझे विश्वास दिलाता रहा कि सिर्फ़ मामा जी के फ़ोन के कारण ही मेरे भांजे को तकनीकी स्कूल में दाखिला मिला था। मैं उसे जब यह विश्वास दिलाने में असफल रहा कि दाखिला उसे उसकी योग्यता के कारण मिला है तो चुप हो गया। और फिर सबसे महत्वपूर्ण बात थी कि उसे दाखिला मिल गया था।

३

मेरा भांजा बिला नाग़ा क्लासों में जाता, पढ़ाई में अच्छी तरह ध्यान लगाता और उसे वज़ीफ़ा मिल गया जिसकी बदौलत, उसी के शब्दों में, वह किसी से भी कोई अहसान लिये बिना यहां रहकर पढ़ने में समर्थ हो गया। वह समय-समय पर मुझसे मिलने आ जाया करता और हम थोड़ी ही देर के लिए लेकिन बड़ी उत्साहपूर्ण बातें करते। हमारे बीच घनिष्ठ मित्रता हो गयी।

अगर कभी मेरा मूड बिगड़ा होता और वह आ पहुंचता तो मेरा चेहरा अपने आप खिल उठता। मैं एकाएक ही खुशी भरी, मजाक़िया बातचीत करने को लालायित हो जाता।

"तो क्या हाल है, इंजीनियर?" मैं पूछता।

संकोचपूर्ण मुस्कान के साथ लड़का जवाब देता: "इंजीनियर बनने के लिए तो अभी बहुत लम्बा रास्ता तय करना पड़ेगा, मामा जी।"

"ऐसा क्यों? तुम तकनीकी स्कूल की परीक्षा पास करोगे, तुम्हारे मामा जी तुम्हें किसी संस्थान, किसी तकनोलॉजी विभाग में दाखिला दिलाने में मदद करेंगे और देखते ही देखते तुम इंजीनियर बन जाओगे।"

"नहीं। अब वैसा नहीं होगा!" मेरा भांजा विरोध प्रकट करता। अभी तक वह इस भावना से मुक्त नहीं हो सका था कि मामा जी की मेहरबानी से उसे तकनीकी स्कूल में दाखिला मिला था। उसे इसका पूरा विश्वास था और इसी लिए वह अपना रास्ता खुद तय करने को इच्छुक था।

"तुम अपने मामा जी के बिना काम नहीं चला सकते," अपने घर के दूसरे सदस्यों की ओर देखकर आंख मारते हुए मैं मज़ाक़ करता। "प्रतियोगिता में पार उतरना कठिन होगा।"

"उस ताप लहरी के दौरान – याद है उस समय कितनी गर्मी पड़ रही थी? – अगर मामा जी का फ़ोन उनके सिरों पर बिजली बनकर नहीं गिरा होता, तुम परीक्षाओं में कभी सफल नहीं हो पाते। ठीक है न?"

"मैं अच्छी तरह जानता हूं, मामा जी!" मेरा भांजा बोला।

कृतज्ञता का बोझ और कृतज्ञ न दिखाई देने का भय उस पर भारी पड़ रहा था लेकिन इसके बावजूद वह इससे मुक्त नहीं होना चाहता था।

"शायद मैं मामा जी की मदद के बिना ही काम चला लूं," प्रहार को कोमल बनाने के लिए शालीनता से मुस्कराते हुए वह बोला।

"मामा जी के बिना तुम बड़ी कठिनाई में पड़ जाओगे," मैं भी मुस्करा उठा। "मामा जी के बिना तुम्हें बाकू की गर्मी जला डालेगी! क्या ख़्याल है तुम्हारा?"

"अब मुझ पर ८०° सेण्टीग्रेड का भी कोई असर नहीं हो सकेगा!" मेरे भांजे ने घोषणा की। "तकनीकी स्कूल की पढ़ाई ख़त्म करके मैं कारख़ाने में काम करने चला जाऊंगा।"

"और फिर? उच्च शिक्षा का क्या होगा?"

"फिर देखेंगे क्या होता है..."

"शायद मेरा भांजा ब्याह रचाना चाहे," लड़के की ओर सन्देह भरी नज़रों से देखते हुए मैंने कहा। उसके निपट काले बाल दमक रहे थे, सूट पर बड़ी मेहनत से इस्तरी की गयी थी... चाहे जो हो, मुझे पक्का विश्वास था कि ब्याह रचाने में मेरा भांजा देर नहीं करेगा। ठीक ही है, जैसा कि कहते है, भगवान उसकी मदद करें। व्यवसाय में निपुणता पा लेगा, अच्छा काम मिल जायेगा और वह विवाहित जीवन-यापन करने लगेगा, मैं सोच रहा था।

आख़िर मेरे भांजे ने तकनीकी स्कूल की पढ़ाई ख़त्म कर ली और वह एक तेल शोधशाला में काम करने चला गया। वह अपने काम में पूरी तरह व्यस्त रहता। स्पष्ट था कि काम उसे बड़ा आकर्षक लगता था। अब हमारी सारी बातचीत तेल-शोधन की समस्याओं से सम्बन्धित

होती ; यूं तो वह सिर्फ़ एक तकनीशियन ही था, एक के बाद एक सारी समस्याएं उसके दिमाग़ में जमघट लगाये रहतीं। उसकी नयी-नयी ड्यूटियां व योजनाएं थीं।

लेकिन मुझे महसूस होने लगा कि उसका काम बहुत ठीक-ठाक से नहीं चल पा रहा था। वह मुंह फुलाये मेरे पास आता था, भौंहें चढ़ी होती थीं और मेरे सवालों का जवाब वह कतराते हुए सिर्फ़ हां या ना में ही देता था।

एक दिन वह सीधे काम से मेरे पास आया। वह साफ़ तौर पर परेशान व उत्तेजित था। मैंने ऐसा दिखाया मानो मुझे कोई असामान्य बात नहीं महसूस हुई थी।

"हां भाई इंजीनियर, क्या हाल है?"

"लोग मेरे गले में फांसी का फन्दा कसते जा रहे हैं, मामा जी।"

"कैसे फन्दे?"

"डायरेक्टर से मेरी बहस हो गयी थी।"

"डायरेक्टर से? यह कैसे हुआ?"

"हमारे बीच ज़बर्दस्त मतभेद है।"

"अच्छा। किस चीज़ के बारे में?"

गहरी सांस छोड़कर मेरा भांजा कुछ बड़बड़ाया और चुप हो गया। ज़रूर ही वह अपनी बात खुद कहकर झेंप गया था। वाह, झगड़े के लिए आदमी कितना अच्छा चुना था, मैं मन ही मन में सोच रहा था। ज़्यादा से ज़्यादा शिफ़्ट इंजीनियर या शॉप सुपरिटेण्डेण्ट होता तो कोई बात नहीं। लेकिन इतने बड़े कारखाने के डायरेक्टर से... क्या ऐसी बात थी जिस पर दोनों सहमत नहीं हो पाये थे?

मेरा भांजा चला गया लेकिन मैं सोचता रहा और उसके बारे में चिन्तित होता रहा। शायद भांजे ने खराब व्यवहार शुरू कर दिया था या कठिनाइयां पैदा करनेवालों से सांठ-गांठ कर ली थी? यह कैसे हो सकता है कि उस कारखाने में एक हज़ार काम करनेवालों में सिर्फ़ मेरे भांजे पर, नन्हे ठिंगने पर डायरेक्टर की नज़र पड़ गयी थी और मेरा भांजा उसकी आंख का कांटा बन गया था जबकि वह कारखाने में बड़े छोटे से ओहदे पर था। और फिर लड़के ने वहां सिर्फ़ दो या तीन महीनों तक ही काम किया था!..

मैं इन सब बातों पर जितनी गम्भीरता से विचार करता जाता, मेरी चिन्ता उतनी अधिक बढ़ती जाती। दूसरे दिन जहां भांजा काम करता था, उस कारख़ाने के डायरेक्टर का फ़ोन नम्बर मालूम करके मैंने फ़ोन किया। मुझे बताया गया कि डायरेक्टर खातों में गया हुआ है। दो घण्टे बाद जब मैंने फिर फ़ोन किया तो किसी ने बताया: "आज डायरेक्टर साहिब नहीं आयेंगे। फ़ोन करने से कोई लाभ नहीं।"

"तब फिर कब फ़ोन पर बात हो सकती है?"

"कल। ठीक दस बजे।"

उस दिन मुझे आराम से नीन्द नहीं आयी और मैं सवेरे ही जाग गया। मैं घड़ी में दस बजने की बेसब्री से प्रतीक्षा करने लगा।

आख़िर मैंने चोंगा उठाकर नम्बर घुमाया। मैंने अपना नाम बताया, काम में बाधा डालने के लिए डायरेक्टर से माफ़ी मांगी और अपनी बातचीत सीधे भांजे के बारे में शुरू कर दी।

"क्या आप अस्लान-ज़ादे को जानते हैं? कुछ महीने पहले तकनीकी स्कूल की पढ़ाई पूरी करके आपके यहां काम शुरू किया था..."

"क्या कहा, जानते हैं? बहुत अच्छी तरह जानता हूं," डायरेक्टर बीच में ही बोल उठा। "मैं उसे सबसे अच्छी तरह जानता हूं।"

"आपका मतलब क्या है?"

"बड़ा ही ज़िद्दी विवादी है।"

"क्या उसका व्यवहार अच्छा नहीं है? या बुरी संगत में पड़ गया है?"

"बिलकुल नहीं।"

"तो फिर बात क्या है?"

"वह अपनी कल्पना एक आविष्कर्ता के रूप में करता है। लेकिन ज़रा अपने बूते से बाहर हाथ-पांव मारता है। जैसी कि कहावत है, वह एक ही जूते में दोनों पांव डालने की कोशिश कर रहा है। फिर मेरे पास आता है और कहता है कि काम पिछड़ रहा है, मैं पहलक़दमियों को प्रोत्साहन नहीं देता हूं, मैं नयी व प्रगतिशील चीज़ों की राह में रोड़े अटकाता हूं!"

"तो यह बात है!" बड़ी कठिनाई से हंसी रोकते हुए मैंने निष्पक्ष भाव से कहा।

डायरेक्टर ने विस्तार से सारी बातें बतायीं और मुझे बिना किसी कड़वाहट के आश्वस्त किया कि मेरे भांजे के दावों की कोई सीमा क़रार नहीं दी जा सकती थी, एक भी दिन ऐसा नहीं बीतता था जब किसी न किसी से उसकी बहस नहीं होती और जब लोग उसकी बातों पर कान नहीं देना चाहते तो वह घोषणा कर देता है: "मैं किसी तरह हाथ पर हाथ धरकर बैठ नहीं जाऊंगा!.. मैं इसे उच्चतम अधिकारियों तक ले जाऊंगा!.."

"माफ़ कीजिएगा, लेकिन क्या उसके आविष्कारों में कोई हल्की-सी भी विचारणीय बात होती है?"

"देखिये... इस तरह की कोई भविष्यवाणी तो बड़ी कठिन है, बहुत कठिन..." उसने ज़ोरों से सांस छोड़ी। "बहुत अच्छा होगा कि जब आपका भांजा अगली बार आपके पास आये तो आप उसे थोड़ी डांट पिलायें और हमें शान्ति से रहने देने के लिए उससे कहें। जब लड़का कोई सचमुच का आविष्कार कर लेगा... कोई उपयोगी काम लायक़ आविष्कार तब हम इसके बारे में बातचीत करेंगे और उसके आविष्कार को स्वीकृति दे देंगे... काम में लायेंगे..."

सच कहूं तो इस बातचीत के बाद मैंने राहत की सांस ली। अगर मेरे भांजे, नन्हे ठिंगने के आविष्कार अभी भी एकदम अधूरे थे तो भी शुरूआत बुरी न थी, बिलकुल नहीं...

छुट्टी के दिन वह मेरे यहां आया। मैंने उससे उसके मिजाज़ के बारे में पूछा और अच्छी डांट पिलायी: "भाई, यह अच्छी बात नहीं। तुमने हद कर दी है। तुम लोगों पर दोष लगाते हो, उनसे झगड़ा करते हो। और झगड़ा भी कैसे लोगों से करते हो? इतने बड़े कारख़ाने के डायरेक्टर से।"

सिर लटकाये मेरा भांजा मेरी बात ध्यान से सुन रहा था। लेकिन मैंने जैसे ही डायरेक्टर का नाम लिया, वह बारूद की तरह फट पड़ा। "अगर मेरा जीवन एक घण्टा भी बचा होगा तो मैं उससे बहस करने से बाज़ नहीं आऊंगा।"

"लेकिन बेटे, क्यों? अपने से बड़े-बुज़ुर्गों का आदर करना तुम अपना कर्त्तव्य क्यों नहीं मानते?" मैंने गुस्से से पूछा। "क्या तुम नौजवानों ने बड़े-छोटे का भेद ही भुला दिया है?".

"सीनियर को भी अपनी सही जगह मालूम होनी चाहिए," चेहरे की रंगत बदलते हुए वह बोला। "उसे भी अपने से नीचे काम करनेवालों का आदर करना आना चाहिए।"

"बेकार की ज़िद छोड़ो और तैश में न आओ!" मैंने भी अपना लहजा कुछ-कुछ बदल दिया।

"ज़रा मेरी जगह पर तो आकर देखिये। हमारे डायरेक्टर जैसे लोग आपकी कमज़ोरी भांप लेंगे और पीछे से गर्दन थामकर पुरानी जगह बैठा देंगे।"

"ज़रा देखो, अभी तुम्हारे पैदा हुए ही जुमे-जुमे आठ दिन हुए हैं!"

"तो क्या आप चाहते हैं कि मैं घुटरूं चलना शुरू कर दूं?"

"बेटे, हम थोड़ी शिष्टता से काम लें।"

"मैं इससे ज़्यादा शिष्ट नहीं हो सकता, मामाजी।"

"ओह हो! लेकिन क्यों नहीं हो सकते, मेरे बच्चे?"

"वह डायरेक्टर पत्थर की दीवार की तरह है, मामा जी!" उसने कहा। उसका चेहरा इस तरह बुझ गया कि कालिखदार नमदे की तरह दिखने लगा। "उसके विचार बड़े पुराने ढंग के हैं। आप मेरा विश्वास कीजिए, यह कहनेवाला मैं अकेला नहीं। कारख़ाने के सभी नौजवान मज़दूर उससे असंतुष्ट हैं।"

"और मेरे ख़्याल से तुम उनके नेता हो?"

"हां।"

मैंने अपने को संयमित करने की कोशिश की और सोचने लगा कि कैसे इसे अच्छी तरह समझाया जा सकता है, सलाह दी जा सकती है या वांछित दिशा में प्रवृत्त किया जा सकता है? लेकिन मैंने यह भी महसूस कर लिया कि इस समय मेरी बातों का उस पर कोई भी असर न होगा। मैं सचेत हो उठा: यूं तो लड़के ने सही रास्ता चुना था लेकिन शायद भटक भी सकता था, वह अवांछनीय स्थिति में पहुंच भी चुका था...

"हां," मैंने कहा। "तो बात ऐसी है। ज़रा किसी आदमी को आज़ाद महसूस करने दो और वह सोचने लगेगा कि सब कुछ कर सकता है, अपने उच्चाधिकारियों की बातें भी नहीं सुनेगा। कभी किसी ने

ऐसी बात सुनी है?तुम मुझसे इस तरह बातें करने की हिम्मत कैसे कर पाये?.."

संक्षेप में, उसे अकेला छोड़कर मैं दूसरे कमरे में चला आया और आलमारी से एक किताब उठाकर जल्दी-जल्दी उसके पन्ने पलटने लगा। फिर अपने काग़ज़ात इकट्ठे करके उन्हें फ़ोल्डरों में रखकर मैं बॉलकनी में चला गया और समुद्र पर नज़र डालने के बाद फिर कमरे में लौट आया... और हालांकि यह सब कुछ ही मिनटों में हो गया था, भगवान जाने, क्यों लग रहा था जैसे काफ़ी समय बीत गया हो लेकिन जब मैं लौटा, वह जा चुका था। वह उठकर चला गया था। मेरे बच्चे मेरे पीछे पड़ गये और पूछने लगे कि मैं अपने भांजे के साथ इतना रूखा व्यवहार क्यों कर रहा था। इसमें हैरानी की कोई बात नहीं, वे कह रहे थे। बेशक लड़का चला गया था। और लड़के ने बिलकुल ठीक किया था, आदि-आदि... लेकिन मैं सोच रहा था कि वह नहीं, मैं सही था! बड़ी जल्दी उसने ग़लत रास्ता अख़्तियार कर लिया था... कौन-सा ग़लत रास्ता?.. उद्धतता का... हां, उद्धतता!.. इसे नज़रअन्दाज़ नहीं किया जा सकता।

...हफ़्ते बीते, फिर महीने। आंधी आयी थी, हिमकिरीट ग़ायब हो चुके थे, भावावेश थम गये थे। हम फिर साथ थे–मैं और मेरा भांजा, नन्हा ठिंगना। हमने आपस में सलाम-दुआ की। बैठकर उसने अजीब ढंग से मुंह लटका लिया था, या तो अपने को क़ुसूरवार समझते हुए या खेद जताते हुए। यानी उसे आज भी उसका अफ़सोस है और कौन जाने, शायद वह मुझसे माफ़ी मांगना चाहता हो। लेकिन वह सब बीत चुका था और अब बीती बातों को याद दिलाने में कोई तुक नहीं था। वर्तमान के बारे में बात करना बेहतर था। मैं उससे यह कहने ही वाला था जब हमारी आंखें आपस में मिलीं और मुझे उसकी आंखों में कोई ऐसी चीज़ दिखाई दी कि मैं चुप हो गया। मैंने भांजे के हाथ की ओर देखा: वह अपना हाथ पैण्ट की जेब में डाल चुका था। हाथ जब बाहर निकला तो उसमें एक बण्डल था। भांजे ने बण्डल को खोल दिया। मालूम है, मुझे क्या दिखाई दिया? सोने की एक बड़ी-सी ब्याहवाली अंगूठी। मेरे हाथों में सौंपते हुए उसके चेहरे पर पसीने की बूंदें चुहचुहा आयी थीं...

"मामा जी, क्या आप सोने के बारे में कुछ जानकारी रखते हैं?" संकोच से अरुणिम होते हुए उसने पूछा।

मैंने अंगूठी को हथेली पर हल्के से उछाला।

"अल्लाह की इनायत हो!" मैंने कहा। मैं उसकी मलामत नहीं कर सकता था। क्या तीस साल पहले बिना किसी को बताये मैंने ठीक इसी तरह की एक अंगूठी नहीं ख़रीदी थी? "बधाई हो, बेटे!"

"क्या यह अंगूठी असली सोने की है, मामा जी?"

"सच कहूं तो मुझे इन सब चीज़ों के बारे में कोई ज़्यादा जानकारी नहीं," मैं हंस पड़ा। "मैंने तुम्हारी मामी के लिए एक अंगूठी ख़रीदी थी लेकिन उसके बाद फिर कभी मुझे सोना ख़रीदने की ज़रूरत ही नहीं पड़ी।"

"मैं सिर्फ़ यह मालूम करना चाहता हूँ कि यह अंगूठी असली सोने की है या नहीं।"

"किससे ख़रीदी थी तुमने?"

"एक बेचनेवाले से।"

"किसी दुकान में?"

"नहीं," मेरे भांजे ने मुझे अपने साथ हुई घटना के बारे में बताया।

वह निहायत अकेला बेंच पर बैठा एक किताब पढ़ रहा था। फिर एक सुसज्जित व्यक्ति उसकी बग़ल में आकर बेठ गया। मेरे भांजे के शब्दों में "कोई भद्र पुरुष।"

वह आदमी भद्रता से खांसा, छींका, सिगरेट सुलगायी फिर चुपके-चुपके भांजे की ओर देखने के बाद भांजे से मुख़ातिब हुआ। उसने नम्रतापूर्वक बहुत से सवाल पूछे। सवाल बहुत सीधे-सादे थे–चाहो तो जवाब दो, न चाहो तो न दो, ऐसे सवालों से कोई नाराज़ नहीं हो सकता था। लेकिन उन सीधे-सादे सवालों में से एक में उसकी दिलचस्पी पैदा हो गयी है; नौजवान विवाहित है या कुंवारा? अरे, कुंवारा है तो ज़रूर ही जल्दी शादी करेगा। इसी उम्र में शादी करनी चाहिए! और उसके पास वही चीज़ है जिसकी ज़रूरत हर आदमी को ठीक शादी से पहले होती है।

ऐसी बातों के बाद उसने ब्याह की अंगूठी निकाली।

"हालांकि मेरे लिए यह बात दुखदायी है लेकिन अगर आप चाहते हैं तो मैं आपको यह अंगूठी दे दूंगा।"

"आप इसे बेच क्यों रहे हैं?" मेरे भांजे ने पूछा।

"मैं एक ग़रीब आदमी हूँ, भाई। अपने ख़र्चे चलाने के लिए मुझे पैसे चाहिए।"

"तो फिर बाज़ार में ले जाकर क्यों नहीं बेच आते हैं?"

"सच कहूं तो मुझे डर है कि कहीं ठगा न जाऊं।" भद्र पुरुष ने बड़ी दृढ़ता से मेरे भांजे की ओर देखा। "मैं दलालों से डरता हूं, दोस्त। मुझे डर है, कहीं अंगूठी मेरी अंगुली से निकल न जाये और फिर देखने को भी न मिले।"

जिस तरह धूप की चमक से आदमी की आंखें चौंधिया जाती हैं, निस्सन्देह, उसी तरह मेरे भांजे की आंखें सोने की उस अंगूठी की चमक देखकर चौंधिया गयीं। चमक के पीछे उसने देखा... ताज़ा गिरी अछली बर्फ़ और चमकता धूप भरा दिन... चमक के पीछे उसने देखा... लेकिन हम इसकी चर्चा यहीं ख़त्म करते हैं... हम देखें कि वह भद्र पुरुष क्या कर रहा है। वह मेरे भांजे की ओर बड़े स्नेहपूर्ण ढंग से देखता है। वह देखता है, किस तरह लड़का अंगूठी को काफ़ी देर तक हाथ में थामे रहता है। और फिर वह कहता है: "दोस्त, मैं देखता हूं, तुम्हें अंगूठी पसन्द आ गयी है। तो ले लो। इसे उपहार समझ लो।"

"मैं आपसे उपहार कैसे ले सकता हूं?" मेरे भांजे ने विरोध प्रकट किया। "लोग क्या कहेंगे?"

"कोई कुछ नहीं कहेगा। अंगूठी मेरी है और मैं तुम्हें दे रहा हूं... एक पुरानी कहावत है: 'कोई अच्छा काम करो, मछली को समुद्र में फेंक दो; मछली इसे नहीं समझेगी लेकिन अल्लाह ज़रूर समझेगा।' परिचित या अच्छे दोस्त होने की कोई ज़रूरत नहीं। अच्छा काम कभी व्यर्थ नहीं जाता। जो अच्छा काम करता है, ज़रूर ईनाम पाता है।"

"नहीं, मुझे माफ़ ही कीजिए। मैं आपसे उपहार नहीं ले सकता।"

"तो फिर तुम इसे ख़रीद क्यों नहीं लेते हो?"

"मेरे पास इतने पैसे कहां से आयेंगे?"

"तुम चाहो तो कम पैसे में ख़रीद सकते हो।"

"मेरी जेब में बहुत थोड़े पैसे हैं।"

"कितने?"

चौकसी से मेरा भांजा अपनी जेबें टटोलकर खाली करता है। जेबों में लगभग तीन सौ रूबल थे।

"बस इतने ही हैं?"

"बस और यह घड़ी भी है।"

"और तुम्हारी यह मामूली घड़ी कितने की है?"

"मैंने तीन सौ रूबल में ख़रीदी थी।"

"ठीक है, मैं नुक़सान सह लूंगा। मेरे लिए यही काफ़ी है कि अंगूठी किसी बदमाश के हाथ नहीं लगेगी।"

चुपचाप से, कुछ-कुछ झेंपते हुए मेरा भांजा घड़ी खोलकर अंगूठी के मालिक की ओर बढ़ा देता है।

मेरे भांजे का छोटा-सा हाथ अपने हाथ में लेकर वह दृढ़ता से हिलाता है और पल भर में बिना कुछ कहे-सुने ग़ायब हो जाता है। एकाएक भांजे को किसी गड़बड़ी का अहसास होता है; वह चिन्तित हो उठता है और यह सोचे बिना कि मामा जी को श्रेष्ठ धातुओं की कोई जानकारी नहीं, अपने मामा जी के यहां जाने का फ़ैसला कर लेता है।

जैसा कि मैं पहले ही बता चुका हूं, दरअसल, मैंने सोने की छोटी-सी चीज़ जीवन में सिर्फ़ एक बार ही ख़रीदी थी और उसे जांचने या परखने का ख़्याल मन में कभी आया ही नहीं था।

हथेली में भारी-सी अंगूठी को उछालते हुए मैंने कहा: "अगर यह असली सोने की है तो समझ लो कि तुम्हें मुफ़्त में ही मिल गयी है।" मैंने उसकी ओर साभिप्राय देखा।

"और अगर नहीं तो?" मेरे भांजे का चेहरा पीला पड़ गया था। "अगर यह असली सोने की नहीं तो?"

"तब तुम ठगे गये हो। तुम्हें अच्छी तरह ठग लिया गया है। क्या तुम सच में सोचते हो कि ऐसी चीज़ें अजनबियों से ख़रीदी जा सकती हैं?"

"मैंने सोचा था कि अगर सस्ते में मिल रही है तो क्यों न ख़रीद ली जाये?"

15*

"और अगर तुमने इसे हीरे के भाव खरीदा हो तो?" मैंने भांजे को फटकार बतानी शुरू कर दी। "देखो मेरे दोस्त, यह शहर में तुम्हारा कोई पहला साल नहीं है, तुम तकनीकी स्कूल की पढ़ाई खत्म कर चुके हो, तुम अपने को आविष्कर्त्ता कहते हो, तुमने इतने बड़े कारखाने के डायरेक्टर की तबीयत साफ़ कर रखी है और इसके बावजूद किसी एकदम अजनबी आदमी से ब्याह की अंगूठी खरीदते हो। तुम स्वयं एक आविष्कर्त्ता हो लेकिन तुम्हें आविष्कारों की क़त्तई कोई जानकारी नहीं।" मैंने ब्याह की अंगूठी को हाथ में पलटा।

तभी मेरी बेटी स्कूल से लौटी और सारी समस्या के बारे में सुनने के बाद निराशा से हाथ मलने लगी। वह भी क़िस्मत की मारी अंगूठी को हाथों में कभी इधर से, कभी उधर से उलट-पलटकर देख रही थी।

"जानते हो क्या करना चाहिए," मैंने बेटी व भांजे से कहा। "किसी पास की गहने की दुकान पर चले जाओ और तुम्हें सचाई मालूम हो जायेगी। इसकी क़ीमत तीन हज़ार रूबल है या तीन कोपेक।"

मेरा भांजा जो मेरी बातें सुनकर हक्का-बक्का था, परेशानी भरी चुप्पी के साथ उठकर चला गया। मेरी बेटी भी उसके पीछे-पीछे गयी।

एकाएक मैं गुस्से से उबल उठा। अगर वह "भद्र पुरुष" मेरे हाथ लग जाये तो मैं पता नहीं क्या करूं – लेकिन जो भी करूंगा खुशगवार नहीं होगा!

"अरे लौट आये! इतनी जल्दी? क्या बताया?"

मेरे भांजे ने चुपचाप अंगूठी मेज़ पर फेंक दी। "मात्र दस रूबल की है," ललाट से पसीना पोंछते हुए वह बोला। "सिर्फ़ दस रूबल – न ज्यादा, न कम।"

दांतों से अंगुली चबाती मेरी बेटी एक ओर खड़ी थी।

"क्या ऐसी अंगूठियां दुकान में और भी हैं?"

"जितनी चाहें मिल सकती हैं। गाड़ी भर।"

चाहे आप जो भी कहें, मेरा और मेरे भांजे, दोनों का मूड बहुत बिगड़ गया था... बात सिर्फ़ पैसों के नुक़सान की ही नहीं थी। मेरे भांजे का पहला प्रयास मिट्टी में मिल गया था।

"हमारा यह प्रयास असफल रहा," मैंने कहा।

मेरा भांजा सिर लटकाये था। सच कहूं तो मैं यह नहीं समझ पाया कि मेरा भांजा किस बात से अधिक परेशान था – पहला प्रयास असफल हो जाने से या एक बदमाश, बेइमान, मक्कार, फ़रेबी आदमी को "भद्र पुरुष" समझ लेने के कारण।

जैसे आग छू गयी हो, इस तरह अचानक ही सिर झटकते हुए, दांत पीसते हुए और आंखें सिकोड़ते हुए वह उठा और झपटकर दरवाज़ा खोलकर तीर की तरह बाहर निकल गया। मेरा भांजा, वह बेसब्र नन्हा ठिंगना जिसे अपने आप पर कोई क़ाबू न था और जो मेरी मलामतों व गिलाओं से बहुत डर गया था, कहीं तेज़ी से चला गया था। वह कहां गया था? मैं जानता हूं। वह दौड़कर बाग़ में उस बेंच पर बैठने गया था जहां किसी "एकदम अजनबी" से परिचित होने का सुख उसे मिला था, वह वहां कुछ देर तक बैठेगा, फिर उठकर इधर-उधर घूम-फिरकर उस मनहूस जगह की तलाशी लेगा। लेकिन उसे कोई भी नहीं मिलेगा। हां, अब वहां कोई भी नहीं होगा। "निहायत भद्र पुरुष" लोप हो चुका होगा। हालांकि वह कहीं न कहीं तो ज़रूर मौजूद है। वह धरती पर चलता-फिरता है लेकिन कभी-कभी किसी ऐसी बेंच पर जा बैठता है जिस पर ब्याह की तैयारी करनेवाला कोई नौजवान पहले से बैठा होता है – ठीक उसी तरह जैसे वह मेरे भांजे की बग़ल में जाकर बैठा था और फिर लगभग मुफ़्त में अंगूठी बेचने का प्रस्ताव करता है... वह अजीब व्यक्ति धरती पर चलता-फिरता है लेकिन उसे इसका कोई हक़ नहीं। मेरे भांजे, नन्हे ठिंगने की यही राय़ है। और उसकी राय बिलकुल ठीक है।

४

मेरा भांजा चला गया और ब्याहवाली अंगूठी के बारे में जब मेरी खीज कुछ-कुछ मिट-सी गयी तो मैं ठहाका लगाकर हंस पड़ा: "निस्सन्देह, लड़के की सगाई हो ही जाती।" लेकिन जल्दी क्या है। परिवार में सबसे छोटा है। बड़े भाइयों की बारी मारने की क्या ज़रूरत है? मैं अपना विचार अपने भांजे के सामने उसी समय रखना चाहता था लेकिन हमारी मुलाक़ात दो हफ़्ते बाद हुई। मुझे बड़ी खुशी हुई।

"चलो, आखिर आये तो! इतने दिनों से आये क्यों नहीं? कहां रहे? क्या 'भद्र पुरुष' से सामना हुआ? उस भद्र पुरुष ने अस्लान-ज़ादे को खूब ठगा!" मैंने अपने भांजे की चुटकी ली। "और वह भी रात के समय नहीं, दिन-दहाड़े और घने जंगल में नहीं, शहर के बाग़ में, भीड़-भाड़वाली जगह में। लेकिन मैं ज़रूर कहूंगा कि उसने बड़ी चतुराई से, पूरी महारत के साथ किया!" मैंने कन्धा व पीठ थपथपाते हुए लड़के से मज़ाक़ किया।

"हां, आप ठीक कहते हैं," मेरे भांजे ने कड़वाहट के साथ हामी भरी। "अफ़सोस है कि बदला नहीं चुका पाया।"

"हां, तो अब क्या सोचते हो," मैंने सरसरी निगाह डाली। "शायद हमें दूसरी अंगूठी ख़रीदनी चाहिए।"

"नहीं, मामा जी। बात वहीं ख़त्म हो गयी। जो बीत गया सो बीत गया।"

"लेकिन क्यों? ऐसा कैसे हो सकता है?"

"मुझे पढ़ना है। मुझे अभी काफ़ी पढ़ाई करनी है।"

"बात तो ठीक है। तुम्हें खूब पढ़ना, खूब सीखना चाहिए। लेकिन तुमने विद्यालय में दाखिला लेने का इरादा क्यों छोड़ दिया? माध्यमिक स्कूल के स्तर की तकनीकी शिक्षा कोई बहुत ज़्यादा नहीं। तुम्हें इंजीनियर बनना चाहिए। नहीं तो भाई, तुम कोई भी महत्वपूर्ण आविष्कार नहीं कर पाओगे।"

"मैं जानता हूं, मामा जी। मुझे मालूम है। लेकिन यह बड़ा मुश्किल काम है। परीक्षाओं में पास होना मेरे लिए सबसे ज़्यादा मुश्किल है। और फिर आप जानते ही हैं, मैं अपने काम में भी बहुत मेहनत कर रहा हूं। अगर पढ़ने का बोझ भी सिर पर आ गया तो..."

"इसी लिए तो तुम्हें पढ़ाई जारी रखनी है," मैंने बल दिया। "तुम्हारे अन्दर शक्ति के सागर हिलोरे ले रहे हैं। तुम पहाड़ को भी हिला सकते हो। तुम इसका क्या करोगे... शहर में मटरगश्ती करते-फिरोगे और क़ीमती समय बर्बाद करोगे? ज़रा सोचो, बेटे।"

"मैं सोचूंगा, मामा जी।"

"यह कहने की ज़रूरत नहीं कि अंगूठी नक़ली निकल गयी। इस समय तुम्हें किसी तरह की जल्दबाज़ी नहीं करनी चाहिए।"

"हां... लेकिन मैं उस फ़रेबी को ज़रूर ढूंढ़ निकालूंगा। खुद। उसे ढूंढ़कर सही अधिकारियों के हवाले कर दूंगा।"

"यह तो बहुत अच्छी लेकिन कठिन बात है। और फिर क्या यह ज़रूरी है?"

"मैं उसे ज़रूर ढूंढ़ निकालूंगा, मामा जी," मेरे भांजे की काली-काली आंखों में बिजली कौंध गयी।

"यह मुश्किल ही है। लाखों आदमियों में एक को ढूंढ़ निकालना मुश्किल है! बहुत मुश्किल!"

"मैं ढूंढ़ निकालूंगा।"

"तलाशते रहो। और हां, चाहे जो भी हो, हाथापाई न करना!" यह मान करके लड़का उस आदमी को ज़रूर ही ढूंढ़ लेगा, मैंने भांजे से कहा। "नियम-क़ानून अपने हाथ में न लेना! मैं जानता हूं, तुम गुस्से में आ जाते हो लेकिन ऐसा कुछ भी न करना! बस पकड़ लो तो पुलिस थाने ले जाओ। मारने-पीटने की न सोचना।"

"हां, अपने आप पर क़ाबू रखना तो ज़रूर ही मुश्किल होगा, मामा जी। मैं उसे एक-दो हाथ तो दूंगा ही। आप क्या कहते हैं?"

"ठीक है, ठीक है। एक या दो हाथ... लेकिन मैंने जो कुछ कहा, भूलना मत। अच्छा बताओ तो वह लम्बा कितना है?"

"कितना लम्बा? अरे, यही कोई मुझसे तीन गुना ज़्यादा लम्बा और तीन गुना ज़्यादा चौड़ा – हाथी ही समझिये।"

"ध्यान रखना। और चाहे जो हो, कहीं वह तुम्हारी मरम्मत न कर दे। अच्छा होगा कि हाथापाई न ही करना।"

"नहीं, मामा जी, जब तक मैं उसे एक-दो हाथ नहीं लगा लूंगा... मुझे चैन नहीं मिलेगा... मैं इसके बारे में कोई वायदा नहीं कर सकता।"

समय बीतता रहा... हमारी पिछली बातचीत के बाद कितना समय बीता होगा, मैं ठीक-ठीक नहीं बता सकता लेकिन मैं अपने भांजे, नन्हे ठिंगने को ढूंढ़ निकालने की तैयारी करने ही वाला था। "इस बार इतने दिनों तक कहां ग़ायब हो गया?" सागर तट पर पतझड़ के एक शानदार दिन टहलते हुए मैं मन ही मन में सोच रहा था। अचानक मुझे लगा कि कोई आवाज़ दे रहा है। मुड़कर देखा तो मेरा भांजा था।

"सलाम, मामा जी।"

"सलाम, भांजे, सलाम ... इस बूढ़े को एकदम ही भूल गये क्या?.. क्या समाचार हैं? बताओ!"

"मेहनत की कमाई लोप नहीं हो सकती, मामा जी!" कलाई पर लगी घड़ी को बड़े गर्व से दिखाता हुआ वह बोला। "देखिये। बैण्ड भी बिलकुल वही है।"

और उसने मुझे पूरी घटना कह सुनायी।

...मेरा भांजा उस आदमी की तलाश हर दिन करता रहा। वह जहां कहीं भी जाता-आता, घूमता-फिरता उस आदमी को तलाशता रहता। वह इस तरह बिना थके-हारे उस आदमी की तलाश में फिरता रहा मानो उसके हाथों में लोहे का जादुई डण्डा हो और पांवों में लोहे के जादुई जूते। आखिर कुछ दिन पहले जब मेरा भांजा एक बड़ी सी दुकान में घुसा तो लोगों की भीड़-भाड़ में वह आदमी उसे नज़र आ ही गया। वह आदमी एक नौजवान, सुसज्जित औरत के साथ-साथ चलते हुए कोई चीज़ दिखाता जा रहा था। मेरे भांजे ने देखा, वह चीज़ उसकी हथेली में दमक रही थी और औरत अपना पर्स खोलने ही वाली थी। पर्स खोलकर औरत ने सौ-सौ रूबल के नोटों की गड्डी निकाली ... उसी पल मेरा भांजा अस्लान तेज़ पंजोंवाला नौजवान शेर बन गया। वह उस आदमी पर उड़ता-सा आ गया ... और इसके साथ ही उस "निहायत भद्र पुरुष" के कारनामे ख़त्म हो गये। मेरा भांजा अपने वायदे पर क़ायम रहा; उसने न ज़्यादा न कम, सिर्फ़ दो हाथ उसे लगाये और उसकी कलाई से अपनी घड़ी खींच ली और अपने क़ैदी को फ़ौरन पुलिस के हवाले कर दिया।

"लेकिन पैसे ..." मैंने पूछा। तुम्हारे तीन सौ रूबल कहां हैं?"

"इसका फ़ैसला अदालत करेगी," एक सच्चे वकील की तरह मेरे भांजे ने घोषणा की।

"जिस तरह घड़ी ली थी, उसी तरह तुमने रूबल भी क्यों नहीं वसूल लिये?"

"रूबल मुझे अदालत के ज़रिये मिल जायेंगे।"

"तो मेरा भांजा तरक़्क़ी कर रहा है," मैंने सोचा। मेरी सीख बेकार नहीं गयी। कानून के प्रति अच्छी श्रद्धा दिखा रहा है ...

लेकिन मैं देख रहा था कि उस फ़रेबी की परछाई को भी वह नोच डालने को तैयार था।

"यह बात सिर्फ़ हमारे और आपके बीच रहनी चाहिए।" उसने मेरे कान में बुदबुदाकर कहा, "मैं इन सारे कीड़े-मकोड़ों, परजीवियों को जला डालना चाहूंगा ..."

"ठीक है, ठीक है, लेकिन तुमने अभी-अभी ..."

"हां, वह तो ठीक है। मैंने ..."

"तुम अपने भावावेगों को ज़्यादा हवा न दिया करो। इतना ज़्यादा नहीं ..."

और मैंने अपने भांजे को दूसरी सीख दी: जब एकदम असम्भव प्रतीत हो, उस समय भी आदमी को अपने आप पर क़ाबू रखना चाहिए। किसी भी हालत में अपनी ओर से शुरूआत नहीं होनी चाहिए ... (मैंने यह कभी नहीं कहा कि किस चीज़ की शुरूआत नहीं करनी चाहिए, बस मैंने उसे दिखाकर अपने मुक्के हिला दिये और वह भलीभांति समझ गया)। इस प्रकार आराम से बातें करते हुए हम छायादार सड़क पर घूमते-फिरते रहे और फिर पसन्द की एक बेंच पर बैठकर दोनों सोचने लगे। मैं अपनी उस कृति के बारे में सोच रहा था जिसे मैंने थोड़े ही समय पहले लिखना शुरू किया था। एक स्थल पर मैं सागर का वर्णन इच्छित ढंग से नहीं कर पाया था। कुछ न कुछ कमी रह गयी थी। सागर की ओर देखते हुए मैं उन कमियों के बारे में सोचने में इस तरह खो गया कि बगल में बैठे भांजे को भी भूल गया।

वह खांसा।

"आह, यह तुम हो। माफ़ करना! कभी-कभी यह लिखने का धन्धा असह्य हो उठता है। कल्पना अपने पाल खोलकर अचानक ही अपरिचित लहरों के साथ-साथ अनजान जगहों को उड़ा ले जाती है।"

"मैं समझता हूं," मेरा भांजा बोला।

"तुम कैसे समझ सकते हो? या मामा जी की तरह ही इस मर्ज़ के शिकार तुम भी हो गये हो?"

मेरा भांजा फिर खांसा। "नहीं," वह बोला। "बिलकुल नहीं।"

"शायद ब्याह की अंगूठी ख़रीदने में असफलता पाकर तुमने कविता शुरू कर दी?"

"नहीं, कविता में मेरी कोई दिलचस्पी पैदा नहीं हो पायी है, मामा जी।"

"तो फिर क्या बात है?"

मेरे भांजे ने जेब से एक मुड़ा अख़बार निकालकर मुझे थमा दिया। मैंने अख़बार को सीधा किया। यह किसी कारख़ाने का अख़बार था। पहले पृष्ठ पर मेरे भांजे की तस्वीर थी और उसके नीचे एक लेख था। अपने चश्मे चढ़ाकर मैं धीरे-धीरे पढ़ने लगा। लेख में कहा गया था कि मेरे भांजे के आविष्कार को फिलहाल एक कारख़ाने में काम में लाया गया है और उसकी बदौलत लाखों रूबल की बचत हुई लेकिन जब इसे दूसरे कारख़ानों में इस्तेमाल में लाया जायेगा तो करोड़ों रूबल की बचत होगी...

तो यह बात है! मेरे भांजे ने अपनी खोजें बन्द नहीं की थीं, आविष्कर्त्ता के कठिन रास्ते का त्याग नहीं किया था। इतने बड़े कारख़ाने का डायरेक्टर भी उसकी हिम्मत पस्त करने में सफल नहीं हो पाया था।

इसके आलावा, लेख में बताया गया था कि अस्लान-ज़ादे अपना काम छोड़े बिना एक औद्योगिक विद्यालय में पत्राचार द्वारा पढ़ रहा था।

"यह सब सच है या किसी दोस्त ने लेख लिख मारा है?"

मैंने उलझानेवाला अपना सवाल किया ही था कि कोई चीज़ उसके हाथों में चमक उठी। लेकिन नहीं, इस बार यह चीज़ किसी बहुमूल्य धातु की बनी हुई न थी। मैं धीरे से चौंक उठा। कांसे की चमकती चेन में लगी वह लोहे की बनी मामूली कुंजी थी। वह मेरे भांजे, नन्हे ठिंगने को मिली फ़्लेट की कुंजी थी।

सिर्फ़ छह साल पहले उसने मेरे ऑफ़िस के खुले दरवाज़े पर सकुचाते हुए दस्तक दी थी... सिर्फ़ छह साल पहले...

पता चला कि वह चुपचाप हाथ पर हाथ धरे फ़्लेट के लिए प्रतीक्षा नहीं करता रहा था। अपने ख़ाली वक़्त में वह तेल शोधशाला में कर्मियों के लिए एक रिहायशी इमारत के निर्माण में काम करता रहा था। उसने यथासम्भव इस काम में पूरी मदद की थी और एक दूसरे पेशे में भी पारंगतता पा ली थी – ईंट पारने के पेशे में।

उससे कुंजी लेकर मैं उसे अपने हाथों में उलटते-पलटते हुए सोचता रहा। "कुंजी!" एक अच्छा-सा शब्द! यह हमेशा प्रतीकात्मक समान्यीकरणों में प्रदत्त किया जाता है।

लेकिन हम अपनी कुंजी को कोई ऐसा अर्थ नहीं प्रदान करेंगे। हम बस पूरे दिल से अपने भांजे को अपनी नयी फ़्लेट पाने पर बधाई भर देंगे। बाथ और बॉलकनी से युक्त उसका एक अपना फ़्लैट है। और मैं आपको एक छोटे से राज़ में शरीक करना चाहूंगा। इस समय मामा जी कोई विरोध नहीं प्रकट करेंगे अगर उनका भांजा ब्याह की अंगूठी ख़रीदने की सोचे।

और गरा का दृष्टिकोण क्या होगा – वही गरा जिसे देखकर लाल दाढ़ीवाले दरवेशों ने प्रसन्नतापूर्वक मुस्कराकर दुआ की थी?

बहन गरानफिल, मेरी बग़ल में बैठे सोच रहे मेरे भांजे की मां, इसके बारे में तुम्हारा क्या ख़्याल है? वह सोच क्या रहा है? फिलहाल हम उससे नहीं पूछेंगे। जब हम एक जगह मिल बैठेंगे, वह ख़ुद बतायेगा।

ठीक है न, भांजे?

अक्रम ऐलिस्ली

(जन्म १९३७)

अक्रम ऐलिस्ली युवा लेखकों की उस पीढ़ी से हैं जिसका लालन-पालन द्वितीय विश्वयुद्ध के कठिन वर्षों में हुआ था। इस पीढ़ी के लेखक गर्व तथा पीड़ा के साथ अपने मुसीबत के मारे बचपन और मां-बाप द्वारा झेली गयी कठिन परीक्षाओं को अपनी रचनाओं में अभिव्यक्ति प्रदान करते हैं। ऐलिस्ली की कहानी 'दादी का तम्बाकू का थैला' की यही विषयवस्तु है।

इस युवा लेखक की गद्य-रचनाओं में मनोवैज्ञानिक जटिलताओं की गहन पैठ के साथ सहृदयतापूर्ण व्यंग्य का समन्वय होता है। लेखक के कुछ लघु उपन्यास आत्मस्वीकृतियों की विधा में लिखे गये हैं। यह आत्मस्वीकृतियां एक ऐसे संवेदनशील, सतर्क सूक्ष्मदर्शी लड़के द्वारा की जाती हैं जो युद्ध के कठिन वर्षों और युद्धोत्तरकालीन आर्थिक पुनर्निर्माण के पहले वर्षों में पलकर बड़ा होता है।

लेखक के लघु उपन्यास 'मौसी मेदिने की कथाएं' को १९६८ में अज़रबैजानी कोम्सोमोल का पुरस्कार मिल चुका है।

अक्रम ऐलिस्ली

दादी का तम्बाकू का थैला

जब दादी का तम्बाकू ख़त्म हो जाता, वह हमेशा मुझे घर से बाहर जाने के लिए मनाकर देती थी। "पल भर मेरे साथ तो बैठो, लाड़ले!" वह कहती। "तुमसे तम्बाकू की तेज़ व बड़ी शानदार ख़ुशबू आती है।" मैं अपनी जेबों व कमीज़ को उलट-पलट डालता लेकिन मुझे रत्ती भर भी तम्बाकू नहीं मिलता। मुझे तम्बाकू की बू भी कहीं महसूस नहीं होती। और महसूस भी कैसे होती जब कि मैंने जीवन में कभी सिगरेट तक नहीं पी थी। तो फिर दादी मुझे इस तरह बांहों में भरकर क्यों कहती थी कि मुझसे तम्बाकू की बू आती है?

मेरे लिए यह असह्य होता था: मैं रोना-धोना शुरू कर देता और चीख़-चीख़कर उससे बांहों से मुक्त कर देने के लिए चिरौरी करता। मैं कुपित होकर बूढ़ीजान से साबित करने की कोशिश करता कि उसे ग़लतफ़हमी हुई है, मुझसे किसी भी क़िस्म की कोई बू नहीं आती है। "मुझसे नहीं, तुमसे तम्बाकू की बू आती है!" मैं चिंचियाकर कहता। "तुम्हारे मुंह से, रूमाल से, हर

चीज़ से बू आती है। मैं तुम्हारे साथ नहीं बैठना चाहता हूं! मुझे अकेला छोड़ दो!"

दादी मेरी बात का तनिक भी बुरा नहीं मानती थी। वह परे हटकर आह भरती और देर तक मेरे चेहरे की ओर घूरती रहती। उसकी घूरती नज़र अपने चेहरे पर महसूस कर मैं भी उस पर आंखें तरेरे बिना नहीं रह पाता। कैसी झुर्रीदार और दुबली-पतली थी वह!.. और उसका तम्बाकू ख़त्म हो गया था... मुझे उस पर इतना तरस आने लगता कि मैं रात में उसके बिस्तरे पर उसके साथ ही सोने का वायदा कर लेता। वह मुझे दुबारा चूमने-दुलारने लगती और रो-रोकर कहती कि मैं हूबहू अपने पिता की तरह था। वह जब कभी रोती थी हमेशा यही कहती थी।

दादी कभी-कभी सुबकते समय मेरे कान में बुदबुदाकर मुझसे भी रोने के लिए कहती। शायद मेरे पिता जी को मेरी सुबकियाँ सुनाई दे जायें...

रोकर दिल हल्का कर लेने के बाद दादी अचानक ही चुप हो जाती और तुरन्त ही ख़ुद को कोसना शुरू कर देती: "देख बुढ़िया, यह तूने क्या कर दिया, उसे भी रुला दिया! तू रोयी ही क्यों थी? जिससे कि नन्हे-मुन्ने का दिल टूट जाये!"

जल्दी-जल्दी आंसू पोंछकर वह यथासम्भव मुस्कराने की कोशिश करती। वह मुझे फ़ौरन ख़ुश होते देखना चाहती। "ज़रा हंस भी, लाड़ले," वह ज़ोर डालती। "ज़रा हंस तो सही कि तेरे बाप की आत्मा ख़ुश हो उठे!"

"उसे सच में मालूम है कि मुझ से तम्बाकू की कोई बू नहीं आती है," मैं कभी-कभी सोचा करता। "वह भली-भांति जानती है कि न तो मैं उसका तम्बाकू चोरी करके लेता हूं न अज़ेर की तरह सिगरेट के टुकड़े उठाता फिरता हूं। लेकिन तब फिर ऐसा कैसे होता है? जैसे ही उसका तम्बाकू ख़त्म हो जाता है, वह मुझे क्यों टस से मस भी नहीं होने देती है और मुझसे चेहरा सटाकर कहना शुरू कर देती है कि मुझसे तम्बाकू की बू आती है?"

दादी के लिए तम्बाकू का मतलब था सारी दुनिया। जहां उसका तम्बाकू का थैला ख़ाली होता, सारे घर पर मुसीबत आ जाती। मां

पहले से अधिक दुखी दिखाई देने लगती और घर पर कम से कम दिखाई देने की कोशिश करती। चाय के बर्तन वग़ैरह धोने के बाद वह फ़ौरन ही कहीं चली जाती। "फिर तम्बाकू ख़त्म हो गया!" वह मुझे देखकर बड़बड़ाती मानो दादी का तम्बाकू ख़त्म होने के लिए मैं दोषी था।

मुझे अच्छी तरह मालूम था कि जिस थैले में दादी तम्बाकू रखती थी, वह थैला पिता जी का था। मैं यह भी जानता था कि दादी को धूम्रपान की पहले कोई आदत नहीं थी। पिता जी के मोर्चे पर जाने के फ़ौरन बाद ही उसने धूम्रपान शुरू किया था। वह अक्सर कहा करती थी कि धूम्रपान करनेवाली औरतें पिता जी को एकदम नापसन्द थीं और पिताजी के लौटते ही वह भी धूम्रपान छोड़ देगी। वह सचमुच छोड़ना चाहती थी लेकिन नहीं छोड़ सकी हालांकि वह मेरे पिताजी से बहुत प्यार करती थी और जब कभी पिताजी की चर्चा चलती, वह हमेशा रोना शुरू कर देती।

ऐसे मौक़े पर मेरी मां की आंखें भी डबडबा जातीं, मेरी बुआ भी रोने लगती और यहां तक कि चाचा करश भी चुपके-चुपके आंखें पोंछने लगते। लेकिन पता नहीं क्यों सिर्फ़ मैं नहीं रो पाता था।

हालांकि मैं कभी-कभी रोने की ज़बर्दस्त इच्छा महसूस करता था! मैं ख़ूब ज़ोर-ज़ोर, दिल बाहर निकाल-निकालकर रोना चाहता था, ठीक दादी की तरह! लेकिन मैं रो ही नहीं पाता था। यह बहुत पीड़ा-दायक होता था, दादी के तम्बाकू ख़त्म हो जाने से भी ज़्यादा या जब बुरा मानकर सेविल मुझसे बातचीत बन्द कर देती थी, उससे भी ज़्यादा।

मैंने मामी और दादी से कई बार पूछा था कि मैं दूसरों की तरह क्यों नहीं रो पाता। आम तौर से दादी सिर्फ़ आह भरकर रूमाल से अपने आंसू पोंछकर चुप रह जाती थी और मां समझाने की कोशिश करती कि जब मैं बच्चा था तो इतना रोया था कि मेरे आंसू सूख गये थे।

सचमुच, मुझे उम्मीद थी कि जब मैं बड़ा हो जाऊंगा, निस्सन्देह, अपने पिता जी से प्यार करने लगूंगा और किसी दूसरे सामान्य आदमी की तरह ही उनकी चर्चा सुनते ही मेरा गला रुंध जायेगा।

लेकिन समय बीतता रहा, दादी का तम्बाकू का थैला भरा जाता रहा फिर ख़ाली होकर दीवार पर लटकाया जाता रहा, दादी पहले

से भी अधिक दुबली-पतली होती गयी और मां के बाल अधिकाधिक सफ़ेद होते गये लेकिन इसके बावजूद मैं रोना नहीं सीख पाया।

फिर दादी चल बसी। वह ग्रीष्म की एक पुरसुकून शाम को मरी जब सूरज अभी-अभी डूबा ही था और समोवार उबलने लगा था... उसके जनाज़े में बहुत से लोग आये लेकिन रोया कोई भी नहीं। "वह बेहतर दुनिया में चली गयी," लोगों का कहना था। "भगवान उसकी आत्मा को शान्ति दे।" यह भी बात फैली थी कि दादी की मृत्यु समय से पहले हुई थी और उसका इलाज करनेवाले डॉक्टर का कहना था कि उसकी मृत्यु का कारण तम्बाकू था। जनाज़े के बाद जब मां दादी का बिस्तर ट्रंक के पीछे रख रही थी, आह भरकर बोली: "तम्बाकू ने बूढ़ीजान के प्राण ले लिये।"

क्या सचमुच मेरे अलावा कोई दादी के मरने का असली कारण नहीं समझ पाया था? उसके दुख ने उसकी जान ली थी! दुख के कारण ही मजबूर होकर उसने तम्बाकू पीना शुरू किया था! और अगर मेरे पिताजी घर लौट आते तो वह ज़रूर ही उस मनहूस तम्बाकू को छोड़ देती। उसे सचमुच इस बात का भय सताता था कि पिताजी ज़रूर एक दिन लौट आयेंगे और अपने थैले को देखकर कुपित हो उठेंगे कि उनकी मां ने भी धूम्रपान शुरू कर दिया था। बात यह नहीं थी कि दादी को मेरे पिता जी का भय था – मां भला अपने बेटे से क्योंकर भयभीत हो सकती थी – लेकिन वह उनको दुखी करने के भय से ज़रूर बुरी तरह पीड़ित थी।

मरने से पहलेवाले दिन जब मां कहीं दूर थी, दादी ने मुझे इशारे से बुलाकर कहा था कि जब वह मर जाये तो मैं बाजार से तम्बाकू खरीदकर उस थैली को पूरी तरह भर दूँ। "पूरी तरह थैले को तम्बाकू से भर देना। सुन रहे हो न? वहां उस जगह आले पर थैले को कील से टांग देना।"

उसने मुझे आला व कील, दोनों दिखा दिये थे। उसने कई बार ऐसा किया था...

नहीं, दादी की मृत्यु का कारण तम्बाकू नहीं था।

दरवाज़ा खुला और पिता जी अन्दर चले आये। मैं दौड़कर उनके गले में अपनी बांहें डाल देना चाहता हूं, उन्हें चूमना चाहता हूं और उनके कन्धे पर सिर रखकर रोना चाहता हूं। लेकिन दौड़ने की बात तो दूर रही, मैं उठ भी नहीं पाता हूं: ऐसा लगता था मानो किसी ने मुझे पकड़ रखा था।

फिर अचानक ही मुझे खाली थैले की याद हो आयी। मुझे दौड़कर उसे दीवार से उतारकर यथाशीघ्र कहीं न कहीं छुपा देना चाहिए। लेकिन मैं यह करूं तो कैसे, मैं तो इंच भर भी हिल-डुल नहीं सकता था।

पिता जी मेरे पास आकर मुझ पर झुक पड़ते हैं: जब वह झुककर मेरे ललाट पर चुम्बन लेते हैं तो मुझे उनकी झाईंदार, दाढ़ीदार ठुड्डी दिखाई देती है। मैं उनके गले में बांहें डालकर उनकी कड़ी काली-काली मूंछों को चूम लेता हूं जिनसे तम्बाकू की साफ़-साफ़ बू आ रही थी।

अब मेरे पिता जी अपने लाल सूटकेस के पास जायेंगे, उसे खोलेंगे और मेरे लिए ख़रीदकर लाया सूट निकालेंगे। मैं सूट पहन लूंगा...

मैं गलियों में दौड़कर चीख़ता क्यों नहीं हूं: "पिता जी आ गये हैं! मेरे पिता जी आ गये हैं! अब मैं अनाथ नहीं हूं!" काश, मैं पिता जी को परे हटाकर, उनके ताक़तवर हाथों को हटाकर, झटककर सूट उठा लेता और उसे पहनकर गलियों में भाग खड़ा होता और हर किसी को रोक-रोककर यह ख़बर सुनाता जाता! सारी दुनिया को मालूम होना चाहिए कि मेरे भी पिता हैं! "सुनो लोगो, सुनो! मेरे पिता जी लौट आये हैं। मेरे भी पिता हैं! ऐ, लोगो! मुझसे उनके बारे में पूछते क्यों नहीं? उनके बारे में मुझसे बात क्यों नहीं करना चाहते? वह सचमुच आ गये हैं, घर लौट आये हैं!"

लेकिन यह सब मुझे नसीब नहीं: मैं ख़ुद को पिता जी की बांहों से छुड़ा नहीं सकता, न तो सूट पहन सकता हूं न तो चीख़ते हुए गलियों में भाग सकता हूं। मेरी नीन्द खुल गयी: पिता जी जब मुझे चूमने को झुके तो मेरी आंखें खुल गयीं। मैंने आंखें खोलीं तो मां दिखाई दी।

सपना इतना सच्चा लगा था कि अगर मैं इसे पहली बार देखता तो ज़रूर ही पूछ बैठता कि पिता जी कहां हैं। लेकिन अब तो इस सपने को देखने की आदत-सी पड़ गयी है... तम्बाकू की बू भरी कड़ी मूंछें, नया शानदार सूट, फ़ाउण्टेन पेन – इन सब चीज़ों को मैं इतनी

बार देख चुका था कि जब मैं गहरी नीन्द में था तब भी महसूस कर रहा था कि यह और कुछ नहीं, मात्र सपना था...

जागते ही मुझे पिछले दिन मम्मी से हुई बातचीत याद हो आयी। आज मुझे प्रादेशिक केन्द्र में जाकर पेंशन के बारे में पता लगाना था। मुझे गाजी चाचा के पास जाना, हैट उतारकर आदरपूर्वक उनका अभिवादन करना था। जब वह मुझे अन्दर बुला लेंगे तो मुझे नम्रतापूर्वक साफ़-साफ़ आवाज़ में कहना था: "किसी न किसी कारणवश इस महीने का पेंशन रुका पड़ा है। अगर आपको बहुत अधिक कठिनाई न हो (मुझे यह बात ज़रूर ही कहनी थी!) तो क्या आप देख सकते हैं कि ऐसा क्यों हुआ है। मम्मी बीमार है... वह खुद नहीं आ सकती है। शायद इस समय पैसे नहीं हैं? तो चिन्ता की कोई बात नहीं, हम काम चला लेंगे..."

गाजी चाचा रजिस्टर खोलकर देखेंगे कि पैसे कभी के आ चुके हैं और बात यह है कि ज़रीफ़ा ने फ़ॉर्म गुम कर दिया था। वह मुझे ज़रीफ़ा के पास भेज देंगे और ज़रीफ़ा फ़ार्म ढूंढ़कर मुझे सलीम चाचा के पास भेज देगी। मैं दस्तख़त कर दूंगा और वह मुझे एक सौ चालीस रूबल दे देंगे।

"एक सौ चौवालीस रूबल" रजिस्टर पर लिखा होगा लेकिन यह कोई बड़ी बात नहीं, चार रूबल कोई मायने नहीं रखते...

पैसे पाने के बाद मुझे दूकान जाना था और तीन पौण्ड चीनी, दो पैकेट चाय, आधा पौण्ड मटर और बाज़ार से एक पौण्ड गोश्त ख़रीदना था।

मैंने ख़ुद को साफ़-सुथरा करने में ख़ास ध्यान दिया। सूरज अभी तक नहीं निकला था और कमरे में अन्धेरा छाया था। मेज़ पर समोवार में पानी उबल रहा था। मां का मूड बड़ा ख़राब था, शायद इसलिए क्योंकि उसे मुझ को बहुत सवेरे जगाना पड़ा था।

उसने चार अण्डे उबाले थे जिसमें से दो मुझे खाने के लिए कहा। दो अण्डों को लपेटकर रखा। जब मैंने दो प्याली चाय पी ली, उसने मुझे एक बार फिर से वही सारी बातें दुहराकर सुना दीं जो मुझे पिछले दिन उसने बतायी थीं।

"अगर तुम्हें भूख लगे तो बैठकर पहले कुछ खा लेना। थोड़ा-सा

नान खा लेना। ध्यान रखना कि पोटली खोलते समय नमक न गिरे। अगर रास्ते में कोई कार नज़र आये तो लिफ़्ट मांग लेना। ध्यान रहे, बाज़ार में तुम्हें बिलकुल भी पानी नहीं पीना है। अगर मुझे पता चला गया कि तुमने पानी पीया है तो फिर घर पर सूरत न दिखाना। अगर तुम्हें प्यास लगे तो चायख़ाने में जाकर एक प्याली चाय पी लेना या अच्छा होगा कि बिलकुल मत पीना। जितनी चाय पीनी है, यहीं पी लो।" और मुझे उसने चाय की तीसरी प्याली ढालकर थमा दी हालांकि कटोरे में चीनी का एक दाना भी न था।

"तुम्हारा कुलनाम क्या है, बेटे?"

"सेलीमोव।"

"सेलीमोव? तुम्हारे नाम तो कोई भी पैसा नहीं बाक़ी है।"

"क्यों?"

"क्योंकि नहीं बाक़ी है। अब तुम बड़े हो गये हो और तुम्हें अपनी आजीविका ख़ुद कमानी चाहिए। बस यही बात है।"

मेरा तो दम ही सटक गया। मैंने ख़ौफ़ से गाजी चाचा की ओर देखा। पितृविहीन बालक के रूप में अपने इतने वर्षों के दौरान मुझे कभी ऐसी लाचारी नहीं महसूस हुई थी। "डैडी!" मैं चीख़ पड़ना चाहता था। "यह कैसे सच हो सकता है, डैडी?"

आख़िर यह हुआ कैसे? मैं बालिग हो चुका था लेकिन अपने पिता से अब तक प्यार नहीं कर पाया था?! मैं उन्हें याद करके कभी रोया भी नहीं था? दादी का तम्बाकूवाला थैला भी मैंने अभी तक नहीं भरा था। लेकिन इसका कारण यह नहीं था कि मेरे पास पैसे नहीं थे। दादी के मरने के बाद भी हमें कई दफ़ा पेंशन मिली थी। तम्बाकू मैंने इसलिए नहीं ख़रीदा था क्योंकि मुझे अब पिता जी के वापस आने का कोई यक़ीन नहीं था। मैंने सिर्फ़ उम्मीद ही नहीं छोड़ दी थी बल्कि यह भी यक़ीन करने लगा था कि पिता जी कभी थे ही नहीं।

... आंखों से कुछ देखे बिना मैं घिसटती चाल से सड़क पर चला जा रहा था। फिर पता नहीं किस कारण से मैं लौटकर दुबारा शहर की ओर चल पड़ा। मैं चलता जा रहा था और सिर्फ़ एक ही बात सोच रहा था – पिता जी के पैसों के बारे में। "डैडी के पैसे आ गये..." "डैडी के पैसों में से कुछ ले लो..." "डैडी के पैसे ख़त्म हो गये..." "डैडी

के पैसे"। इस पैसे से हम ने कई साल तक जीवन निर्वाह किया था। इस पैसे से हम रोटी, चीनी और दादी के लिए तम्बाकू ख़रीदते रहे थे। यह पैसे मेरे नाम पर आते थे। मैं इससे काग़ज़-किताबें व पेंसिलें खरीदता था। पिता जी के पैसों से मैंने दस साल तक पढ़ाई की थी लेकिन "पिता" का मतलब मैं अभी तक नहीं समझ पाया था।

मैं चलता जा रहा था और लगातार एक ऐसी चीज़ के बारे में सोचता जा रहा था जिसके बारे में पहले कभी नहीं सोचा था... लेकिन शायद वास्तव में कुछ भी नहीं हुआ था और सब कुछ पहले जैसा ही था: कहीं मैं सपना तो नहीं देख रहा था? नहीं, यह सपना नहीं था – अब आगे से पैसे नहीं मिला करेंगे लेकिन फिर मैं लौटकर शहर क्यों चला आया था?

मैं चलते-चलते रुक गया। जैसे किसी गहरी नीन्द से जागा होऊं, मैंने अपनी आंखें पोंछीं और देखा कि मैं एक बड़ी-सी पीली इमारत के सामने खड़ा हूं। इमारत पर अंकित है: "सामाजिक सुरक्षा विभाग"। अगर कहीं मुझ पर गाजी चाचा की नज़र पड़ गयी तो मैं कहूंगा क्या?

मैं उनके कमरे के पास से आगे बढ़ गया।

...अपना फ़र हैट उतारे बिना मैंने उस आदमी का अभिवादन बड़े अजीबोग़रीब ढंग से किया और बड़े साहसी ढंग से मैं मैनेजर के ऑफ़िस में घुस गया। जब मैं दरवाजे के अन्दर जा पहुंचा था तभी मुझे अपना साहस साथ छोड़ता प्रतीत हुआ। मैनेजर ने मेरी उलझन भांप ली।

"आओ, बेटे, अन्दर आ जाओ!" उसने कहा। "आओ, बैठो।"

मैं बैठ गया।

"हां बेटे, बताओ, मैं तुम्हारे लिए क्या कर सकता हूं?"

कुछ कह पाने की हिम्मत न जुटा पाते हुए मैं ख़ामोशी से बैठा रहा।

"तुम शायद काम के बारे में पूछने आये हो?"

मुझे अपना आत्मविश्वास जागता-सा महसूस हुआ और मैंने उसकी ओर आशा भरी नज़रों से देखा।

"जी-ह-हां... मैं... क्या आप मुझे कारखाने में काम नहीं दे सकते हैं?"

"क्यों नहीं, ज़रूर। तुम्हारे जैसे समझदार लड़के को कारखाने में हमेशा काम मिल सकता है। तुम कहां के रहनेवाले हो?"

"सोयुदला का।"

"किसके बेटे हो?"

"सलीमा का।

मैनेजर के होंठ कांपे और वह हंस पड़ा।

"सलीमा के बेटे! हा-हा, गज़ब हो तुम!" वह हंसा लेकिन मुझे सचमुच में उलझन में पड़ा देखकर वह खिड़की की ओर मुस्कराते हुए पलट गया। "बेटे, घबड़ाओ मत। मैं तुम पर नहीं हंस रहा हूं। लेकिन यह बात ध्यान में बैठा लो: जब कभी तुमसे पूछा जाये कि किसके बेटे हो तो हमेशा बाप का नाम बताया करो।"

"मेरे पिता? लेकिन आप उनको नहीं जानते हैं।" मेरे मुंह से बड़ी मुश्किल से शब्द निकले। मुझे फिर कहना पड़ेगा कि मैं पितृविहीन हूं...

"उनकी मृत्यु हो चुकी है... वह लड़ाई में मारे गये थे..."

मैनेजर ने सावधानी से मेरी ओर देखा। उसके चेहरे से मुस्कराहट ग़ायब हो चुकी थी। मुझे ऐसा प्रतीत हुआ जैसे वह कुछ कहना चाहता था लेकिन चुप्पी साधे था। तब मैंने ज़ोरों से साफ़-साफ़ आवाज़ में कहा:

"मैं नजफ़ का बेटा हूं।"

"वही न जो चिकित्सा सहायक था?"

"जी... मां ने मुझे यही बताया था।"

मैनेजर सिगरेट सुलगाकर ऑफ़िस के कमरे में चहलक़दमी करने लगा। फिर वह मेरे क़रीब चला आया।

"तुम्हारे पिता एक अच्छे आदमी थे।"

कुछ कहने को न सूझा तो मैं चुपचाप रहा। शायद मुझे उठकर चल देना चाहिए? लेकिन काम तो बना नहीं था फिर मैं क्योंकर चला जाता? मां से मैं क्या कहूंगा?

"क्या आप कुछ एडवांस नहीं..."

इससे आगे मैं कुछ भी नहीं बोल सका। और मैनेजर को भी शायद मेरी बात नहीं सुनाई दी थी।

"क्या आप मुझे कुछ एडवांस नहीं दे सकते... सौ रूबल या... तनख़्वाह मिलते समय उसमें से कटवा लेंगे।"

और अपनी ही गुस्ताख़ी से हक्का-बक्का होते हुए मैंने डबडबायी आंखों से मैनेजर क़ी ओर देखा। वह मेज़ के पास जाकर दुखी मुद्रा में खड़ा हो गया और पेंसिल से मेज़ पर खट-खट करने लगा।

"क्या मैं जाऊं? क्या सुबह से काम शुरू कर सकता हूं?"

"हां, हां, ज़रूर," उसने खोये-खोये अन्दाज़ में जवाब दिया।

मैं उठकर दरवाज़े की ओर चल पड़ा। मुझे पक्का विश्वास था कि वह आवाज़ देकर बुलायेगा। मैंने ठीक ही सोचा था। मैंने दरवाज़े के हैण्डल की ओर हाथ बढ़ाया ही था कि वह एकाएक बोल उठा:

"कहां चल दिये, बेटे? तुमने कुछ कहा था न, शायद पैसों के बारे में।"

"जी, एडवांस... सौ रूबल..."

मुझे विश्वास था कि मैनेजर खज़ांची को बुलाकर एडवांस लिखने के लिए कहेगा और तब मुझे पैसे लेने के लिए लगभग दर्जन भर विभागों में भाग-दौड़ करनी पड़ेगी। लेकिन उसने ऐसा कुछ भी नहीं किया, बस जेब से सौ का नोट निकालकर मेरी ओर बढ़ा दिया। मैं सीधे बाज़ार जाने के लिए तेज़ी से दरवाज़े की ओर चल दिया।

"हम तुम्हें केरीम का शागिर्द बहाल करेंगे!" मेरी पीठ के पीछे से वह ज़ोरों से बोला। "एक महीने में पांच सौ रूबल मिलेंगे।"

सिर्फ़ आधे घण्टे में मैंने सौ रूबल ख़र्च कर डाले। अब मैं घर जा सकता था। ख़ुशी से छलकते हुए मैंने सीटी बजानी शुरू कर दी और उछलता-कूदता दौड़ पड़ा। "मैनेजर बड़ा अच्छा आदमी है!" मैं सोच रहा था। "तनख़्वाह पांच सौ रूबल! और वह मेरे पिता जी को जानता है!"

पिता जी को याद करके मेरी चाल अपने आप धीमी पड़ गयी। मैनेजर मेरे पिता जी को क्यों जानता व आदर करता था जब कि मैं उन्हें बिलकुल नहीं जानता था...

मुझे पता ही नहीं चला, मैं कैसे गांव पहुंच गया। रात होने को थी। पशुओं के ढोर को हांककर घर ले जाया जा रहा था और दोहने के लिए खड़ी गायें रंभा रही थीं। मैं क़ब्रगाह से होकर गुज़रा और

जीवन में पहली बार मुझे तनिक भी भय महसूस नहीं हुआ था। मैं थोड़ी देर के लिए दादी की क़ब्र के पास भी रुका जिससे कि उससे बात कर सकूं।

जल्दी ही मैं घर पहुंच जाऊंगा। मैं दरवाज़ा खोलकर किसी व्यस्क आदमी की तरह धीमे से चलकर कमरे में घुसूंगा और गोश्तवाला थैला ट्रंक के ऊपर रख दूंगा। मां देखेगी कि थैले में एक पाउण्ड से ज़्यादा गोश्त है और वह ज़रूर ही आग-बबूला हो उठेगी। उस समय बड़ा मज़ा आयेगा जब मैं उसे सारी बातें विस्तार से बताऊंगा। पिता जी के घर से जाने के बाद से घर में लाकर हर महीने उसे पांच सौ रूबल देनेवाला कोई था ही नहीं।

लेकिन बात उस तरह पेश नहीं आयी जिस तरह मैं सोचता आया था। अभी मैं घर के बाहर ही था जब मुझे मां दिखाई दे गयी। शायद वह बड़ी देर से मेरी राह ताकती रही थी क्योंकि उसने बड़े ठण्डे ढंग से मेरे अभिवादन का उत्तर दिया था।

"इतनी देर तुमने कहां लगा दी?" वह बोल पड़ी।

कमरे में बत्ती जली थी और समोवार में पानी उबल रहा था; मां शायद उसे कई बार खौला चुकी थी। उसने मुझे ढालकर एक प्याली चाय दी। जैसे किसी परीक्षा के समय होता है, मैं उसी तरह उत्तेजित था और बेसब्री से प्रतीक्षा कर रहा था कि मां कब झोले को देखती है।

आख़िर माँ ने झोला उठा लिया। यथासम्भव सामान्य दिखाई देने की कोशिश करते हुए मैंने मुंह फेर लिया। वह मुझ से अब पूछेगी या तब कि गोश्त इतना ज़्यादा क्यों था।

"अभागे लड़के, तूने यह क्या किया है?" वह गुस्से से बोली। "तूने तम्बाकू कहां से ख़रीद लिया?"

भागकर मैंने झोला उससे छीन लिया। चीनी, मटर, गोश्त – सब कहीं तम्बाकू पड़ा था। मेरी ओर चौकसी से देखते हुए उसने कहा:

"तूने तम्बाकू कहां से लिया? किसने दिया तुझे?"

मैं चुप था।

मां ने फिर कुछ नहीं पूछा। हम चुपचाप एक-दूसरे के सामने बैठे रहे। कोई धीमे-धीमे स्वर में गा रहा था। मां मेरी ओर देख रही थी और मैं खाली पड़े दादी के तम्बाकू के थैले की ओर देख रहा था।

इसि मेलिकज़ादे

(जन्म १९३४)

मेलिकज़ादे ने तेल उद्योग में इंजीनियर की शिक्षा पायी थी। कुछ ही साल पहले इन्होंने साहित्य के क्षेत्र में प्रवेश किया। लेकिन उनके प्रकाशित उपन्यासों तथा लघुउपन्यासों में और विशेष रूप से इनमें से 'किसी और की मां' तथा 'दुर्बल पंख' में इनकी महान मौलिक प्रतिभा के दर्शन होते हैं। मेलिकज़ादे परम्परागत वर्णनात्मक शैली में लिखते हैं। जीवन के लाक्षणिक पहलुओं के चित्रण के लिए उनकी रचनाओं को प्रमुख विशिष्टता प्राप्त है। इनकी कहानी 'बेटा' बहुत से पाठकों से दो-चार होनेवाली समस्या – पीढ़ियों के अनुवर्तन की समस्या से सम्बन्धित है।

इसि मेलिकज़ादे

बेटा

"मेरी समझ में नहीं आता, वह इतनी रात तक कहां रह सकता है?"

पत्नी ने कोई जवाब नहीं दिया। बस वह आह भरकर रह गयी। चादर को एक ओर फेंककर फ़ारूख़ ने पैरों को बिस्तर पर से नीचे कर लिया। कुछ पलों की ख़ामोशी के बाद उसने बग़ल में लेटी बीवी से फिर कहा:

"अमीना, यह कैसे हो सकता है, कि तुम्हें मालूम नहीं कि वह इतनी रात तक कहां रहता है?"

अमीना ने ठिठककर पहलू बदला।

"नहीं। मुझे कहां से मालूम होगा?"

"तुमने उससे कभी पूछा नहीं?"

"उसने बताया था कि परीक्षाओं की तैयारी के लिए वह अपने मित्रों के साथ अध्ययन करता है।"

फ़ारूख़ ने सिर हिला दिया। मद्धिम चांदनी में उसका चेहरा रुग्ण पीताभ दिखाई दे रहा था। ज़ोर लगाकर वह कठिनाई से उठ खड़ा हुआ। बायें पैर को घसीटते हुए वह लंगड़ाता-लंगड़ाता खिड़की के पास जा पहुंचा। खिड़की के शीशे से माथा टिकाकर उसने सुनसान सड़क की ओर देखा

और अपने आप से कहा : "अगर पैर ठीक होता तो मैं बाहर जाकर तईर को तलाशता। लेकिन इस बीमारी ने अचानक ही धर दबोचा है। मुझे लकवाग्रस्त और लाचार समझकर शायद तईर इतना हिम्मती हो गया है और लाज-लिहाज खो बैठा है!" एक कड़वी मुस्कान उसके होंठों पर आ गयी।

अपने प्रति दुख की अनुभूति महसूस करते हुए वह विक्षुब्ध हो उठा। फिर उसे डाक्टर की बात याद हो आयी : "आपको किसी भी चीज़ के बारे में चिन्तित न होने की कोशिश करनी चाहिए। चाहे जो भी हो आप शान्त रहने की कोशिश कीजिए।" लेकिन यह कहना जितना आसान था, उतना करना नहीं। फ़ारूख़ ने भावावेशों पर नियन्त्रण पाने की कोशिश की। "तईर कभी ऐसा नहीं था," वह मन ही मन में बोला। "वह कभी इतनी देर से घर नहीं आया करता था। वह बिना इजाज़त मांगे कभी घर से नहीं जाता था। उसे हो क्या गया है? पिछले महीने से वह हर रात देर से घर लौटता है। क्या उसे नहीं मालूम कि मैं बीमार हूँ और वह मुझे परेशान कर रहा है?" वह लंग-ड़ाता हुआ खिड़की से खिसक आया।

"ज़रा देखना, क्या समय हुआ है," वह अपनी बीवी से बोला।

उठकर अमीना ने लैम्प जलाया। "दो बजकर दस मिनट," न सोने के कारण भर्रायी आवाज़ में उसने जवाब दिया।

"मैं उससे बात नहीं कर सकता, अमीना," वह रह-रहकर बोला। "आख़िर वह कोई बच्चा तो है नहीं। बड़ा हो चुका है। तुम उसकी मां हो। तुम्हारे लिए उससे बात करना आसान है। उससे कहो कि यह कोई जीने का तरीक़ा नहीं। उससे कहो कि समय पर घर आये, नहीं तो पढ़ाई में नुकसान होगा। कालेज की पढ़ाई पूरी करने में अभी उसके दो साल बाक़ी हैं।"

"क्या पता शायद सचमुच परीक्षा के लिए पढ़ाई में लगा हो। हम थाड़े दिन और इन्तज़ार कर लें। मुझे पूरा यक़ीन है, वह अब घर आ ही रहा है।"

"तुम सोचती हो, मुझे मालूम ही नहीं कि वह कहां इतनी रात तक अटका रहता है? मैं जानता हूं लेकिन मैं उससे कह नहीं पाता हूं। मुझे मालूम है वह किस भीड़ में फंस गया है।"

"तईर ऐसा लड़का नहीं है।"

"कौन जानता है?"

"तुम्हारे ख़्याल से वह शायद किसी लड़की के चक्कर में है।"

"अगर ऐसा हो तो ख़ुशी की बात है। यह उम्र बड़ी ख़तरनाक होती है और उसका ख़ून भी गर्म है।"

"मैं कभी नहीं विश्वास कर सकूंगी।" कुछ पलों के बाद पति की चिन्ता उसे भी सताने लगी। "तुम्हारे ख़्याल से..."

"और क्या हो सकता है? मुझे सच-सच बताओ : कौन ऐसी शरीफ़ लड़की होगी जो इतनी रात गये तक बाहर घूमती फिरेगी? परीक्षा के लिए पढ़ाई करने की उसकी बात पर मुझे तनिक भी विश्वास नहीं। इस तरह पहले कभी उसने पढ़ाई की है क्या?"

"अनजाने उसे दोषी न कहो।"

"देखो, मुझे ग़ुस्सा न दिलाओ। अगर तुम उससे बात नहीं करती..."

"शान्त हो जाओ। थोड़ा इन्तज़ार करो। तुम फ़ैसला लेने में बड़ी जल्दबाज़ी कर रहे हो।"

"इन्तज़ार करने की बात ही क्या है? और कब तक? अभी वह एकदम कमसिन है ख़ुद अपने रास्ते पर नहीं चल सकता। हम क्या सोचते हैं या कितना अधिक चिन्तित होते हैं, उसे इसकी कोई परवाह नहीं।"

खिड़की के पास जो ग़ुस्सा पैदा हुआ था, अब उबाल खाने लगा था। घुटने पर मुक्का मारकर वह ज़ोरों से चीख़ पड़ा "अब उसकी आंखों में कोई पानी नहीं रह गया है! देखना, मैं उसे दिखा दूंगा कि घर का मालिक कौन है।"

दरवाज़े की घंटी बज गयी। फ़ारूख़ उद्विग्न हो उठा।

अमीना उछलकर बिस्तरे से उठ गयी।

"जहां हो वहीं पड़ी रहो! वह फुत्कारकर बोला और घिसटती चाल से कमरे से बाहर निकल आया। बत्ती जलाकर उसने दरवाज़ा खोल दिया। तईर वहां खड़ा था। फ़ारूख़ का लम्बा, सुखट्टा हाथ ऊपर उठा और बेटे के मुस्कराते चेहरे पर जा रहा। मुस्कराहट तत्क्षण विलुप्त हो गयी। उसका स्थान पीड़ित, चकित दृष्टि ने ले लिया था। फ़ारूख़ सन्तुलन खोकर हिला। तईर ने पिता को बांहों में थामकर सहारा

दिया। तमाचे की आवाज़ सुनकर अमीना दौड़ती हुई कमरे से बाहर निकल आयी।

"तुम क्या कर रहे हो, फ़ारूख?"

बेटे की बांह को झटककर दीवारों के सहारे लंगड़ाता वह शयन-कक्ष में लौट आया। उसकी ताक़त वहां पहुंचकर जवाब दे गयी और वह भहराकर बिस्तरे पर गिर पड़ा। एक बार फिर डॉक्टर की चेतावनी उसे याद हो आयी: "आपको हर हालत में ख़ुद को तनावमुक्त रखना चाहिए।"

"यह असम्भव है, डॉक्टर," अपने आप से बोलते हुए उसने जवाब दिया। उसे रसोई में होती बुदबुदाहट व प्लेटों के खनकने की आवाज़ें सुनाई दे रही थीं। थोड़ी देर बाद ही उसकी बीवी उसके पास बिस्तरे पर आ गयी।

"तुमने उसे मारा क्यों था, फ़ारूख? तुम्हारा हाथ कैसे उठा?" उसकी आवाज़ कांप रही थी। आंसुओं से रुंधती आवाज़ तो उसने नहीं सुनी लेकिन महसूस ज़रूर किया। "वह काम करने जाता है। उसने हमें बताया नहीं था।"

"क्या?"

काग़ज़ की खड़खड़ाहट सुनाई दी। "यह उसकी पहली तनख़्वाह है। तुम्हारे बीमार पड़ने के बाद ही उसने काम करना शुरू कर दिया था।"

आगे वह कुछ भी न बोल सकी और इसलिए बिस्तरे पर लेटकर चादर से सिर छुपा लिया।

हर्षजनिक पश्चाताप ने फ़ारूख़ को जकड़ लिया था। वह छत की ओर देखता लेटा रहा।

एनवेर मामेदख़ानली

(जन्म १६१३)

एनवेर मामेदख़ानली का गद्य विचक्षण गीत-व्यंजना तथा समुन्नत रूमानियत के लिए उल्लेखनीय है। विषयवस्तु चाहे जो भी हो, कृतदासी आफ़ग के लिए महान कवि निज़ामी गनजेवी का उत्कृष्ट प्रेम हो, फ़तालीखान* की कठिन परीक्षाएं हों या बाकू के तेलकर्मियों का जीवन या ईरानी अज़रबैजान के एक लड़की के हर्ष एवं विषाद की कहानी हो – एनवेर मामेदख़ानली पाठकों का हृदय जीतकर उनकी सहानुभूति पाने में, अपनी उत्तेजना, प्रसन्नता या घृणा उन तक प्रेषित करने में कभी असफल नहीं होते।

"हिम प्रतिमा" कहानी मामेदख़ानली के काव्यात्मक गद्य की लाक्षणिक बानगी है।

---

* फ़तालीखान ने अज़रबैजान के कुबिन खनाते पर अठारहवीं व उन्नीसवीं शताब्दियों में शासन किया था। – सं०

एनवेर मामेदख़ानली

हिम प्रतिमा

१६४१ का शरद। हिमतुषार ग्रस्त रात्रि। आस-पास की प्रत्येक सजीव या निर्जीव वस्तु हिमीभूत प्रतीत होती थी। हवाएं नागदंश-सी लगती थीं और धमनियों में रक्त जम रहा था।

ऐसी ही एक रात में उक्रेन के असीम हिमाच्छादित मैदान में एक एकाकी छाया चली जा रही थी।

एक जवान मां अपने बच्चे को छाती से लगाकर भाग रही थी, अपने गांव से भागकर वह पूरब की ओर बढ़ रही थी। उसके गांव पर फ़ासिस्टों ने अधिकार कर लिया था और वह अपनी इज़्ज़त व बच्चे को बचाने के लिए भाग रही थी।

आगे नदी थी जिसके साथ-साथ मोर्चा शुरू हो जाता था। दूसरे तट से सोवियत तोपों की गर्जन उसे सुनाई दे रही थी।

जवान मां जल्दी-जल्दी आगे बढ़ी जा रही थी; चाहे जो भी हो उसे अपने लोगों तक पहुंचना ही था। उसे अपने बच्चे को हर हालत में दूसरे तट की महान, स्वाधीन भूमि तक ले जाना था, इस हिमतुषार ग्रस्त रात्रि में अगर वह मर भी जाती

है तो यह मृत्यु एक पवित्र उद्देश्य की पूर्ति में – अपने प्रथम प्रेम के प्रतीक की रक्षा में होगी!

मां अथक आगे ही आगे बढ़ती गयी। किन्तु हिमाच्छादित भूमि असीम प्रतीत होती थी। वह अब थक चुकी थी और तुषार उसके शरीर में तीक्ष्ण धार-सी चुभ रही थी। एकाएक उसे लगा कि बांहों का बच्चा ठण्ड से ठिठुर रहा है। किसी गोशे की तलाश में जहां वह बच्चे को अच्छी तरह से गर्म करने के लिए लपेट सके, उसकी निराश आंखें भटकने लगीं। उसे अपने आगे दो काली परछांइयां खड़ी दिखाई दीं। वे परछांइयां आस-पास खड़े दो पेड़ों की थीं। अपनी सांस पर क़ाबू पाने के लिए वह उनका सहारा लेकर पल भर को खड़ी हो गयी।

उसकी शक्ति उसका साथ छोड़ रही थी। अपनी दहनकारी, बर्फ़ीली जिहवा से तुषार उनके चेहरे को चाट रहा था। मां के सीने में भयानक शब्द उठ रहे थे: "बच्चा ठण्ड से ठिठुर रहा है। वह इस तुषार में जीवित नहीं रह पायेगा!"

लेकिन मां ने इस भयानक विचार को ज़बर्दस्ती मन से निकाल बाहर कर दिया।

नहीं! नहीं! दुश्मन के पंजों से जिस बच्चे को वह बचा लायी थी, उसको वह तुषार की बर्फ़ीली बांहों के हवाले नहीं करेगी। दुनिया जमकर बर्फ़ बन जाये, इसकी एक-एक जीवित वस्तु बर्फ़ बन जाये लेकिन वह अपने बच्चे को गरमाहट देने के लिए अपना दिल निकालकर दे देगी...

उसने अपना ऊनी जैकेट निकालकर बच्चे को उसमें लपेट लिया... उसे महीनों, वर्षों से लगते कुछ मिनट बीत गये... तुषार उसे जलते लोहे की तरह जला रहा था...

उसे एक बार फिर महसूस हुआ कि वह नहीं उसके कलेजे का टुकड़ा, उसका बच्चा दुबारा ठण्ड से ठिठुरने लगा था।

उसने अपने सिर पर से ऊनी शॉल उतारकर बच्चे को उसमें लपेट दिया। अब मां का खुला शरीर तुषार के सामने आरक्षित खड़ा था। उसने मृत्यु को सन्निकट मान लिया, जान लिया कि वह हिमीभूत हो रही थी। अब उसमें तनिक भी शक्ति शेष नहीं रही थी।

उसने अपने शरीर से ब्लाउज़ भी उतार डाला और बच्चे को उससे अच्छी तरह लपेट दिया। उसे तो मरना ही था लेकिन बच्चे को ज़रूर बचाना था! मां को बच्चे को जीवित रखना ही था! बची-खुची शक्ति को बटोरकर मां ने बच्चे को पूर्ण मातृत्व भाव से अपने नग्न सीने से चिपका लिया और बड़बड़ा उठी:

"लाड़ले, अब इस दिल के सिवा तुम्हें गरमाने के लिए मेरे पास कुछ नहीं बचा है। आख़िरी धड़कन तक इसकी गरमी तुम्हारे लिए है!"

मां चुप हो गयी लेकिन उसके कानों में तार बजने लगे थे। रह-रहकर तार कसते और ढीले होकर झन्न की आवाज़ कर जाते। मां न कुछ देख सकती थी, न सुन सकती थी... वह पेड़ से अधिक से अधिक लिपटती जा रही थी। भयावह शरद की रात ने उसे एक नया परिधान दे दिया था; तुषार की बर्फ़ीली अंगुलियां उस पर सूक्ष्म स्फटिकीय बेल-बूटे बुन रही थीं...

साफ़ तथा तुषार ग्रस्त सुबह आ पहुंची, म्यान से निकली तेज़ धारवाली चमचमाती तलवार की तरह।

पेड़ के सामने तीन छद्मवेशधारी – गुप्तचर खड़े थे। सिर से टोपियां उतारे वे निस्तब्ध, निस्पन्द वहां खड़े थे।

उनकी आंखों के सामने एक ऐसा दृश्य था जिसे वे जीवन भर नहीं भुला पायेंगे – एक हिमीभूत नारी की हिम प्रतिमा।

काफ़ी देर तक वे अपलक उस पवित्र बलिवेदी की ओर देखते रहे।

आखिर उनमें से एक पेड़ों के बीच उस हिम प्रतिमा की ओर बढ़ा। क्षीण आशा से प्रेरित हो उसने उस पोटली की ओर झांककर देखा जिसे उस हिम प्रतिमा ने अपने सीने से चिपका रखा था। भावातिरेक से कंपकंपाती अंगुलियों से उसने कपड़े को उघारकर देखा... अन्दर से उसे घूरतीं किसी बच्चे की दो आंखें दिखाई दीं। नौजवान सैनिक चौंककर अपने आप पीछे हट गया।

"ज़िन्दा है, जमा नहीं," वह भावविह्वल स्वर में बोला।

सुबह के सूरज की किरणों से आंखें झपकाता बच्चा मुस्कराया।

आग, पानी और हज़ारों कष्टों से गुज़रनेवाले सैनिक खुशी से बह

उठनेवाले आंसुओं को नहीं रोक सके। सिर ऊपर करते हुए उन्होंने मां की भव्य प्रतिमा की ओर एक बार फिर नज़र डाली और दुआ करने के अन्दाज़ में बुदबुदाते हुए निर्मम प्रतिशोध की शपथ ली।

बच्चे को बांहों में लिये वे लौट पड़े। लेकिन मातृत्वपूर्ण स्नेह तथा आत्मबलिदान की भव्यता एवं शक्तिमत्ता की प्रतीक वह हिम प्रतिमा निर्मम प्रतिशोध के लिए ललकारती हुई उनके हृदय में अमिट स्मारक बन गयी।